रुद्राक्ष-धारण और जपयोग

निशान्तकेतु

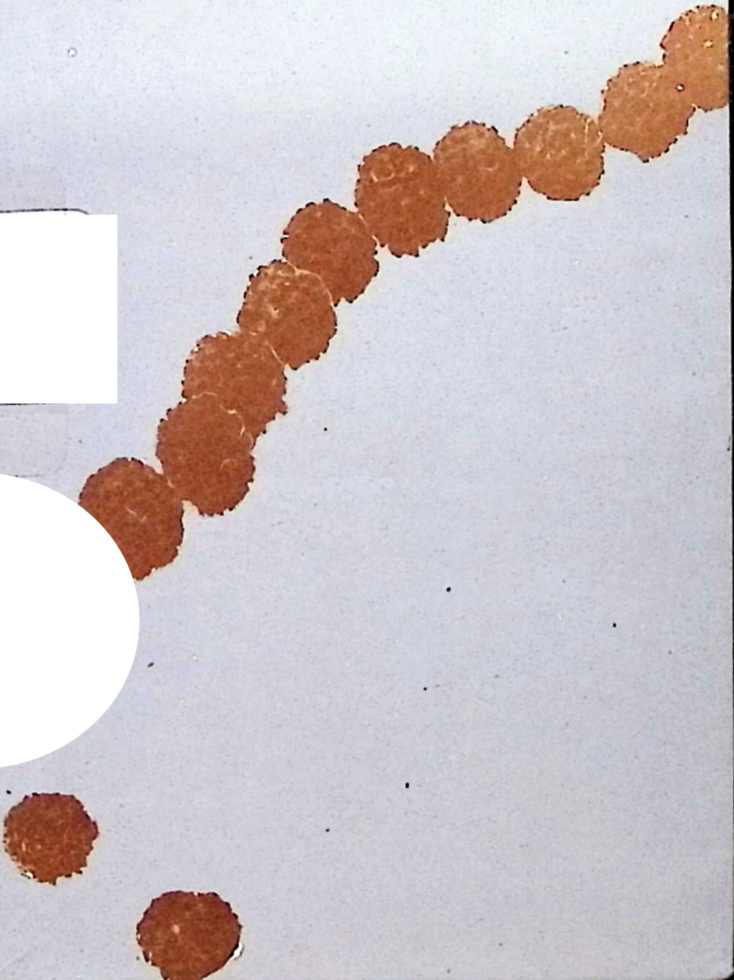

[redacted]

[redacted]

107 ~~108~~   107 ✓

Stotra

रुद्राक्ष-धारण और जपयोग

पृथ्वी का वरदान

रुद्राक्ष-धारण और जपयोग

सर्वसिध्दिदायक तथा सर्वफलसाधक

निशांतकेतु

आचार्य तथा अध्यक्ष
स्नातक एवं स्नातकोत्तर-हिन्दी-विभाग
पटना कॉलेज
पटना विश्वविद्यालय

RGCSLIB
11222

मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्रा. लि.
नयी दिल्ली

ISBN 81-215-0514-3

पुनर्मुद्रण 2005
प्रथम संस्करण 1991
© 2005, निशांतकेतु

मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्रा. लि., 54 रानी झांसी रोड, नयी दिल्ली-110055 के लिए क्विक प्रिन्ट्स द्वारा टाइपसैट होकर चौधरी ऑफसैट प्रोसिस दिल्ली-110051 में मुद्रित।

महान् साधक एवं चिंतक
आर्थर एवालोन उर्फ सर जॉन उडरफ को,
जिन्होंने अक्षमाला (गार्लैंड ऑव लेटर्स)
की अद्भुत गुह्यविद्या से
विश्व को पहली बार
परिचित कराया था,
श्रध्दांजलि-सहित।

श्रीशिवमहापुराणम् : मूलसंस्कृत—रुद्राक्ष-प्रकरण 145
हिंदी-भाषांतर 152
पद्मपुराणम् : मूलसंस्कृत—रुद्राक्ष-प्रकरण 158
हिंदी-भाषांतर 164
अक्षमालिकोपनिषद् : मूलसंस्कृत—सम्पूर्ण 172
हिंदी-भाषांतर 174
रुद्राक्षजाबालोपनिषद् : मूलसंस्कृत—संपूर्ण 179
हिंदी-भाषांतर 182
मन्त्रमहार्णव : मूलसंस्कृत—रुद्राक्ष-प्रकरण 186
हिंदी-भाषांतर 188
महाकाल-संहिता : मूलसंस्कृत—रुद्राक्ष-प्रकरण 190
हिंदी-भाषांतर 192
निर्णयसिन्धुः : मूलसंस्कृत—रुद्राक्ष-प्रकरण 193
हिंदी-भाषांतर 195
बृहज्जाबालोपनिषद् : मूलसंस्कृत—रुद्राक्ष-प्रकरण 196
हिंदी-भाषांतर 197
शिवस्वरोदय : मूलसंस्कृत—रुद्राक्ष-प्रकरण 197
ग्रंथ-सूची 202
अनुक्रमणिका 203

चित्र

जनन-यंत्र xviii
रुद्राक्षमाला : त्रिकोणात्मक 23
रुद्राक्षमाला : वर्तुलाकार 24

भूमिका

रुद्राक्ष-धारण और जपयोग-ग्रंथ आपके हाथों है। इसकी संरचना की प्रेरणा और रचना-प्रक्रिया, प्रयोग और सार्थकता तथा सामाजिक संदर्भ एवं आत्म-संतोष के जो आयाम और प्रक्रिया हैं, उनके संबंध में यहाँ मैं कुछ अपनी बातें रखना चाहूँगा। ग्रंथ तो अपनी तराश और शिल्प, अनुसंधान और अनुभूत सत्य के साथ पूरा होकर आपके सामने है। इसकी सिसृक्षा एवं सर्जन-प्रक्रिया ग्रंथकार के उस रचना-कारखाने की यात्रा कराएगी, जहाँ आपको उसकी साधना और पीड़ा एवं संकल्प और बाधाओं के अन्तःसाक्ष्य से साक्षात्कार होगा।

मैं विश्वविद्यालय में साहित्य का प्राध्यापक हूँ और इस विषय पर मेरी एकाधिक पुस्तकें प्रकाशित हैं। लेखन के प्रसंग में लोक-स्वीकृति और यश एक संयोग है। मैंने जितना जो कुछ लिखा है, उसकी अभिव्यंजना और संप्रेषणीयता पर मुझे सदैव आत्म-संतोष रहा है। यह एक आयाम बनता है। रुद्राक्ष पर मैं कोई अनुसंधान-कार्य करूँगा और परिणामतः कोई ग्रंथ तैयार हो जाएगा, इसकी न तो कोई आकांक्षा थी, न पूर्व-योजना। इतना अवश्य है कि पिछले बीस वर्षों से मैं रुद्राक्ष-धारण करता रहा हूँ। पंडित-परिवार में उत्पन्न होने के कारण पूजा-पाठ का संस्कार और अभ्यास बोधोदय के साथ ही जुड़ा रहा है। वैष्णव-परिवार होने के कारण पिताश्री ने वैष्णव-सम्प्रदाय में दीक्षित किया था, किन्तु दुर्गापूजा के समय वे सप्तशती-पाठ इस तन्मयता और समर्पण के साथ करते थे, जैसे वे स्वंय सप्तशती के मंत्राक्षर हो गए हों, मंत्रोच्चारण के देह-यंत्र बन गए हों। शैशव में नवमी के दिन हवन पर मैं भी बैठता था और सात सौ बार 'स्वाहा' के साथ अग्निकुंड में हविर्दान करता था। यज्ञ के उस धूम-यान पर मेरे कच्चे मन की चेतना बैठकर आकाश में ऊपर, बहुत ऊपर चली जाती थी और मैं लोकान्तरों की यात्रा कर आता था। उन्नीस सौ साठ से मैं विधिवत् दुर्गापाठ और नवरात्र-पूजन करता रहा हूँ, तबतक मैं प्राध्यापक भी हो गया था। इस पूजार्चन के माध्यम से मुझे अन्तर्यात्रा का जो सुख मिला है और स्वसाक्षात्कार के जितने गवाक्ष खुले हैं, वह मेरी एकान्त वैयक्तिकता है। जिस प्रकार करोड़ों रुपये और भौतिक साधन-संपन्नता से अन्तर्यात्रा और स्वसाक्षात्कार संभव नहीं है, उसी प्रकार अन्तर्यात्रा की सुगन्ध और स्वसाक्षात्कार की सुरभि से भौतिक साधन एवं धन-संपत्ति की उपलब्धि भी संभव नहीं है। दोनों दो धरातलों का सुख है, ऐसी मेरी मान्यता रही है। गलती वहाँ होती है, जब धन से धर्मोपलब्धि खरीदने की

निष्फल चेष्टा की जाती है और विलोमतः, धर्मोपासना से भौतिक उपलब्धियों की चेष्टा की जाती है। यह ग्रंथ मेरे लिए एक चमत्कार है, किंतु मैं चमत्कारी व्यक्ति नहीं हूँ। आत्म-विश्लेषण की उदारता और अन्तरीक्षण की तटस्थ विज्ञान-दृष्टि मेरे पास है। इस आधार पर मैं बिना किसी विनय-भाव और पूरे आत्म-विश्वास के साथ घोषणा कर सकता हूँ कि मैं एक अत्यंत साधारण और निर्विशेष व्यक्ति हूँ। इसी आत्म-विश्वास के आधार पर मैं यह भी कहने का अधिकारी बनता हूँ कि मेरे भीतर तपस्या-सी कठोर साधना, निरंतर अभ्यास तथा सर्वशास्त्र-समालोकी अनुसंधान की तात्त्विक-वृत्ति भी पूरी निर्मलता और वैज्ञानिकता के साथ है। चमत्कार-प्रदर्शन साधना की आरंभिक अवस्था का अवरोधक उपद्रव है। मैं इस उपद्रव से बचता रहा हूँ।

रुद्राक्ष के साथ कुछ घटनाएँ जुड़ी हैं। इन घटनाओं के यथार्थ और नियति पर विचार करने से एक निष्कर्ष निकलता है कि बिना किसी पूर्वायोजन और मानसिकता के मैंने यह ग्रंथ तैयार किया या मुझसे यह ग्रंथ लिखा गया। आज यह विचित्र लगता है, जब यह ग्रंथ पूरा हो चुका है और भूमिका के रूप में रचना-प्रक्रिया की दस्तावेज लिखने बैठा हूँ। मेरा व्यक्तिमन या व्यक्तिवाक् कुछ भी सोचे, कहे; किन्तु इसका नीर-क्षीर-न्याय तो उस सामाजिक न्यायालय में ही होगा, जहाँ एक सुनिश्चित लोकमन और विश्व-वाक् की अखंडनीय परंपरा है। मैं इतना-भर कह सकता हूँ, मैंने पूरे समर्पण और सात्त्विकता के साथ अपने व्यक्तिमन और व्यक्तिवाक् को लोकमन और विश्ववाक् से जुड़ने-जोड़ने की साधना की है। असत्य बहुत देर और दिन तक नहीं चल सकता और सत्य कभी पराजित नहीं होता। मिथ्या सफल हो सकती है, लेकिन जीत नहीं सकती; सत्य असफल हो सकता है, पराजित नहीं हो सकता। मिथ्या में मिथ् धातु है, जिससे 'मिथुन' या 'दो' का भाव बनता है। यहीं से द्वैतवाद की धारा और द्वित्व की मरीचिका का माया-खेल शुरू होता हे। सत्य तो एक है, उसी की सत्ता है, वही सच है। अस् धातु में शतृ प्रत्यय लगने पर 'सत्' शब्द बनता है, जिससे सत्य और सत्ता जैसे शब्द बनते हैं और जो सच्चिदानंन्द का मूलाधार-चक्र है। इस सत् और सत्य को स्वतः जीतना है। 'अनृतम्' ही मिथ्या है। उसकी विजय बाधित है। मिथ्या या अनृत की विजय आभास-मात्र है, सच्चाई नहीं। रुद्राक्ष पहनते-पहनते, रुद्राक्ष पर जप करते-करते और रुद्राक्ष पर अनुसंधान में लगे-लगे मैंने इस रहस्य को जान लिया है और इस पर मेरी आस्था है। पहले भी पढ़ा था—"कलौ जपात् सिध्दिः जपात् सिध्दिः जपात् सिध्दिः।" किंतु रुद्राक्ष ने इस घोषणा का साक्षात्कार करा दिया। अक्षर-विज्ञान, रुद्राक्षर और जप-योग के क्रम में ग्रंथ के भीतर मैंने इस रहस्य का थोड़ा-बहुत विश्लेषण भी किया है।

शक्ति-पूजा और शाक्त-दर्शन के कूट-कोटर में मैं कैसे चला आया, मैं खुद भी नहीं जानता। शाक्त-दर्शन और शक्ति-तंत्र की कूट-कुटी एवं अपने "शब्दाश्रम" में रहने के बाद मैंने अनुभव किया कि संपूर्ण आगम शिवोक्त हैं। शिव से बड़े दूसरे देवता भी नहीं। इन शिव को समझने और जपने के क्रम में रुद्राक्ष शिवाक्ष बनकर मेरे सामने आँखों की भाषा में बातें करने लगा। बहुसहस्र-वर्ष-पर्यंत शिव के

उन्मीलित-नेत्रों से निष्यन्दित अश्रु-बिन्दु जब पृथ्वी पर टपके तो रुद्राक्ष-वृक्ष और उसमें फलित रुद्राक्ष-बीज उत्पन्न हुए। उन्मीलित अवस्था में आत्मा का निवास आँखों में होता है। आँखों का सार-तत्त्व पिघल कर जब जल-बिंदु बनता है और उससे रुद्राक्ष की उत्पत्ति होती है तो इसमें पौराणिकता, वैज्ञानिक व्यावहारिकता और प्रतीक-विधान के साथ-साथ एक अव्यक्त अध्यात्म-यात्रा की वीथियाँ भी उपस्थित होती हैं। रुद्राक्ष-दर्शन के अध्यात्म-लोक, वनस्पति-विज्ञान, तांत्रिक उपयोगिता और जपयोग की मांत्रिकता के बृहदारण्यक या जंगल में जब मैं खो गया तो फिर अपने अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग-दर्शक भी नहीं मिला।

रुद्राक्ष की माला पर मैंने बीस वर्षों से जप किया है। अनुष्ठान और पुरश्चरण किए हैं। इन रुद्राक्ष-बीजों को शास्त्रोक्त-पध्दति से अभिषिक्त और प्राणप्रतिष्ठित किया है। रुद्राक्ष-माला के साथ समाज के विपत्तिग्रस्त व्यक्तियों के साथ जो प्रयोग किए, उन पर शिवाज्ञा और रुद्राक्ष-कृपा से सफलता भी मिली है। इन पंक्तियों की घोषणा के साथ मैं इस बात को भी स्पष्ट और संपुष्ट कर देना चाहता हूँ कि इसमें न तो मेरी कोई सिध्दि है, न मेरे साथ कोई चमत्कार है। यह सब रुद्राक्ष की कृपा का अनुभूत परिणाम है, जो निष्ठा और अनुष्ठान, पूजा, पुरश्चरण और जपयोग के माध्यम से किसी भी सात्त्विक साधक के द्वारा पुनः-परीक्षणीय-प्रयोग है। इस प्रसंग में कई बार लोग इस प्रश्न के साथ भी मेरे समक्ष उपस्थित हुए कि दवाओं की तरह या तांत्रिकों की तरह मैं सद्यःपरिणामी प्रयोग कर दिखाऊँ तो उनकी आस्था बन सकती है; अन्यथा यह वनस्पति-बीज अन्य बीजों की तरह सामान्य ही है। इस संबंध में मैं एक बात कहना चाहूँगा कि कलकत्ता में दक्षिणेश्वर की जो "काली" रामकृष्ण परमहंस के हाथों से शरीर धारणकर भोजन-ग्रहण करती थीं, बातचीत करती थीं, वह काली तो वहाँ आज भी उपस्थित हैं, किन्तु औरों के साथ उनसे बातें क्यों नहीं होतीं ? इस संबंध में इतना ही कहा जा सकता है कि यह साधकों की घनीभूत आस्था और तंत्र एवं अनुष्ठान तथा पूजा एवं जप-योग के अपने सात्त्विक विधान पर निर्भर करता है। वह रामकृष्ण की काली थी। हमें अपनी भी काली बनानी होगी। रुद्राक्ष-धारण और जपयोग में हमें स्वयं लगना होगा और उसके परिणाम नहीं निकलने के कोई कारण नहीं। अनेक शास्त्रों के वचन और साधकों की अनुभूतियाँ इतिहास-सिध्द सत्य हैं। आध्यात्मिक प्रत्यक्षीकरण नितांत व्यक्तिगत और एकांत प्रक्रिया है।

एक बार महर्षि अरविंद से किसी ने पूछा कि आप तो जन्मांतरों की जीवन-यात्रा जानते हैं। आप मेरे संबंध में बताइए कि मैं पूर्वजन्म में क्या था? उन्होंने कहा, "कल आओ, बता दूँगा।" दूसरे दिन जिज्ञासु उपस्थित हुए, भीड़ भी इकट्ठी हुई। महर्षि अरविंद ने पूछा, "जब आप पाँच वर्ष के थे तो दिसम्बर की पन्द्रह तारीख को संध्या पाँच बजे कहाँ, क्या कर रहे थे?" जिज्ञासु को कुछ याद नहीं था, निरुत्तर हो गए। उन्होंने फिर पूछा, "छोड़िए पचास वर्ष पहले की बात। कल संध्या ठीक पाँच बजे आप कहाँ क्या कर रहे थे, क्या सोच रहे थे?" ठीक-ठीक इसका भी

उत्तर नहीं मिल सका। महर्षि ने निष्कर्ष दिया; "जिस मानस से आप कल की बात स्मरण नहीं रख पाते, उस मानस से जन्मान्तरों की जीवन-यात्रा कैसे याद रहेगी? इसके लिए योग-समन्वय और निरंतर अभ्यास, ध्यान और निरंतर जप-योग की आवश्यकता है। आध्यात्म-लोक की नियमावली भिन्न है। उसकी साधना की पहली शर्त है आस्था। आज के व्यस्त, भौतिकतावादी, शीघ्रता-पीड़ित और सद्यःलाभाकांक्षी युग में यह सब एक दिनातीत बात है।"

रुद्राक्ष पर जो भी शास्त्रीय, पौराणिक और आप्त-ग्रांथिक-उध्दरण हैं, वे तो समीक्षणीय, विश्लेषणीय और संग्रहणीय हैं, उनके कुछ कूटार्थों को खोलने की आवश्यकता है, किन्तु रुद्राक्ष पर इधर जो दस-बीस पृष्ठ, पचीस-पचास पृष्ठ या एकपृष्ठीय इश्तहारनुमा चीजें छपी हैं, उनमें संस्कृत श्लोकों के रुद्राक्ष-संबंधी जो उध्दरण दिए गए हैं, या जो मंत्र दिए गए हैं, उनमें किसी का भी संदर्भ उपस्थित नहीं किया गया है, अधिकांशतः वे गलत भी हैं। रुद्राक्ष पर लिखनेवाले इन लेखकों और स्वतः घोषित सिध्द-साधकों ने ईमानदारी का निर्वाह नहीं किया है। ऐसा लगता है—ऋषि-कल्पित इन स्वयम्भू आचार्यों ने जैसे इन श्लोकों और आत्मदृष्ट मंत्रों की रचना स्वयं की है। सन्दर्भ-विच्छिन्न शास्त्रों का इस्तेमाल अपनी अनुकूलता में एक सांस्कृतिक अपराध है। इन पंक्तियों का लेखक यह मानता रहा है, विशेषकर रुद्राक्ष-जैसे प्रसंगों के उल्लेख में, तंत्रों के आसंग में, या शास्त्रों के प्रसंग में, सन्दर्भ का उल्लेख नितान्त आवश्यक है। इसी स्थापना के आधार पर ग्रंथ के अंतिम खंड में रुद्राक्ष पर उपलब्ध प्रायः समस्त वाङ्मय को संदर्भोल्लेखपूर्वक उपस्थित और संकलित किया गया है। संस्कृत के इन संकलित श्लोकों में अल्पांश का हिन्दी रूपान्तरण जो मिला, वह अनेक स्थलों पर भ्रामक भी था। अधिकांश का तो मूल ही रूप मिला, जिनका यहाँ स्वतंत्र अनुवाद किया गया है। ग्रंथ की उपयोगिता संदर्भों के संग्रह में तो है ही, अनुवाद के कारण उसकी एक और सामाजिक समीचीनता बनती है। इनके अतिरिक्त रुद्राक्ष के विभिन्न पक्षों पर विभिन्न दृष्टिकोण से विचार कर एक सर्वांगीण विवेचन उपस्थित किया गया है। रुद्राक्ष के शब्द-निर्वचन से लेकर तंत्र-शास्त्र तक, धारण-विधि से लेकर जपयोग तक, रोग-निवारण से लेकर कामना-सिध्दि-प्रयोग तक रुद्राक्ष के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण और निरूपण करने का प्रयत्न किया गया है। ज्योतिषशास्त्र के ग्रह-शमन-विधान से लेकर विभिन्न रुद्राक्षों के मंत्रों को भी संगृहीत किया गया है।

लेखक का विनीत विश्वास है, जहाँ संशोधन के गवाक्ष भी खुले हैं कि ये रुद्राक्ष-दर्शन, रुद्राक्ष-शास्त्र, रुद्राक्ष-तंत्र, रुद्राक्ष-साहित्य और रुद्राक्ष की प्रयोगशाला के रूप में एकत्र चिंतन का ऐसा अबतक कोई भी इतर शास्त्र-ग्रंथ, भारतीय वाङ्मय में उपलब्ध नहीं है। रुद्राक्ष भारतीय तत्त्व-दर्शन और साधना-प्रयोग का एक अद्भुत प्रयोग-सिध्द बीजाक्षर तथा सर्वतोभद्र-मंडल-पदार्थ है। विश्लेषण के और प्रयोग के अनेक बिंदु और भी बन सकते हैं, किन्तु विस्तार-भय के कारण यहाँ जो कुछ भी उल्लिखित है, उनमें वैज्ञानिकता एवं आप्तता के साथ संक्षेपण को महत्त्व दियां गया है।

रुद्राक्ष पर यह ग्रंथ एक दैवी-घटना है, ऐसा तो मैं नहीं मानता, किंतु एक विशेष मनोदशा में पहुँचने के बाद साधनास्थल के जपयोग और ध्यान का यह उत्तर-परिणाम है, ऐसा मैं कहने की स्थिति में हूँ। साहित्य की कुछ विधाओं में कुछ पुस्तकों का लेखक अचानक रुद्राक्ष पर ग्रंथ लिखने लग जाए और अनेक विघ्न-बाधओं के बीच पुस्तक पूरी हो जाए, इसे मैं अपने जीवन की एक घटना ही कहूँगा। ऐसा भी लगा है कि मैंने रुद्राक्ष पर जो कुछ लिखा है, वह किसी लेखक और ज्ञानी की हैसियत से नहीं, वरन् रुद्राक्ष ने ही किसी स्पंदित क्षणों में मुझसे सुदीर्घ-परिश्रम करवा कर इस अनुष्ठानयज्ञ को पूरा करा लिया है।

मेरा यह सात्त्विक दावा है और विनीत चुनौती है कि जिन्होंने भी इस ग्रंथ का आद्यन्त अध्ययन करने का सुलग्न-श्रम किया, वे अवश्य रुद्राक्ष-धारण करेंगे और विधिपूर्वक रुद्राक्ष-धारण एवं विहित जपयोग से आकांक्षित सफलता एवं सिध्दि प्राप्त करेंगे। यदि ऐसा नहीं हुआ तो लेखक साधकों के समक्ष यह घोषणा करता है कि विफलता की स्थिति में वह पुस्तक का मूल्य लौटा देगा। यदि निष्फलता मिलती है तो कहीं साधना और प्रयोग में, विधि और विधान में, अनुष्ठान और जपयोग में त्रुटि होगी। रुद्राक्ष का यह प्रयोग यदि सिध्दियों को प्रदान करने में फिर भी अक्षम और असमर्थ है तो इससे भी ऊँची आवाज में यह कहने की स्थिति होगी कि शिवपुराण गलत है, श्रीमद्देवीभागवत गलत हैं, महर्षि पतंजलि गलत हैं, रुद्राक्ष-जाबालोपनिषद् गलत है, अक्ष-मालिकोपनिषद् गलत है, और ऐसे अनेक शास्त्र गलत हैं। रुद्राक्ष की प्रयोगशाला के सारे प्रयोग और सिध्दियाँ झूठी हैं। परन्तु ऐसा है नहीं, इन शास्त्रों की रचना, मानसिक कल्पना के आधार पर नहीं, साधना के अन्तर्याग और तपस्या के नैमिषारण्य में हुई है। प्रयोग-सिध्द चीजें वैज्ञानिक हो जाती हैं। उनमें पुनः परीक्षणीयता के आयाम बनते हैं।

सम्पूर्ण देश में रुद्राक्ष के बीज और माला-प्रयोग प्रचलित हैं। आज तो विदेशों में भी इसका प्रयोग-प्रचलन तेजी से हो रहा है, किन्तु विधान-सम्मत एवं गुह्यार्थ-विश्लेषक ग्रंथ का अभाव है। यह प्रयत्न इस अभाव की पूर्ति कर देगा, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु यह भी सच है कि इससे रुद्राक्ष-लोक का अंधकार बहुत कुछ छँटेगा, स्तब्धता टूटेगी और कूटार्थ खुलेंगे। इस क्रम में इस विषय पर और भी अनेक ग्रंथों की रचना की आवश्यकता है और मैं स्वयं भी इस क्षेत्र में प्रयत्न और संकल्प लिए बैठा हूँ, किन्तु इसकी एक समाज-सापेक्षता भी है, यदि पाठकों, प्रयोक्ताओं और साधकों ने इस ग्रंथ का अन्तेवास प्राप्त किया और वे रुद्राक्ष-वन की सुगन्धि से सुरभित हुए तो मैं अपना श्रम और अपनी साधना सार्थक समझूँगा एवं संकल्पित ग्रंथों को पूरा करने का अनुष्ठान-यज्ञ भी करूँगा।

१९७४ में कुंभ के अवसर पर जब मैं प्रयाग गया था और भारतीय संस्कृति के एक मचान के उच्चासन पर बैठे महर्षि देवरहा बाबा से घंटे भर प्रश्नोत्तर का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो कुछ बातें उभर कर सामने आयी थीं। एक तो यह कि गुरु आवश्यक

भी एक बाधा थी। गणेश-गति और विनायक-बुध्दि के साथ किसी सुबुध्द श्रुति-लेखक की आवश्यकता थी। इसी क्रम में एक दिन अचानक श्री कमला कान्त उपाध्याय मेरे समक्ष आए और श्रुति-लेखक बन गए। यह सब एक अप्रत्याशित अचिंतित-पूर्व और अनामंत्रित संघटना थी। रुद्राक्ष पर शोध-शास्त्र-मंथन, तात्त्विक-चिंतन, आत्म-प्रयोग और ग्रंथ-लेखन आरंभ हुआ। लगभग दस साल के निरंतर अध्ययन और अनुसंधान तथा लेखन का परिणाम बना यह ग्रंथ।

कमला कान्त उपाध्याय, पटना विश्वविद्यालय से एम.ए. (संस्कृत) में प्रथम श्रेणी में परीक्षोत्तीर्ण सात्त्विक और मेधावी छात्र रहे हैं। इन्होंने रात-रात-भर जगकर मेरा डिक्टेशन लिया है। ये स्वयं भी साहित्य, ज्योतिष और साधना के आंगन में अमूर्च्छित वृक्ष का व्यक्तित्व रखते हैं। मैं इनके प्रति अनुगृहीत होने की औपचारिकता के लिए शब्दों का अपव्यय नहीं करता; क्योंकि इन्होंने इस कार्य में पूजा-भाव से जैसी आनुष्ठानिक तत्परता दिखाई है, वह अननुभूतपूर्व है। आशीर्वाद के रूप में मैंने इन्हें रुद्राक्ष की प्राण-प्रतिष्ठित तथा अभिषिक्त-अभिमंत्रित एक माला-भर दी है और इनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

इस प्रसंग में मैं अपनी पुत्री शैली भाषांजलि को इसलिए भी उद्धृत करना चाहूँगा कि पांडुलिपि की प्रस्तुति में उसने जपयोग की निष्ठा के साथ मेरे श्रुति-लेख को अक्षरांकित किया है। पुरस्कार के रूप में मैंने उसे पार्थिव-पूजन की वैदिक और तांत्रिक विधियाँ बताईं, जिनका अभ्यास वह आज भी करती है। देखकर मुझे सुख और संतोष मिलता है। अनुग्रह-प्रकाश के क्रम में मैं संजीव रंजन मिश्र को स्मरण करता हूँ। जिन्होंने ज्योतिषशास्त्र के विवेचन-क्रम में मुझे सहयोग और परामर्श दिये हैं। श्री मिश्र साधना और सहज-ज्ञान के प्रतिभापुत्र हैं। मैं उनके मंगल की कामना करता हूँ। मैं भविष्यवाणी भी करता हूँ, वे एक दिन देश के वैज्ञानिक भविष्यवक्ताओं में एक होंगे।

ग्रंथ-लेखन के इस क्रम में जिन शताधिक ग्रंथों का अध्ययन और अवलोकन मैंने किया है, वे मेरी प्रणति के अधिकारी हैं। उस प्रसंग में मैं तपोनिष्ठ श्रीराम शर्मा आचार्य को यदि एक ओर गायत्री-क्रांति के लिए बहुशः बधाई और धन्यवाद देता हूँ तो दूसरी ओर शास्त्रों के प्रति उनकी स्वैराचारी मृगया के प्रति दुःख भी प्रकट करता हूँ। उनके द्वारा संपादित और अनूदित शिवपुराण में ६४ श्लोक हैं, जबकि मूल महाशिवपुराण में ९५ श्लोक हैं। श्लोकों की संख्या कम कर देने का, बिना किसी घोषणा के, आचार्य-प्रवर को कोई अधिकार नहीं था। यह एक सांस्कृतिक-प्रवंचना है। मैं इसका विरोध करता हूँ।

जब मुझे मूल शिवपुराण की आवश्यकता पड़ी तो पटना में मुझे यह पुस्तक कहीं नहीं मिली। विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, संस्थान, पुस्तकालय कहीं भी यह पुस्तक नहीं मिली। चौदह-पन्द्रह लाख की आबादी वाली इस महानगरी में शिवमहापुराण नहीं मिला। बंबई से पुस्तक मँगानी पड़ी तो काम आगे बढ़ा। बजाय पचीस प्रतिशत

कमीशन देने की जगह पुस्तक-विक्रेता ने मुझसे पचीस प्रतिशत अधिक अर्थराशि की माँग की। तीन सौ रुपये की पुस्तक पौने चार सौ रुपये में खरीदनी पड़ी। रुद्राक्ष ने एक यह भी रहस्योद्घाटन किया। मैंने अनुभव किया है कि रुद्राक्ष कोई धर्म या संप्रदाय नहीं, वरन् संपूर्ण मानव-वंश का परीक्षित एवं अपेक्षित जीवन-तंत्र है।

इस ग्रंथ के निर्माण में शताधिक साधकों से मैंने साक्षात्कार किया और शताधिक आप्त शास्त्रों का मनन किया है। फिर अपने जीवन की प्रयोगशाला में मैंने रुद्राक्ष-सूत्रों का परीक्षण भी किया है। हम अपनी ही साधन-साधना-हीनता में सूत्रों को खारिज करते रहते हैं। वस्तु और वस्तुदर्शक सूर्यप्रकाश में भी हम कुछ भी नहीं देख पाते, यदि दुर्भाग्य-वश हमारी नेत्रज्योति अशक्त हो। सत्य सदैव स्वप्रकाशी होता है। रुद्राक्ष एक 'सत्य' है। इस सत्य से साक्षात्कार हमारी अपनी साधना पर निर्भर है। रुद्राक्ष एक ऐसे बीजाक्षर-मन्त्र की तरह है, जिसके चतुर्दिक् संस्कृति की सर्वांगीण यज्ञशाला और आत्मानुभूति का पुरश्चरण अनुष्ठित होता रहा है। विज्ञान के भौतिकतावाद, आधुनिक समाज के वित्तवाद, राजनीति के वर्तमानवाद और स्वार्थ की बहिर्मुखता ने आज अंतःप्रज्ञा, अंतर्याग, स्वसाक्षात्कार, समाधित अनुभूति और लोकोत्तर आनन्दवाद पर प्रश्न-चिह्न लगा दिए हैं। लोक और लोकोत्तर के बीच अंतर्लोक है। यही सेतु टूट रहा है, इसलिए हम न तो उत्तीर्ण हो पाते, न ही पारंगति को उपलब्ध हो पाते। अस्तु! यह ग्रंथ आपके लिए आत्मानुसंधान का एक ऐसा तीर्थ (घाट) सिध्द हो, जहाँ से आपकी अंतर्यात्रा की मोरपंखी नाव खुल सके, यही कामना है। इस ग्रंथ के प्रकाशन के लिए मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली के स्वामी श्री देवेन्द जैन का मैं अनुगृहीत हूँ, जिन्होने ग्रंथ-प्रकाशन का सांस्कृतिक दायित्व लिया है। वे रुद्राक्षरता को उपलब्ध हों, यही कामना है। इत्यलम्।

निशांतकेतु

शब्दाश्रम
बी 970, पालम विहार
कार्टरपुरी (दिल्ली-हरियाणा-सीमा)
गुड़गाँव, हरियाणा, पिन : 122001
9 मार्च 1991

जनन-यंत्र

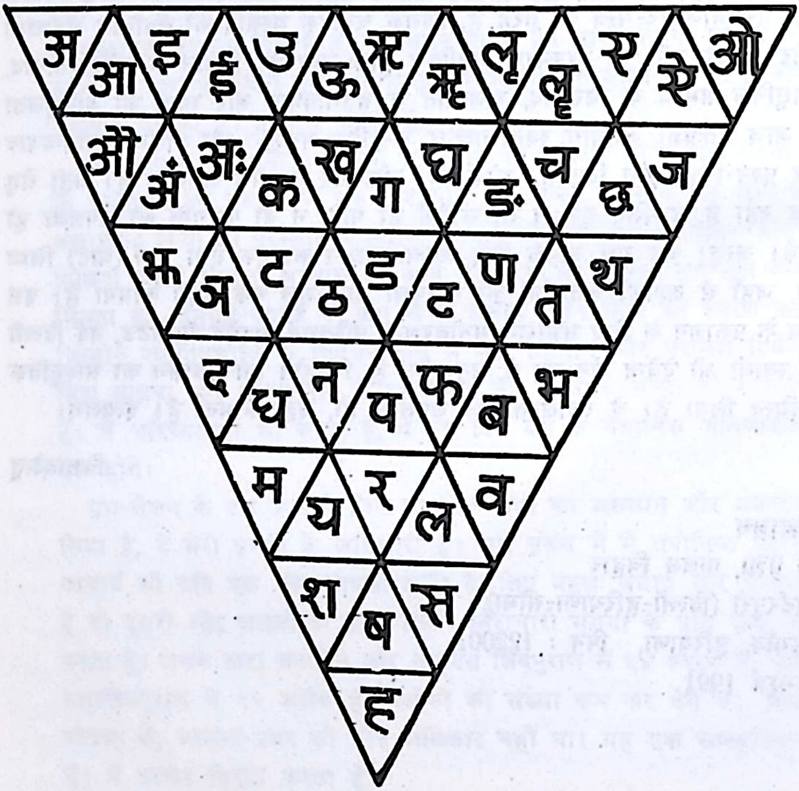
अ
आ
इ
ई
उ
ऊ
ऋ
ॠ
लृ
ॡ
ए
ऐ
ओ
औ
अं
अः
क
ख
ग
घ
ङ
च
छ
ज
झ
ञ
ट
ठ
ड
ढ
ण
त
थ
द
ध
न
प
फ
ब
भ
म
य
र
ल
व
श
ष
स
ह

जनन-यंत्र

प्रथम अध्याय

अनुसंधान तथा अनुशीलन

'रुद्राक्ष' शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ-संपदा

रुद्राक्ष बीज और वृक्ष दोनों को कहते हैं। संस्कृत में 'रुद्राक्षः' (पुँल्लिंग) रुद्राक्ष के वृक्ष को कहते हैं और रुद्राक्षम् (नपुंसक लिंग) रुद्राक्ष के फल या बीज को कहते हैं। 'रुद्राक्ष' शब्द धर्मशास्त्र और जपयोग का शब्द है, किंतु मूलतः यह वनस्पति-विज्ञान का शब्द है।

वनस्पति-विज्ञान के अनुसार रुद्राक्ष के पत्ते हरे तथा फूल भूरा होता है। यह एक पहाड़ी पेड़ है। इसके सूखे फलों की माला बनती है। यह गर्म और तर होता है। कुछ वनस्पति-विद् इसे शीतल मानते हैं। रुद्राक्ष के आयुर्वेद-शास्त्रीय गुणों का उल्लेख करते हुए यह अभिमत स्थिर हुआ है कि यह शरीर के अवयवों को बलवान् करता है। यह रक्तविकार को नष्ट तथा धातु को पुष्ट करता है। शरीर के बाहर और भीतर के कीटाणुओं को मारता है। यह वायु-विकार, कफ, शिरोपीड़ा, चेचक, पक्षाघात, प्रसूति-रोग इत्यादि को नष्ट करता है। स्वाद की दृष्टि से यह खट्टा, गर्म और रुचिकर होता है। आयुर्वेद और वनस्पति-विज्ञान की दृष्टि से रुद्राक्ष एक प्रयोग-सिद्ध महौषधि है। इससे रक्तचाप और हृद्रोग दूर होते हैं। रुद्राक्ष-धारणपूर्वक स्नान करने से शरीर मे रोग-नाशिनी शक्ति का जागरण होता है। जल की विद्युत्-शक्ति और रुद्राक्ष के वानस्पतिक गुणों के संयोग से यह परिणाम उत्पन्न होता है। शरीर में रुद्राक्ष-धारण, जपकाल में अँगुलियों से रुद्राक्ष-बीज का स्पर्श और स्नान के समय जलगत विद्युत्-शक्ति के संस्पर्श से रुद्राक्ष में एक नई शक्ति और प्रभावशाली विद्युत्-स्पंदन का आगमन हो जाता है। रुद्राक्ष के बीजों की माला पर किये गये जप से एक ओर आत्म-विकास होता है तो दूसरी ओर शरीर के विभिन्न अंगों पर रुद्राक्ष-धारण से रोग नष्ट होते हैं; स्वास्थ्य-लाभ होता है और अनागत रोगों से सुरक्षा मिलती है। इस प्रकार रुद्राक्ष शरीर और आत्मा दोनों का कल्याण करता है।

रुद्राक्ष की उत्पत्ति के संबंध में कहा गया है कि यह रुद्र की आँखों से उत्पन्न हुआ है। इसलिए यह रुद्राक्ष है—(रुद्र + अक्षि)। अर्थात् रुद्र की आँखवाला अथवा रुद्र की आँखों से उत्पन्न। रुद्राक्ष बीज में आँख (अक्षि-अक्ष) को लक्षित करनेवाली एक

या एकाधिक रेखाएँ होती हैं। ये रेखाएँ अक्षि-प्रतीक हैं। संस्कृत में अन्ननास या अनानास फल के लिए 'अनन्ताक्ष' शब्द है, जिसका अर्थ है—अनन्त अक्षियोंवाला। यह सच भी है, इस फल में अनन्त आँखें होती हैं। इस आधार पर रुद्राक्ष का भी तात्पर्य रुद्र की आँखवाला फल समझा जाएगा। 'रुद्राक्ष' शब्द को अक्षि के अतिरिक्त अक्षम् शब्द से भी समस्त किया जा सकता है। 'अक्षम्' का कोशार्थ है—इन्द्रिय एवम् इन्द्रिय-विषय। इस आधार पर रुद्राक्ष (रुद्राक्षम्) का अर्थ रुद्रेन्द्रिय या रुद्रेन्द्रिय-विषय हो जाएगा। रुद्रेन्द्रिय के रूप में फिर इसका अर्थ रुद्र की आँख तक पहुँचता है, क्योंकि रुद्र के साथ इन्द्रियों में प्रमुख हैं, उनकी तीनों आँखें। इसी आधार पर वे त्रिनेत्र और त्र्यम्बक कहे जाते हैं।

'अक्ष' शब्द का अर्थ संपूर्ण वर्ण-समूह भी है। हलायुध-कोश के अनुसार अ से क्ष-पर्यंत इक्यावन वर्णों को अक्ष कहते हैं—"अकारादिक्षकारान्तैकपञ्चाशद्वर्णाः।" अ से ह तक उनचास वर्ण हैं; वैदिक ळ पचासवाँ वर्ण है, किंतु विशेष कारणों से क्ष को जोड़कर इक्यावन वर्णों की एक वर्णमाला या अक्षरमाला बनती है, जिसे अक्षमाला कहते हैं। अब 'रुद्राक्ष' शब्द का अर्थ 'अक्ष' के इस नये अर्थ के साथ भी किया जा सकता है। 'रुद्राक्ष' अर्थात् वह बीज-विशेष, जिसपर संपूर्ण वर्णमाला या अक्षर-समूह विराजमान हैं। रुद्राक्ष के पर्यायवाची शब्दों के आधार पर भी इसका अर्थान्वेषण किया जा सकता है। इसके नौ पर्याय शब्द मिलते हैं,—रुद्राक्ष, शिवाक्ष, शर्वाक्ष, भूतनाशन, पावन, शिवप्रिय, तृणमेरु, अमर और पुष्पचामर। इनमें प्रथम तीन शब्द (रुद्राक्ष, शिवाक्ष, शर्वाक्ष) शिव के तीन नामों (रुद्र, शिव और शर्व) के साथ समस्त हैं। भूतनाशन का अर्थ संसार के समस्त भौतिक तापों का नाश करनेवाला बीज कहा गया है। यह परम पवित्र (पावन) है। यह शिव से उत्पन्न होने के कारण शिवप्रिय भी है। अपने से उत्पन्न सभी चीजें प्रिय नहीं भी हो सकती हैं; किंतु रुद्राक्ष शिवोत्पन्न और शिवप्रिय दोनों है। यह समस्त वनस्पतियों में सर्वोच्च या सर्वोत्कृष्ट भी है। इसीलिए इसे तृणमेरु कहते हैं। तृणमेरु का एक दूसरा भी अर्थ है,—मेरु या पर्वत पर उत्पन्न वृक्ष। पुष्पचामर का अर्थ हुआ,—पुष्प-जाति के अंतर्गत रुद्राक्ष चामर (चँवर) की तरह विशिष्ट है। रुद्राक्ष के पर्याय का एक शब्द 'अमर' इसके तीन अर्थों को प्रकट करता है। एक तो रुद्राक्ष देवोपम है (देव को अमर कहा जाता है—अमरानिर्जरादेवा···) । दूसरे अर्थ में रुद्राक्ष अक्षरार्थक है, अ से क्ष-पर्यंत अक्षरों का सूचक है। अक्षर (अ + क्षर) अविनाशी या अमर होते हैं। इसलिए भी रुद्राक्ष-पर्याय 'अमर' शब्द अक्षर (अ + क्षर) वाचक है। तीसरे, स्वयं रुद्र मृत्युंजय या महामृत्युंजय हैं, इसलिए उन्हें अमर कहा जाता है। इस दृष्टि से रुद्राक्ष स्वयं शिवस्वरूप हैं। रुद्राक्ष-पर्याय 'अमर' इन तीनों अर्थों को द्योतित करता है। अंगरेजी में रुद्राक्ष के लिए Elaco Carpus Seeds कहते हैं।

रुद्राक्ष से ग्रह-बाधा और भूत-पिशाचादि-बाधा का भी शमन होता है, ऐसा शास्त्रवचन है। रुद्राक्ष-धारण अनेक कामना-सिद्धि के लिए भी किया जाता है। रुद्राक्षमाला ही एकमात्र ऐसी माला है, जिसपर सभी प्रकार का जप किया जा सकता

है। महामृत्युंजय सदाशिव और आशुतोष शिव के लिए रुद्राक्ष पर जप-विधान तो सद्यःसिद्धिदायक और शुद्धि-विधायक है।

रुद्राक्ष का बीज दृश्यता और श्रव्यता का एकमात्र प्रतीक-बीज है। शिव के नेत्र से उत्पन्न होने के कारण अक्षि-धर्मिता-युक्त रुद्राक्ष दृश्यता (Vision) का पर्याय है; जबकि एकवक्त्र, द्विवक्त्र, त्रिवक्त्र, चतुर्वक्त्र, पंचवक्त्र इत्यादि नामों के कारण रुद्राक्ष रुद्रमुखीन भी है। मुख से अक्षरों का निस्सरण होता है। ये मुख-निस्सृत अक्षर श्रव्य और अक्षरणीय होते हैं। इस प्रकार रुद्राक्ष शिव की दृश्यता और शिव की श्रव्यता दोनों का संगम-स्थल है। अक्षरों का उद्‌गम शिव से ही माना जाता है। शिव के डमरू से उत्पन्न चौदह प्रत्याहारों का उल्लेख व्याकरण-पुराण सिद्ध-सिद्धान्त है। अतः रुद्राक्ष वर्ण (दृश्य) और अक्षर (श्रव्य) दोनों का सम्यक्‌ समीकरण और एकाश्रयीभूत प्रतीक-पुष्प तथा प्रतीक-फल है। रुद्राक्ष (रुद्राक्षम्) फूल और फल दोनों है। शिव के डमरू से चौदह प्रत्याहार निकले थे और रुद्राक्ष के संबंध में जो शास्त्रोल्लेख है, उसमें चौदहमुखी तक का ही उल्लेख मिलता है।

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम् ।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धा नेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम् ॥

अइउण् । ऋलृक् । एओङ् । ऐऔच् । हयवरट् । लण् । ञमङणनम् । झभञ्।
घढधश् । जबगडदश् । खफछठथचटतव् । कपय् । शषसर् । हल् ।

इस प्रकार रुद्राक्ष वर्णाक्षर का एकाश्रय है। वर्ण शक्ति-पीठ और अक्षर शिव-तत्त्व है। इस तरह रुद्राक्ष को इस व्याख्या के अनुसार उमामहेश्वर-रूप अर्धनारीश्वर कहा जा सकता है। रुद्राक्ष के अंतर्गत नर-नारी-रूप, वर्णाक्षर-रूप, वृक्ष-वल्लीरूप, पुष्पगंध-रूप, अक्षर-सोमरूप और लिंग-पीठ-रूप का जो अद्‌भुत समन्वय है, शायद उसी को ध्यान में रखकर कृष्ण यजुर्वेदीय रुद्रहृदयोपनिषद् में कहा गया है—

रुद्रो नर उमा नारी तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो ब्रह्मा उमा वाणी तस्मै तस्यै नमो नमः ॥
रुद्रोवृक्ष उमा वल्ली तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रः पुष्पमुमा गन्ध तस्मै तस्यै नमो नमः ॥
रुद्रोऽर्थ अक्षरा सोमा तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो लिङ्गमुमा पीठं तस्मै तस्यै नमो नमः ॥

शास्त्रों में इस रुद्राक्ष के संबंध में कहा गया है कि इसे विधिपूर्वक मन्त्रों से अभिषिक्त कर धारण करना चाहिए। स्वयं रुद्र भी रुद्राक्ष धारण करके ही रुद्रत्व को प्राप्त करते

हैं। मुनि सत्य-संकल्प को प्राप्त करते हैं और ब्रह्म ब्रह्मत्व को उपलब्ध होते हैं—

रुद्राक्षधारणादेव रुद्रो रुद्रत्वमाप्नुयात् ।
मुनयः सत्यसङ्कल्पा ब्रह्मा ब्रह्मत्वमागतः ॥

अर्थात् इस विश्व में रुद्राक्ष-धारण से बढ़कर श्रेष्ठ कोई दूसरी वस्तु नहीं है,—

"रुद्राक्षधारणाच्च श्रेष्ठं न किंचिदपि विद्यते ।"

'रुद्राक्ष' शब्द के पर्याय में 'अक्ष' भी है। अक्षमालिकोपनिषद् में 'अक्ष' शब्द का अर्थ व्याख्यात-रूप में रुद्राक्ष ही है। इस उपनिषद् में इक्यावन अक्षरों का आवाहन, इक्यावन रुद्राक्ष-बीजों पर किया गया है। इन रुद्राक्ष-बीजों को इस उपनिषद् में सर्वत्र अक्ष ही कहा गया है। जैसे—'ॐ। अंकार मृत्युञ्जय सर्वव्यापक प्रथमे अक्षे प्रति तिष्ठ।'

लिंगायतों में अष्टवर्ग-संस्कार का उल्लेख है। इसके अनुसार जन्म के साथ ही सद्यः-जात शिशु का आठ प्रकार का संस्कार किया जाता है, जिसे अष्टवर्ग-संस्कार की संज्ञा दी जाती है। यह आठों पापों से बचाता है और कवच का भी काम करता है। भारतीय सनातन संस्कारों में अंत्येष्टि के बाद जो श्राद्ध-संस्कार होता है, उसमें रुद्राक्ष-दान की महिमा का उल्लेख किया गया है। यह रुद्राक्ष-माला निधनांतर-स्थिति में सूक्ष्म शरीर के लिए लोकांतर-यात्रा का पथ-प्रदर्शक, सहयोगी और संबल सिद्ध होती है। इस प्रकार रुद्राक्ष जीवन की धारा का उपसर्ग और प्रत्यय की तरह जन्म और निधन-संस्कारों से संबद्ध होकर नियति-नियामक हो गया है।

रुद्राक्ष सृष्टि के संपूर्ण ब्रह्म-तत्त्व, देव-तत्त्व, शुभ-तत्त्व तथा शेष सभी उत्तमोत्तम तत्त्वों का एकाकी जाग्रत्, प्राण-प्रतिष्ठित एवं बीजाक्षरित संग्रहालय है।

'रुद्राक्ष' की अनेक अर्थ-संपदाओं में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शब्द 'अक्ष' है। यह अ से क्ष-पर्यंत अक्षरों का समाम्नाय तो है ही, संपूर्ण वाङ्मयात्मक जगत् के लिए धुरि अर्थ को व्यक्त करनेवाला अक्ष भी है। वामन शिवराम आप्टे के संस्कृत-कोश में अक्ष-शब्द का अर्थ है—रुद्राक्ष; किंतु इसके साथ ही अन्य अर्थों को भी दिया गया है; जैसे—धुरी (धुरि), गाड़ी, पहिया, तराजू की डंडी, अक्षांश रेखा, चौसर का पासा, गरुड़, संविधान, ज्ञान और आत्मा। अक्ष के साथ अनेक समस्त-पद बनते हैं; जिनके अनेक अर्थ हो जाते हैं; जैसे—अक्षकूट (आँख की पुतली), अक्षजम् (प्रत्यक्ष ज्ञान, संज्ञान, वज्र, हीरा), अक्षजः (विष्णु), अक्षतत्त्व, अक्षविद्या (जुआ खेलने की कला), अक्षदर्शक (न्यायाधीश, जुए का अधीक्षक), अक्षपटल (न्यायालय), अक्षपाटक (न्यायाधीश), अक्षपाद (न्याय-दर्शन के प्रवर्तक—गौतम ऋषि), अक्षभाग, अक्षांश (अक्षांश-रेखा), अक्षभार (गाड़ी का बोझ), अक्षमाला, अक्षसूत्रम् (रुद्राक्षमाला, हार), अक्षराज (जुए का व्यसनी), अक्षवाट (जुए की मेज), अक्षहृदयम् (जुए में पूर्ण दक्षता या निपुणता) इत्यादि।

अक्ष से संबद्ध एक 'अक्षौहिणी' शब्द है। महाभारत के प्रसंग में अट्ठारह अक्षौहिणी सेना का उल्लेख किया गया है। अक्षौहिणी के निर्वचन में कहा गया है, अक्ष् + ऊह + णिनि + ङीप् = अक्षौहिणी। इसकी व्याख्या में कहा गया—अक्षाणां रथानां सर्वेषामिन्द्रियाणां वा ऊहिनी। एक अक्षौहिणी पूरी चतुरंगिणी सेना होती थी, जिसमें २१,८७० रथ, २१,८७० हाथी, ६५,६१० घोड़े, १,०९,३५० पदाति (पैदल) की व्यवस्था होती थी। १८ अक्षौहिणी सेना में कुल संख्या ३९,३६,६०० है। संपूर्ण महाभारत कुपित विषाक्षरों का युद्ध है। इसलिए मूलतः यह वाग्युद्ध है। वाक् के चार पद से बनी हुई चतुरंगिणी सेना गुणित होते-होते ३९,३६,६०० आवृत्त अक्षर-समाम्नाय तक पहुँचकर वाग्युद्ध का महाभारत उत्पन्न कर देते हैं।

'रुद्राक्षर' एक तांत्रिक शब्द है, जिसकी दो संधियाँ हो सकती हैं—रुद्र + अक्षर और रुद्राक्ष + र। अक्षर के अनेक अर्थों में महत्त्वपूर्ण हैं—अविनाशी, अक्षरणीय, ब्रह्म, कूटस्थ, नित्य, आत्मा, गगन, धन, तपस्या और अपामार्ग। विष्णुपुराण में शब्द, अक्ष (अक्षर) और प्रत्याहार का समन्वय इस रूप में किया गया है,—

शब्दादिष्वनुरक्तानि निगृह्याक्षाणि योगवित्
कुर्याच्चित्तानुकारीणि प्रत्याहार-परायणः॥

रुद्राक्ष अपने पर्याय, अर्थ-संपदा और अर्थ-यात्रा की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण और महनीय शब्द है। एक ओर यह सांस्कृतिक चेतना का नियामक शब्द है तो दूसरी ओर साधना का सिद्धिप्रद-पद। शिव देवाधिदेव माने जाते हैं, उन्हें ही महादेव कहा जाता है। रुद्राक्ष उनका नेत्रोत्पन्न बीज है। इसलिए यह शब्द बीजाक्षर-मंत्रवत् और स्वयं रुद्रस्थानीय रुद्राक्षर-तत्त्व है। रुद्राक्ष-संस्कृति ही भारतीय-संस्कृति है—यदि कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी।

अक्षर और रुद्राक्षर

सृष्टि अक्षरात्मक है। अक्षरों से ही सृष्टि का निर्गम, उसकी स्थिति और प्रलय की प्रक्रिया चलती है। ये अक्षर, वस्तुतः मातृकाक्षर हैं। जननी को माता कहते हैं। आद्या-शक्ति भी परमात्म-स्वरूपिणी माता है। ये दोनों भी मातृकाक्षराश्रित हैं। माता के मूल 'मातृ' 'स्वार्थे कन्' प्रत्यय लगने पर 'मातृक' शब्द बनता है, जिसमें 'टाप्' (आ) प्रत्यय लगाकर 'मातृका' शब्द बनता है, जो माता की तरह तो है ही, माताओं की भी माता है। यह मातृकाक्षर मातृवत् और मातृ-मान-मेयात्मक है।

प्रथम सृष्टि एक महान् स्फोट के स्पंदन का उत्तर-परिणाम है। इसी के कारण सृष्टि आज तक स्पंदित है। यह परम-तत्त्व की चैतन्य-शक्ति के स्फुरण से स्पंदनात्मक है। चेतनात्मक और प्रकाश-विमर्श-रूपात्मक परमेश्वर शिव के संकल्पभूत उन्मेष-मात्र से ब्रह्मांड की उत्पत्ति हुई है। इसे ही 'विश्व-विकसित-मुद्रा' कहते हैं। स्पंद एक

निर्विकल्प स्थिति है, जिसमें संपूर्ण ब्रह्मांड त्वरित्-गति से संसरणशील (संसृति), गमनशील (जगत्) और वर्तुलित बृंहणशील (ब्रह्मांड) होने पर भी अपनी अस्पंदरूपता में स्थित एवं दृश्यमान है। सामान्य स्पंद के आधार पर विशेष स्पंद की स्थिति है। बहुत तेज नाचता हुआ लट्टू स्थिर दिखाई पड़ता है। यही सृष्टि-चक्र का शैवागम-स्पंद-दर्शन है। इसे ही त्रिक-दर्शन, स्त्यानावस्था, यामल-भाव, समावेश-दशा, सामरस्य-भाव, परावस्था, निस्पंदावस्था, समरसता, और अर्धनारीश्वरता कहते हैं। इस मातृकाक्षरात्मक जगत् को ही शिव-शिवात्मक, प्रकाश-विमर्शात्मक, अर्थशब्दात्मक, महाकाल-महाकालिकात्मक, अर्थवागात्मक, एवं परमेश्वर-परमेश्वर्यात्मक कहते हैं। शिवपुराण में इसे ही इस रूप में कहा गया है,—

"शब्दजातमशेषं तु धत्ते शर्वस्य वल्लभा ।
अर्थस्वरूपमखिलं धत्ते मुग्धेन्दुशेखरः ॥"[1]

अर्थात् भगवान् शिव की शक्ति समस्त शब्दों का और शिव समस्त अर्थों का स्वरूप-धारण करते हैं। वागर्थात्मक शब्द-ब्रह्मात्मक ही क्रमशः परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी वाणी में परिणत-रूपांतरित होता रहता है। परा का स्थान नाभि के नीचे मणिपुर-चक्र में है। यहाँ शिव-शिवा का अर्धनारीश्वर-रूप होता है, जिसे स्त्यानावस्था कहते हैं। नाभि शरीर का केंद्र है। सो जाने पर इसी नाभि का चतुर्दिक् भाग श्वास-गति से उठता-बैठता रहता है। जन्म होने पर इसी नाभि से प्राण-सूत्र जननी के गर्भाशय के साथ जुड़ा हुआ होता है। यह शरीर का, चित्त और बुद्धि का, चेतना और आनंद का केंद्र-स्थल और नाभिकीय-बिंदु है। पश्यन्ती हृदय-चक्र-अनाहत का वह स्थान है, जहाँ परा-वाक् वर्ण बन जाती है और उसमें रंग उत्पन्न हो जाता है। श्रव्यता दृश्य हो जाती है। श्रुति चाक्षुष बन जाती है। अक्षर वर्ण हो जाता है। यहीं ऋषियों ने साधना-समाधि की अवस्था में स्वसाक्षात्कार-पूर्वक मंत्रों को देखा था—ऋषयः मन्त्रद्रष्टारः। वाक् यहाँ अनाहत रहती है।

फिर कंठ-चक्र-विशुद्धि में मध्यमा का अव्यक्त शास्त्र वाणी बनने को व्याकुल हो जाता है। वैखरी की स्थिति में आते-आते वाणी ध्वनित होकर आकाशात्मक पवन अथवा पवनात्मक आकाश पर आरूढ़ हो जाती है। यहीं से व्यक्त वाङ्मय का वितान शुरू होता है। अनाहत-ध्वनि आहत हो जाती है। आहत होकर वाणी उच्चार्यमाण और श्रव्य हो जाती है। टेलीविजन् के सेट पर श्रव्य और दृश्य दोनों आते हैं। दूरदर्शन के केंद्र से आकाश में जो ध्वनि उछाली जाती है, वह टी.वी. सेट पर रंगों में दृश्यामान हो जाती है। ताँबे के तार में स्पंदित-ध्वनि रूप ले लेती है और ध्वनि तो उत्पन्न होती ही है। इस प्रकार अक्षर से वर्ण और वर्ण से अक्षर, यानी नाम से रूप और

---

[1] शिवपुराणः, वायवीय-संहिता।

रूप से नाम का रूपांतरण होता ही रहता है। नाम-रूपात्मक जगत् का यह खेल, वस्तुतः मातृकाक्षरात्मक है।

नन्दिकेश्वर की कारिकाओं में कहा गया है कि नृत्य के पश्चात् नटराज शंकर ने चौदह बार डमरू को बजाया था, जिससे शिव-सूत्र-जाल की संरचना हुई थी। सनकादि सिद्धों की उद्धार-कामना से यह प्रयत्न-प्रेरित था। शिव के डमरू से उत्पन्न चौदह सूत्रों का अक्षर-समाम्नाय इस प्रकार है,—

अइउण् । ऋलृक् । एओङ् । ऐऔच् । हयवरट् । लण् । ञमङणनम्। झभञ्।
घढधष् । जबगडदश् । खफछठथचटतव् । कपय् । शषसर् । हल् ।

ये ४३ अक्षर तथा शेष स्वर (आ, ई, ऊ, ॠ, ॡ, अं, अः) मिलकर पचास अक्षर होते हैं। 'इ' की आवृत्ति है। इसलिए उनचास अक्षर होंगे। ये ही मूल मातृकाक्षर हैं। पवन की संख्या उनचास है। अक्षरों का उच्चारण पवन की सहायता के बिना नहीं हो सकता। प्रत्येक अक्षर के लिए एक-एक पवन उत्तरदायी और ध्वनि-वाहक है। यह अनुसंधान का अव्याख्यात-विषय है।

संसार की समस्त मानवीय ध्वनियों को उनचास अक्षरों में ही व्यवस्थित किया जा सकता है। बारह कुलों में विभक्त विश्व की २,७९६ भाषाओं में यही उनचास अक्षर, वर्णाकृत, एवं उच्चार्यमाण हैं। शेष ध्वनियाँ संयुक्त हैं। मनुष्य-जाति ने इन अक्षरों के उच्चारण को लाखों वर्षों के प्रयत्न के बाद सीखा है। इस शिक्षण में मानव-वंश ने पशु-पक्षियों का अनुकरण किया है। एक-एक पशु या पक्षी अपने संपूर्ण-जीवन-काल तक एक-एक, दो-दो अक्षर बोलते हैं और वह भी अस्पष्ट रूप में। मनुष्य ने पूर्वतः विद्यमान इन उनचास अक्षरों को सीख लिया है। अक्षर पूर्वतः विद्यमान थे। मनुष्य ने उनका उच्चारण करना सीखा है। इन अक्षरों का उच्चारण यदि शुद्ध होता है तो ऐसे उच्चारयिता को शिक्षित कहते हैं। भ्रष्टोच्चारण-वाले व्यक्ति को म्लेच्छ की संज्ञा दी जाती है।

योग-तरङ्गिणी एक तंत्र-ग्रंथ है। इसमें कुंभकरण की अद्भुत योग-साधना का वर्णन है। इस ग्रंथ को कुंभकरण-रामायण कहते हैं। इस ग्रंथ में कुंभकरण की इस योग-साधना के अंतर्गत धरासन या शवासन पर पार्थिव शरीर रखकर बद्ध-व्योमासन लगने पर आकाश-मंडल में कूर्म-चक्र की साधना का उल्लेख है। कुंभकरण अग्नि-मूर्धा थे। वे षाण्मासिक-समाधि में रहते थे। यह उनकी योग-निद्रा थी। वस्तुतः यह अंतर्याग के अंतर्गत षट्चक्र-भेदन की प्रक्रिया में अन्तःस्थित कमल-दलों पर अक्षरों का व्यवस्थापन है। इसी अंतःपुरीण अक्ष-मालिकाक्षर-जप की क्रिया के भाष्य में इन अक्षरों को 'गुप्तमात्राद्दुरूह् रुद्राक्षर' कहा गया है।

'रुद्राक्षर' शब्द व्याख्या-सापेक्ष है। किंतु इसके पूर्व 'अक्षर' भी व्याख्येय पद है। सामान्यतः अक्षर शब्द उच्चरित वर्ण को कहते हैं। इसलिए यह अ-क्षर है, अर्थात् जिसका क्षरण और नाश नहीं हो। एक बार उच्चरित ध्वनि आकाश में शाश्वत रूप

से विद्यमान रहती है, उसका नाश नहीं होता। भौतिकीशास्त्र के अंतर्गत ध्वनि-विज्ञान इस बात की पुष्टि करता है कि ध्वनि अविनाशी है। लिखित अक्षर को वर्ण कहते हैं। वर्ण का अर्थ रंग होता है। जब किसी रंग की स्याही में किसी ध्वनित अक्षर को लिपित करते हैं तो उसे वर्ण की संज्ञा दी जाती है। यह मान्यता अक्षर और वर्ण के संबंध में रही है। अक्षरमाला में उनचास उच्चरित ध्वनियाँ हैं और वर्णमाला में इन ध्वनियों के संकेत-चिह्नों का लिपित-रूप। बाद में चलकर अक्षर को वर्ण और वर्ण को अक्षर कहने की सामान्य भूलें होने लगीं। अक्षर शब्द की आधुनिक भाषा-वैज्ञानिक व्याख्या कुछ और है। इसे भाषा-विज्ञान में सिलैबल (Syllable) कहते हैं। इस ग्रीक शब्द सिलैबल (Syn+lambanein=Syllable) का अर्थ है, जो एक साथ बँधा हो, जो संश्लिष्ट हो, जो ध्वनि की इकाई और एक साँस में बोला जानेवाला (Uttered by one articulation) हो। इस प्रकार अक्षर को भाषा-विज्ञान में फेफड़े के एक स्पंद के उच्चारण में बोला जानेवाला कहा गया है। इसे ही संयुक्त ध्वनियों का लघुतम समूह भी कहा गया है। पहले इसी अक्षर को लेटर (Letter) कहते थे, किंतु वर्तमान भाषा-विज्ञानी अब इसे लेटर (Letter) कहने की स्थिति में नहीं हैं।

वाक्य को शब्द और फिर शब्द को अक्षर तक खंडित करने के बाद उसे और आगे खंडित नहीं किया जा सकता। वह अखंडनीय या अनंशनीय हो जाता है। यही अक्षर है। इस प्रकार संपूर्ण विश्व को अनेक समाजों, फिर परिवारों और अंत में व्यक्ति की इकाई तक बाँटा गया है। व्यक्ति को और आगे खंडित नहीं किया जा सकता। वह अखंडनीय (Indivisible) या अनंशनीय हो जाता है। उसका और आगे टुकड़ा करने पर वह मर जाएगा। इसलिए इसके और आगे टुकड़े नहीं हो सकते (It can not be divided further)। यह विभाजन का इसीलिए अंतिम बिंदु है। अँगरेजी में व्यक्ति को Individual (Indivisible), अविभाज्य कहते हैं। इसी प्रकार विश्व-वाङ्मय में अक्षर व्यक्ति-वाक् है।

'अक्षर' शब्द की व्युत्पत्ति के अनेक चिंतन-फलक हैं। अ + अक्षर = अक्षर। क्षर् सञ्चलने। संचलन to change = अर्थात् जो परिवर्तित, विचलित या रूपांतरित न हो, उसे अक्षर कहते हैं। महाभारत में इस विचार-पुष्टि में कहा भी गया है,—"तदक्षरं न क्षरतीति विद्धिः।"[1] लिंगपुराण में इसे "न क्षरति" कहा गया है। मत्स्यपुराण में एक सर्वांगीण परिभाषा है,—

"न क्षरसे कोटिशतैरपि ।
तस्मात्त्वमक्षरत्वाच्च विष्णुरित्येवकीर्त्यसे ॥"[2]

लिंगपुराण में अक्षर की अक्षरणशीलता को और स्पष्ट शब्दों में घोषित किया गया है,—

[1] महाभारत, १२ : १९५ : २४।

[2] मत्स्यपुराण, २४८ : ३१।

"न क्षरतीति लोकेऽस्मिंस्ततो हृगक्षरमुच्यते ।"[1]

इसकी व्याख्या में यह भी कहा गया कि जो लोकों का क्षरण नहीं करता, अर्थात् उनकी रक्षां करता है,–

"न क्षरतीति लोकानि ऋतमक्षरमुच्यते ।"[2]

सायण ने इसकी विचित्र व्याख्या की है, किंतु इससे इस शब्द की गरिमा और बढ़ जाती है। उनके अनुसार, जो स्वयं अक्षर और अमृत रहकर सृष्टि का क्षरण करता है, उसे अक्षर कहते हैं। गीता में दो श्लोकों में क्षर और अक्षर का विश्लेषण करते हुए उन्हें पुरुष से जोड़ा गया है,--

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥[3]

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥[4]

अर्थात् इस विश्व में नाशवान् और अविनाशी ये दो प्रकार के पुरुष हैं। इनमें सभी भूत-प्राणियों के शरीर तो क्षर या नाशवान् हैं और कूटस्थ अर्थात् जीवात्मा अविनाशी या अक्षर है। इन्हीं तत्त्वों को निर्दिष्ट करने के लिए गीता के सातवें अध्याय में अपरा और परा-प्रकृति, आठवें अध्याय में अधिभूत और अध्यात्म, तेरहवें अध्याय में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ और फिर पन्द्रहवें अध्याय में अश्वत्थ और जीव के नाम से जिसकी व्याख्या की गई है, वही मूलतः क्षर और अक्षर है। इसे वर्ण और अक्षर भी कह सकते हैं। वर्ण नाशवान् और अक्षर अविनाशी होता है। कृष्ण अर्जुन को समझाते हुए आत्मव्याख्या-प्रसंग में कहते हैं कि मुझमें क्षर और अक्षर ये दोनों तत्त्व समाहित तो हैं, किंतु मैं इन दोनों से भी अतीत हूँ। इसीलिए पुरुषोत्तम हूँ।

'अक्षर' शब्द की एक भिन्न व्युत्पत्ति है। अ + क्षि + र = अक्षर। क्षि धातु का अर्थ किया गया,–

---

[1] लिंगपुराण, २३ : २०।
[2] उपरिवत्, २२ : ८।
[3] श्रीमद्भगवद्गीता, १५ : १६।
[4] उपरिवत्, १५ : १८।

"क्षि क्षये, हिंसायां निवासगत्योः।" इससे निषेधात्मक शब्द अक्षर बनता है; अर्थात् जो क्षय को प्राप्त नहीं हो, जो हिंसा न करे और जो कहीं स्थिर रूप से निवास नहीं कर सर्वव्यापक बन जाए, उसे अक्षर कहते हैं। अक्षर अहिंसक होता है। वह सर्वव्यापक और ओंकारात्मक (Omnipotent) होता है। इस प्रकार अक्षर परब्रह्म, आत्मा, शिव, विष्णु, मोक्ष, परागति, अविनाशी, वाक् इत्यादि का वाचक शब्द है। विभिन्न शास्त्रों में इन अर्थों की प्रतिष्ठा हुई है।

वायुपुराण में, ब्रह्म ही अक्षर है—ऐसा कहा गया है। उस अक्षर (ब्रह्म) की चिंता-धारा से अक्षर (वर्णादि) की उत्पत्ति कंठ से हुई है। ब्रह्मा के चतुर्मुख से चतुर्दशमुख निकले और फिर एक-एक मुख से अकारादि स्वरों की उत्पत्ति हुई। इन्हीं स्वरों में कल्पों को भी सम्मिलित-समन्वित किया गया है।[1]

मनुस्मृति[2] में अक्षर को ब्रह्म से उपमित करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार वह (ब्रह्म) स्त्री, पुरुष, पुत्र, नपुत्र, सत्, असत् एवं सदसत् से परे है, उसी प्रकार अक्षर या वर्ण भी लिंग-भेदादि से परे है। लिंग-भेदादि प्रक्रिया शब्दाश्रित है। अक्षर-ब्रह्म उससे ऊपर है। कहा गया है,— "एकाक्षरं परंब्रह्म।" गीता में कृष्ण ने इसी भाव की शब्दांतर के साथ घोषणा की है,—"अक्षराणामकारोऽस्मि।"[3]

महाभाष्य में अक्षर के लिए क्षि और क्षिर् दोनों धातुओं को स्वीकार किया गया है,—"न क्षीयते न क्षरतीति वा क्षरण्।"[4] निरुक्त में भी कुछ ऐसी ही व्याख्या है— "न क्षीयते वा क्षयो भवति।" दुर्गाचार्य ने अक्षर को वाणी का निवास-स्थान बताया है; क्योंकि उसमें भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं के बीजाक्षरों का न्यास-अधिवास प्रतिष्ठित किया जाता है। इसी कारण इसका नाम देवनागरी लिपि है। वाचस्पत्य में अक्षर को अश्कासौ + सरन् से निष्पन्न माना गया है—"अश्नुते व्याप्नोति वेदादिशास्त्राणि।" कात्यायन और पतञ्जलि ने भी स्वीकार किया है,—"अश्नोतेर्वा सरोऽक्षरम्-अश्नुते इत्यक्षरम्।" इसी व्याख्या को प्रदीप-टीका में और अधिक स्पष्ट किया गया,—"अर्थमश्नुते व्याप्नोतीत्यक्षरं पदं वाक्यं वा।" इस प्रकार 'अक्ष + र' से भी अक्षर की व्युत्पत्ति शास्त्र-सिद्ध है। यह अक्ष वाक् और धुरी दोनों अर्थों में गृहीत है। यास्क ने "वाचोऽक्षः" कहा है। फिंर अक्ष का अर्थ धुरी (Axis) भी है। जिस प्रकार अक्ष (धुरी) रथ को धारण करता है, चालित और नियंत्रित करता है, उसी प्रकार अक्षर स्वर और स्वराधिष्ठित व्यजंनों को धारण करता है।

अक्षर की एक और व्युत्पत्ति मिलती है—अक्ष + र। अक्षीणि रमन्ते यस्मिन्; अर्थात् जिसमें आँखें रमण करें, वह लिपिताक्षर । अक्षर के संबंध में ऐसा भी कहा गया है कि वह तीन इकाइयों का मिलन है—अ (निषेध) + क्ष (विनाश) + रं (ध्यान); अर्थात् जिसका ध्यान विनाश में नहीं है।

[1] वायुपुराण, २६ : ९।

[2] मनुस्मृति, २ : ८३।

[3] श्रीमद्भगवद्गीता, १0 : ३३।

[4] महाभाष्य, १ : १ : २।

गुप्तमात्रा दुरूह 'रुद्राक्षर' तंत्र का विषय है। यहाँ अक्षर की व्याख्या अक्ष + र ही के रूप में स्वीकृत हो सकती है। अक्ष का अर्थ, यास्क के अनुसार 'वाचोऽक्षः' के अतिरिक्त अंतर्याग-क्रम में विभिन्न चक्रों पर अक्षर-विन्यास भी है। इसमें अ से क्ष-पर्यंत पचास वर्णों की व्यवस्था का विधान है। इन अ से क्ष-पर्यन्त वर्णों को अक्ष या अक्षमाला कहते हैं। इस अक्ष में अर्थात् संपूर्ण वर्णमाला या अक्षर-समाम्नाय में देव-गण विचरण करते हैं, सृष्टि संसरण करती है। योगि-गण हृदयस्थ ध्यान करते हैं। अक्ष का एक अर्थ अक्ष-बीज या रुद्राक्ष-बीज भी है। यहीं 'रुद्राक्षर' शब्द सार्थक हो जाता है।

अक्षरों का उद्गम शिव के डमरू-वादन से हुआ है। अतः रुद्रोत्पन्न होने के कारण, इन्हें रुद्राक्षर (रुद्र + अक्षर) कहते हैं। साथ ही रुद्र से उत्पन्न रुद्राक्ष-बीजों पर अधिष्ठित होने के कारण इन्हें रुद्राक्षर (रुद्राक्ष + र) कहते हैं।

शिव के नेत्र से उत्पन्न जल-बिन्दु से पृथ्वी पर रुद्राक्ष-बीज उत्पन्न हुआ है। यह रुद्र की दृश्यता का, चक्षुष्कता का तथा रूपात्मकता का आधार है। फिर शिव के डमरू से उत्पन्न अक्षर इन पचास (४९ + १) अक्षरों का अधिवास रुद्राक्ष-बीजों पर होता है। इसका विस्तृत उल्लेख अनेक उपनिषदों में हुआ है। इस प्रकार रुद्राक्ष-बीज वर्णाक्षर-विज्ञान है, नाम-रूपात्मक-शिव-स्वरूप है, क्षराक्षरात्मक-दर्शन है। इसलिए अद्भुत, गुह्य, परम पुण्यशाली, विज्ञान-सम्मत एवं अध्यात्म-अधिशासित है। यदि इन रुद्राक्षों पर शास्त्रोक्त-विधि से प्राण-प्रतिष्ठा की जाए और माला-संस्कार कर जप किया जाए तो इससे न केवल विपत्ति-निवारण, भाग्योदय, सिद्धि-प्राप्ति और पुण्य-प्राप्ति होती है, वरन् ईश्वरीयता भी उपलब्ध होती है। यह शास्त्रवचन है।

रुद्राक्षों की मुखाश्रित-संख्या चौदह है; अर्थात् चौदह मुखीन रुद्राक्षों तक का वर्णन शास्त्रों में मिलता है। यह क्या केवल संयोग ही माना जाएगा कि प्रत्याहारों की संख्या चौदह है। शिव के डमरू से चौदह प्रत्याहारों का अक्षर-समाम्नाय निकला है। चौदह मुखों तक के रुद्राक्ष और चौदह प्रत्याहर कहीं-न-कहीं अप्रत्यक्ष अंतस्संबंध रखते हैं। लोक या भुवनों की संख्या चौदह है। स्वर चौदह हैं, (अ की आवृत्ति अं और अः को छोड़कर), समुद्र-मंथन से चौदह रत्न निकले थे। इन सभी चतुर्दशियों का एक वैज्ञानिक और आध्यात्मिक अंतस्संबंध है।

रुद्राक्षों का जहाँ वर्णन हुआ है, उसमें चौदहमुखी तक के रुद्राक्षों का न्यास-मंत्रादि-धारण-विधान मिलता है, किंतु अड़तीस (३८) मुखी रुद्राक्ष तक का भी उल्लेख मिलता है। यह अड़तीस एक ऐसी संख्या है, जिसका रुद्राक्षर-शास्त्रीय-महत्त्व है। व्यंजनों की संख्या तैंतीस है और मूल-स्वर पाँच (अ, इ, उ, ऋ, लृ) हैं। अतः अड़तीस मुखी रुद्राक्ष की अक्षरात्मक सार्थकता होने से ये अड़तीस रुद्राक्षर बन जाते हैं।

रुद्राक्ष-माहात्म्य

रुद्राक्ष के दर्शन से लक्ष पुण्य (लक्ष-प्रमाण पुण्य), स्पर्श से कोटि-प्रमाण पुण्य, धारण से दशकोटि-प्रमाण पुण्य, एवं इस पर जप से लक्ष कोटि सहस्र तथा लक्ष कोटि शत-प्रमाण

पुण्य की प्राप्ति होती है।[1] ऐसा पद्मपुराण का कथन है।

श्रीमद्देवीभागवत के अनुसार जिस प्रकार पुरुषों में विष्णु, ग्रहों में सूर्य, नदियों में गंगा, मुनियों में कश्यप, अश्व-समूहों में उच्चैःश्रवा, देवों में ईश्वर (शिव), देवियों में गौरी (पार्वती) सर्वश्रेष्ठ हैं; वैसे ही यह रुद्राक्ष सबों में श्रेष्ठ है। अतः न तो इससे बढ़कर कोई स्तोत्र है, न व्रत। यथा,—

> पुरुषाणां यथा विष्णुर्ग्रहाणां च यथा रविः ।
> नदीनां तु यथा गङ्गा मुनीनां कश्यपो यथा ॥
>
> उच्चैःश्रवा यथाऽश्वानां देवानामीश्वरो यथा ।
> देवीनां तु यथा गौरी तद्वच्छ्रेष्ठमिदं भवेत् ॥
>
> नाऽतः परं स्तोत्रं नाऽतः परतरं व्रतम् ।
> अक्षय्येषु च दानेषु रुद्राक्षस्तु विशिष्यते ॥[2]

रुद्राक्ष के संबंध में जिन शास्त्रों में उल्लेख है, उन सभी शास्त्रों का मूल और अनुवाद इस ग्रंथ के उत्तर-खंड (तृतीय अध्याय) में व्यवस्थित किया गया है। इस रुद्राक्ष की महत्ता यहाँ तक पहुँच गई है कि यह शिव से भी अधिक महत्त्वशाली है। उन शास्त्रों को संदर्भोल्लेख के साथ अनुवाद-सहित इस ग्रंथ में संकलित किया गया है। अतः रुद्राक्ष-माहात्म्य के संबंध में अलग से अध्याय की आवश्यकता नहीं है। इस अध्याय में रुद्राक्ष की महत्ता का व्याख्यान किया जाए तो आवृत्ति ही होगी। जहाँ संदर्भ-सहित रुद्राक्ष-शास्त्र का मूलसंकलन एवं भाषांतरण है, वहाँ रुद्राक्ष के विविध पक्षों के विश्लेषण के साथ उसका माहात्म्य-वर्णन भी है।

रुद्राक्ष-माला पर मातृका-प्रतिष्ठा

रुद्राक्ष की अक्षमाला (मणिमाला) में एक सौ नौ दाने होते हैं। एक सौ आठ के मनके गोलाकार मालाबद्ध होते हैं और अंत में एक सुमेरुमणि होता है, जो सदैव अनुल्लंघनीय माना जाता है। प्रत्येक अक्ष बीज (दाना) पर एक-एक अक्षर का न्यास होता है। प्रत्येक मनके पर एक-एक अक्षर की प्रतिष्ठा की जाती है। इसे ही मातृका-प्रतिष्ठा की संज्ञा देते हैं। यह क्रम आरोह-अवरोह ढंग से अथवा क्रम-विक्रमानुसार होता है। इस विधि से निर्मित माला को अक्षमाला, मंत्र-मातृका या रुद्राक्षमाला कहते हैं। कुंडलिनी-जागरण के क्रम में मूलाधार-चक्र से आज्ञाचक्र तक जो वर्णन्यास होता है, उसे 'क्रम' और फिर आज्ञाचक्र से मूलाधार-चक्र तक के अवरोह को 'विक्रम' कहा

[1] पद्मपुराण, सृष्टि-खंड, ५७ : ३०-३१।

[2] श्रीमद्देवीभागवतम्, ११ : ९ : २-४।

जा सकता है। यह अंतर्याग की प्रक्रिया है। अक्षमाला पर जप-विधान एक बहिर्याग है। इस संदर्भ में रुद्राक्षमाला के प्रत्येक दाने पर अक्षरों का जो न्यास-क्रम है, वह इस प्रकार है—

क्रमाक्षर

स्वर वर्ण : १६ : (अ से अः पर्यंत)
व्यंजन वर्ण : ३३ : (क से ह पर्यंत)
विशिष्ट व्यंजन वर्ण : १ : (ळ)

५० वर्ण

विक्रमाक्षर

विशिष्ट व्यंजन वर्ण : १ : (ळ)
व्यंजन वर्ण : ३३ : (ह से क पर्यंत)
स्वर वर्ण : १६ : (अः से अ पर्यंत)

५० वर्ण

अष्टवर्ग-क्रम

अष्टवर्गीय वर्ण : ८ : (अ, क, च, ट, त, प, य, श)
मेरु (सुमेरु या शिखामणि) : १ : (क्ष) (संयुक्ताक्षर)

कुल १०९

इस क्रम से एक सौ नौ वर्ण, अक्षर या मातृका से जब अक्षमाला न्यस्त अथवा प्राण-प्रतिष्ठित हो जाती है, अभिमंत्रित और जाग्रत् हो जाती है तो उसपर अभीष्ट सिद्धि के लिए, सकाम या निष्काम-भाव से जपयोग अनुष्ठित किया जाता है। एक सौ नौ मनकों की अक्षमाला पर मातृकाक्षरों का अपने गुण-धर्म-सहित अधिवास तालिका के अनुसार है।

तालिका

क्रम	अक्षमाला	मातृकाक्षर	वर्णाकृति	धर्म	गुण
१	२	३	४	५	६
१. पहला	बीजाक्ष	अ	अकार	मृत्युंजय	सर्वव्यापक
२. दूसरा	बीजाक्ष	आ	आकार	आकर्षणात्मक	सर्वगत
३. तीसरा	बीजाक्ष	इ	इकार	पुष्टिदायक	अक्षोभकर
४. चौथा	बीजाक्ष	ई	ईकार	वाक्प्रसादकर	निर्मल
५. पाँचवाँ	बीजाक्ष	उ	उकार	सर्वबलप्रद	सारतर
६. छठा	बीजाक्ष	ऊ	ऊकार	उच्चाटनकर	दुःसह
७. सातवाँ	बीजाक्ष	ऋ	ऋकार	संक्षोभकर	चंचल
८. आठवाँ	बीजाक्ष	ॠ	ॠकार	संमोहनकर	उज्ज्वल
९. नौवाँ	बीजाक्ष	लृं	लृकार	विद्वेषणकर	संर्वज्ञगुप्त
१०. दसवाँ	बीजाक्ष	लृ	लृकार	मोहकर	मोहक
११. ग्यारहवाँ	बीजाक्ष	ए	एकार	सर्ववश्यकर	शुद्धसत्त्वक
१२. बारहवाँ	बीजाक्ष	ऐ	ऐकार	शुद्धसात्त्विक	पुरुषवश्यकर
१३. तेरहवाँ	बीजाक्ष	ओ	ओकार	अखिल वाङ्मय	नित्य शुद्ध
१४. चौदहवाँ	बीजाक्ष	औ	औकार	सर्ववाङ्मयवश्यकर	शांत
१५. पन्द्रहवाँ	बीजाक्ष	अं	अंकार	गजादिवश्यकर	मोहकर

१	२	३	४	५	६
१६. सोलहवाँ	बीजाक्ष	अः	अःकार	मृत्युनाशनकर	रौद्र
१७. सत्रहवाँ	बीजाक्ष	क	ककार	सर्वविषहर	कल्याणक
१८. अठारहवाँ	बीजाक्ष	ख	खकार	सर्वक्षोभकर	व्यापक
१९. उन्नीसवाँ	बीजाक्ष	ग	गकार	सर्वविघ्नशमनकर	महत्तर
२०. बीसवाँ	बीजाक्ष	घ	घकार	सौभाग्यद	स्तंभनकर
२१. इक्कीसवाँ	बीजाक्ष	ङ	ङकार	सर्वविषनाशकर	उग्र
२२. बाईसवाँ	बीजाक्ष	च	चकार	अभिचारहन	क्रूर
२३. तेईसवाँ	बीजाक्ष	छ	छकार	भूतनाशकर	भीषण
२४. चौबीसवाँ	बीजाक्ष	ज	जकार	कृत्यादिनाशकर	दुर्धर्ष
२५. पचीसवाँ	बीजाक्ष	झ	झकार	भूतनाशकर	भूतनाशन
२६. छबीसवाँ	बीजाक्ष	ञ	ञकार	मृत्यु प्रमथन	
२७. सताईसवाँ	बीजाक्ष	ट	टकार	सर्वव्याधिहर	सुभग
२८. अठाईसवाँ	बीजाक्ष	ठ	ठकार	चन्द्ररूप	
२९. उनतीसवाँ	बीजाक्ष	ड	डकार	गरुडात्मक	विषहन शोभन
३०. तीसवाँ	बीजाक्ष	ढ	ढकार	सर्वसम्पत्प्रद	सुभग
३१. इकतीसवाँ	बीजाक्ष	ण	णकार	सर्वसिद्धिप्रद	मोहनकर
३२. बत्तीसवाँ	बीजाक्ष	त	तकार	धनधान्यादिसंपत्प्रद	प्रसन्न
३३. तैंतीसवाँ	बीजाक्ष	थ	थकार	धर्मप्राप्तिकर	निर्मल

१	२	३	४	५	६
३४. चौंतीसवाँ	बीजाक्ष	द	दकार	पुष्टिवृद्धिकर	प्रियदर्शन
३५. पैंतीसवाँ	बीजाक्ष	ध	धकार	निषज्वरनिहन	विपुल
३६. छत्तीसवाँ	बीजाक्ष	न	नकार	भुक्तिमुक्तिप्रद	शांत
३७. सैंतीसवाँ	बीजाक्ष	प	पकार	विषविघ्ननाशन	भव्य
३८. अड़तीसवाँ	बीजाक्ष	फ	फकार	अणिमादिसिद्धिप्रद	ज्योतीरूप
३९. उनतालीसवाँ	बीजाक्ष	ब	बकार	सर्वदोषहर	शोभन
४०. चालीसवाँ	बीजाक्ष	भ	भकार	भूत-प्रशांतिकर	भयानक
४१. इकतालीसवाँ	बीजाक्ष	म	मकार	विद्वेषिमोहनकर	
४२. बयालीसवाँ	बीजाक्ष	य	यकार	सर्वव्यापक	पावन
४३. तैंतालीसवाँ	बीजाक्ष	र	रकार	दाहकर	विकृत
४४. चौआलीसवाँ	बीजाक्ष	ल	लकार	विश्वंभर	भासुर
४५. पैंतालीसवाँ	बीजाक्ष	व	वकार	सर्वाप्यायनकर	निर्मल
४६. छियालीसवाँ	बीजाक्ष	श	शकार	सर्वफलप्रद	पवित्र
४७. सैंतालीसवाँ	बीजाक्ष	ष	षकार	धर्मार्थकामद	धवल
४८. अड़तालीसवाँ	बीजाक्ष	स	सकार	सर्वकारण	सार्ववर्णिक
४९. उनचासवाँ	बीजाक्ष	ह	हकार	सर्ववाङ्मय	निर्मल
५०. पचासवाँ	बीजाक्ष	ळ	ळकार	सर्वशक्तिप्रद	प्रधान
५१. इक्यावनवाँ	बीजाक्ष	ळ	ळकार	सर्वशक्तिप्रद	प्रधान
५२. बावनवाँ	बीजाक्ष	ह	हकार	सर्ववाङ्मय	निर्मल

१	२	३	४	५	६
५३. तिरेपनवाँ	बीजाक्ष	स	सकार	सर्वकारण	सार्ववर्णिक
५४. चौवनवाँ	बीजाक्ष	ष	षकार	धर्मार्थकामद	धवल
५५. पचपनवाँ	बीजाक्ष	श	शकार	सर्वफलप्रद	पवित्र
५६. छप्पनवाँ	बीजाक्ष	व	वकार	सर्वाप्यायनकर	निर्मल
५७. सत्तावनवाँ	बीजाक्ष	ल	लकार	विश्वंभर	भासुर
५८. अट्ठावनवाँ	बीजाक्ष	र	रकार	दाहकर	विकृत
५९. उनसठवाँ	बीजाक्ष	य	यकार	सर्वव्यापक	पावन
६०. साठवाँ	बीजाक्ष	म	मकार	विद्वेषिमोहनकर	
६१. इकसठवाँ	बीजाक्ष	भ	भकार	भूतप्रशांतिकर	भयानक
६२. बासठवाँ	बीजाक्ष	ब	बकार	सर्वदोषहर	शोभन
६३. तिरसठवाँ	बीजाक्ष	फ	फकार	अणिमादिसिद्धिप्रद	ज्योतीरूप
६४. चौंसठवाँ	बीजाक्ष	प	पकार	विषविघ्ननाशन	भव्य
६५. पैंसठवाँ	बीजाक्ष	न	नकार	भुक्तिमुक्तिप्रद	शांत
६६. छियासठवाँ	बीजाक्ष	ध	धकार	विषज्वरनिहन	विपुल
६७. सड़सठवाँ	बीजाक्ष	द	दकार	पुष्टिवृद्धिकर	प्रियदर्शन
६८. अड़सठवाँ	बीजाक्ष	थ	थकार	धर्मप्राप्तिकर	निर्मल
६९. उनहत्तरवाँ	बीजाक्ष	त	तकार	धनधान्यादिसंपत्प्रद	प्रसन्न
७०. सत्तरवाँ	बीजाक्ष	ण	णकार	सर्वसंपत्प्रद	सुभग
७१. इकहत्तरवाँ	बीजाक्ष	ढ	ढकार	सर्वसंपत्प्रद	सुभग

१	२	३	४	५	६
७२. बहत्तरवाँ	बीजाक्ष	ड	डकार	गरुडात्मक	विषहनशोभन
७३. तिहत्तरवाँ	बीजाक्ष	ठ	ठकार	चन्द्ररूप	
७४. चौहत्तरवाँ	बीजाक्ष	ट	टकार	सर्वव्याधिहृर	सुभग
७५. पचहत्तरवाँ	बीजाक्ष	ञ	ञकार	मृत्युप्रमथन	
७६. छिहत्तरवाँ	बीजाक्ष	झ	झकार	भूतनाशकर	भूतनाशन
७७. सत्तरवाँ	बीजाक्ष	ज	जकार	कृत्यादिनाशकर	दुर्धर्ष
७८. अठत्तरवाँ	बीजाक्ष	छ	छकार	भूतनाशंकर	भीषण
७९. उनासीवाँ	बीजाक्ष	च	चकार	अभिचारघ्न	क्रूर
८०. अस्सीवाँ	बीजाक्ष	ङ	ङकार	सर्वविषनाशकर	उग्र
८१. इक्यासीवाँ	बीजाक्ष	घ	घकार	सौभाग्यद	स्तंभनकर
८२. बयासीवाँ	बीजाक्ष	ग	गकार	सर्वविघ्नशमनकर	महत्तर
८३. तिरासीवाँ	बीजाक्ष	ख	खकार	सर्वक्षोभकर	व्यापक
८४. चौरासीवाँ	बीजाक्ष	क	ककार	सर्वविषहर	कल्याणक
८५. पचासीवाँ	बीजाक्ष	अः	अःकार	मृत्युनाशनकर	रौद्र
८६. छियासीवाँ	बीजाक्ष	अं	अंकार	गजादिवश्यकर	मोहकर
८७. सतासीवाँ	बीजाक्ष	औ	औकार	सर्ववाङ्मयवश्यकर	शांत
८८. अठासीवाँ	बीजाक्ष	ओ	ओकार	अखिलवाङ्मय	नित्यशुद्ध
८९. नवासीवाँ	बीजाक्ष	ऐ	ऐकार	शुद्धसात्त्विक	पुरुषवश्यकर
९०. नव्वेवाँ	बीजाक्ष	ए	एकार	सर्ववश्यकर	शुद्धसत्त्वक

१		२	३	४	५	६
९१.	इक्यानवेवाँ	बीजाक्ष	लृ	लृकार	मोहकर	मोहक
९२.	बानवेवाँ	बीजाक्ष	लृ	लृकार	विद्वेषणकर	सर्वज्ञगुप्त
९३.	तिरानवेवाँ	बीजाक्ष	ॠ	ॠकार	संमोहनकर	उज्ज्वल
९४.	चौरानवेवाँ	बीजाक्ष	ऋ	ऋकार	संक्षोभकर	चंचल
९५.	पंचानवेवाँ	बीजाक्ष	ऊ	ऊकार	उच्चाटनकर	दुःसह
९६.	छियानवेवाँ	बीजाक्ष	उ	उकार	सर्वबलप्रद	सारतर
९७.	सत्तानवेवाँ	बीजाक्ष	ई	ईकार	वाक्प्रसादकर	निर्मल
९८.	अट्ठानवेवाँ	बीजाक्ष	इ	इकार	पुष्टिदायक	अक्षोभकर
९९.	निन्यानवेवाँ	बीजाक्ष	आ	आकार	आकर्षणात्मक	सर्वगत
१००.	सौवाँ	बीजाक्ष	अ	अकार	मृत्युंजय	सर्वव्यापक
१०१.	एक सौ पहला	बीजाक्ष	अ	अकार	मृत्युंजय	सर्वव्यापक
१०२.	एक सौ दूसरा	बीजाक्ष	क	ककार	सर्वविषहर	कल्याणक
१०३.	एक सौ तीसरा	बीजाक्ष	च	चकार	अभिचारघ्न	क्रूर
१०४.	एक सौ चौथा	बीजाक्ष	ट	टकार	सर्वव्याधिहर	सुभग
१०५.	एक सौ पाँचवाँ	बीजाक्ष	त	तकार	धनधान्यादिसंपत्प्रद	प्रसन्न
१०६.	एक सौ छठा	बीजाक्ष	प	पकार	विषविघ्ननाशन	भव्य
१०७.	एक सौ सातवाँ	बीजाक्ष	य	यकार	सर्वव्यापक	प्रधान
१०८.	एक सौ आठवाँ	बीजाक्ष	श	शकार	सर्वफलप्रद	पवित्र
१०९.	एक सौ नौवाँ	बीजाक्ष	क्ष	क्षकार	परापरतत्त्वज्ञापक	परंज्योतीरूप

इस प्रकार ये सभी मातृकाक्षर मांत्रिक बीजाक्षर हैं, जो अक्षमाला के बीजाक्ष-मणियों पर प्रतिष्ठित, न्यस्त और अधिष्ठित होकर जाग्रत् हो जाते हैं और जापक के जपयोग में सहयोग करते हैं, उन्हें अभीष्ट और अभीप्सित की प्राप्ति कराते हैं। संपूर्ण सृष्टि वाङ्मय अथवा मातृकाक्षरमय है। जपयोग के अंतर्गत अक्षमाला या वर्णमाला पर इन अक्षरों के अधिष्ठान का विज्ञान तर्कपूर्ण तथा निश्चितार्थक है।

जपयोग सर्वश्रेष्ठ योग माना जाता है। कृष्ण कहते हैं—'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि ।' हठयोग और जपयोग के साथ होने से सहज (स + ह + ज = स—साथ : ह—हठयोग, ज—जपयोग) योग का मूलाधार जपयोग ही है। जपमाला के मनकों के सहारे अक्षरों के द्वारा होता है। अक्षर अ से क्ष तक पचास हैं। इसलिए इन पचास अक्षरों और उनके लोम-विलोम-क्रम से बने हुए अक्षरों और फिर अष्टवर्ग के आठ अक्षरों से एक सौ आठ मनकों पर एक सौ आठ अक्षर प्रतिष्ठित होते हैं। इनमें 'अ' का सर्वत्र अधिवास है। संपूर्ण व्यंजन वर्ण, 'अ' के आश्रित होकर ही उच्चार्य बनते हैं। सोलह स्वर-वर्णों में आठ अक्षरों (इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ) के साथ अ का कोई सहयोग और समाश्रय नहीं है। इसलिए अ, आ, अं, अः तथा उसकी आवृत्ति से ये जो आठ अक्षर बनते हैं, वे मूलतः अ ही हैं। अतः आठ के अभाव की पूर्ति इन आठ अक्षरों से हो जाती हैं। प्रत्येक अक्षर लोम-विलोम के कारण द्विरुक्त हुए हैं। किंतु स्वतंत्र रूप से अ (अं, अः, आ को छोड़कर) का प्रयोग तीन बार हुआ है। वैसे तो अ सर्वत्र व्याप्त है (आठ अक्षरों को छोड़कर जिसकी पूर्ति के लिए अ को भी अपने भिन्न रूपों में आठ बार आना पड़ा है) किंतु अ का लोम-विलोम क्रम में दो बार आना और फिर अष्टवर्ग के अंतर्गत अ का प्रयोग प्रथम-संख्यक, एकपंचाशतसंख्यक एकोत्तरशतकसंख्यक बीजाक्ष पर हुआ है, अर्थात् एक, इक्यावन और एक सौ एक संख्या अमातृकाक्षर की अधिष्ठान-संख्याएँ हैं। ये तीनों अंक ब्रह्म (बृंहणशील) और तंत्र (तनोति इत तंत्रः, विस्तरणशील) भावधारा के व्यंजक अंक हैं। शुभ संख्याओं के अंतर्गत ये तीनों संख्याएँ आती हैं। अ को मृत्युंजय और सर्वव्यापक कहा गया है। सभी वर्णों में व्याप्त होने के कारण वह सर्वव्यापक है और अक्षर-ज्ञान ही हमें अक्षरित या अमृत बनाता है, हमें मृत्यु पर विजय दिलाता है। इसलिए यह वर्ण मृत्युंजय कहा गया है। मृत्युंजय शंकर को कहते हैं। मृत्युंजय-जप अथवा महामृत्युंजय-जप में त्र्यंबक शिव की उपासना की जाती है। यह शिव अक्षरों के जनक हैं। इनके डमरूवादन से ही चौदह प्रत्याहार निकले थे। उसी प्रत्याहार से अक्षमाला, वर्णमाला की सर्जना हुई है। इसलिए अपने आदि-स्फोट के रूप में अ शिव-स्वरूप है, प्रणव का मूल है। प्रणव ही ॐ (ओंकार) है। अ, उ और म् के संयोग से ॐ (ओंकार) बनता है। यह ॐ ही प्रणव है। प्रणव शब्द प्र + नव के योग से बना है। यह नित्य नवीन है। इसीलिए प्रणव है। शिव ओंकारेश्वर हैं। सुमेरु मणिका पर क और ष का मिलन-बिंदु है। क्ष क् + ष के मेल से बना है। प्रत्येक अक्षर के स्फोट होने पर उसके भीतर से विष और अमृत दोनों ही निकलते हैं, जैसे समुद्रमंथन

से विष और अमृत का उद्भव हुआ था। सुमेरु पर बैठा हुआ सम्पृक्ताक्षर क्ष अर्धनारीश्वर-भाव से अक्षर-मंथन के विष को नीलकंठ की तरह पी जाता है और अमृत की धवलता प्रदान करता है। क के लिए कहा गया है—ओऽम् कङ्कार सर्वविषहर-कल्याणद-सप्तदशेऽक्षे प्रतितिष्ठः अर्थात् यह अक्षर-मंथन के विष का हरण कर लेता है। ष के लिए कहा गया है—ओऽम् षङ्कार धर्मार्थकामद-धवल-सप्त-चत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठः अर्थात् षकार धर्मार्थ कामप्रद धवलता प्रदान करता है, जो अमृत का सूचक है। अक्षर-मंथन से निःसृत अमृत-तत्त्व अपनी धवलता के साथ धर्मार्थ-काम को सिद्ध करता है। सुमेरु पर बैठा हुआ क्ष के अंतर्गत नीलकंठ-रूप क अक्षमाला में प्रयुक्त तीन बार क की अपनी तीन आँखों से पर्यवेक्षण करता है। इस प्रकार संपूर्ण माला में क चार स्थलों पर है, जो चारों पुरुषार्थों को व्यक्त करता है। ष सुमेरु के अतिरिक्त अक्षक्रम में दो बार प्रयुक्त है। च, ट, त, प, य और श भी तीन-तीन बार प्रयुक्त अक्षर हैं। इनकी अग्रगण्यता के कारण हैं। अष्टवर्ग के अष्टाक्षर—अ, क, च, ट, त, प, य, श—सभी अक्षरों के बोधक हैं। ऊपर से जुड़ जानेवाले ळ को छोड़कर उनचास अक्षर होते हैं। दिक्पालों की संख्या उनचास है। पवन भी उनचास हैं। दिशाएँ आठ हैं। वैसे तो दस दिशाएँ मानी गई हैं, किंतु मनुष्य जिस समष्टि से बद्ध होता है, वह अष्टदिक् तत्त्व ही है। ये अष्ट दिशाएँ हैं—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य और वायव्य कोण—ये आठ दिशाएँ सम्यक् रूप से अवस्थित होकर हमें नियंत्रित करती हैं। इसलिए यह समष्टि-तत्त्व है। सम् + अष्टि = समष्टि। उनचास पवन, दिक्पालभूत उनचास अक्षरों को समष्टि-नियंत्रण में उच्चरित कराते हैं। अंत में ळ तत्त्व सर्वशक्तिमान् रूप से प्राणवायु बनकर उपस्थित हो जाता है और फिर इन पचासों की क्रम-विक्रमानुसार आवृत्ति होती है, तो शताक्षर बनते हैं। फिर अष्टवर्ग के समष्टि-मूलक अष्टवर्गीय संपूर्ण अक्षर प्रतिनिधि ये आठ अक्षर उपस्थित होकर संख्या को एक सौ आठ कर देते हैं। ये सारे वर्ण नाद-बिंदु युक्त होते हैं। अर्थात् अनुस्वार-सहित तथा उच्चार्यमाण होते हैं, जैसे—अं, आं, इं, ईं इत्यादि स्वर वर्ण तथा कं, खं, गं इत्यादि सभी व्यंजन वर्ण। बीजाक्ष-मणियों पर मातृका-प्रतिष्ठा नादबिंदु-सहित अर्थात् उच्चारण अनुस्वार-सहित होता है। क्षं को मुख माना गया है, इसलिए वह सबों में प्रमुख भी है। वह परापर-तत्त्व-ज्ञापक और परं ज्योतिः स्वरूप माना गया है। वह विषहर्ता और अमृत-वर्षक है। उस क्ष के लिए, जो सुमेरु पर स्थित रहता है और जो सदैव साक्षिभाव से सब कुछ देखता रहता है, उसके लिए अक्षमालिकोपनिषद् में कहा गया है, 'ॐ क्षंकार परापर-तत्त्व-ज्ञापक-परंज्योतीरूप शिखमणौ प्रतितिष्ठ।'

आधार पर प्रतिष्ठित करने से इस अक्षमाला का एक त्रिकोण बनता है, जिसका स्वरूप चित्र (पृ. २३) से स्पष्ट हो सकता है।

अक्षमाला का सुप्त-स्वरूप समद्विबाहु त्रिकोण की तरह होगा, जो उपर्युक्त अक्षमाला यंत्र में प्रदर्शित है। अक्षमाला में अक्षरावतरण जलप्रपातीय धारा-निपात की तरह ऊपर

से नीचे की तरफ होता है। यह सृष्टिरेखा है। प्रजनन ऊपर से नीचे की ओर होता है। दूसरी रेखा स्थिति-रेखा है। यहाँ से ऊपर उठने की प्रक्रिया शुरू होती है। जन्म के समय मातृ-द्वार से पहले मस्तक निकलता है। यह अ है और अंत में चरण निकलता है। यह ल है। जन्म के बाद प्रक्रिया उलट जाती है। प्रथम अंतिम हो जाता है और अंतिम प्रथम बन जाता है। मस्तक जो नीचे था, ऊपर हो जाता है और चरण जो ऊपर थे, नीचे हो जाते हैं। स्थिति-रेखा में हम पैरों पर खड़े हो जाते हैं। 'स्थिति-रेखा' में जो सबसे अंत में निकला है (ल), वह स्थिति-रेखा में पहला हो जाता है। यहाँ क्रम विक्रम हो जाता है, लोम विलोम हो जाता है। अवतरण ऊर्ध्व-संचरण में बदल जाता है और फिर जब 'स्थिति' पराकाष्ठा को पहुँच जाती है तो ध्वंस या संहार आवश्यक हो जाता है। यह तीसरी रेखा है। इसमें मातृकाक्षर स्फुलिंगाक्षर में संक्षेपीकृत हो जाते हैं, सिर्फ आठ बच रहते हैं। केवल 'अ' संपूर्ण स्वरवर्णमय जगत् को नष्ट कर देता है। क कवर्ग को, च चवर्ग को, ट टवर्ग को, प पवर्ग को, य अन्तःस्थ को, और श ऊष्म को अर्थात् संपूर्ण अक्षर-जगत्, को ये स्फुलिंगाक्षर नष्ट कर देते हैं और फिर क्ष मूलाक्षर में संपूर्ण वाङ्मय-जगत् का प्रविलयन हो जाता है।

सृष्टि, स्थिति और संहार का यह त्रिकोण अपनी व्यक्तावस्था में और आधारित स्थिति में त्रिकोणात्मक होता है। जब इस अक्षमाला को हम अपनी उंगलियों पर उठा लेते हैं तो वह वर्तुलाकार अथवा कुंडलाकार प्रलंबित हो जाती है। उसके त्रिकोण समाप्त हो जाते हैं। अक्षरों के सृष्टिमूलक शीर्षासन; स्थितिमूलक चरणासन तथा संहारमूलक लुप्तासन की प्रक्रिया सदैव चलती रहती है। ये तीनों रेखाएँ मिलकर सृष्टि-चक्र का वर्तुलित वृत्त बनाती हैं। सृष्टि, स्थिति और संहार अथवा ब्रह्मा, विष्णु और महेश का श्रीयंत्रित त्रिकोण वर्तुलित होकर ओंकार बन जाता है। यह वर्तुलित वृत्त बिंदु बन जाता है। यह बिंदु ही मूल है। जब मूल का स्फोट होता है तो स्पंदन होने लगता है। उससे सृष्टि निर्मित और निर्गत हो जाती है। फिर उसी बिंदु में सृष्टि निर्मित और निर्गत हो जाती है। फिर उसी बिंदु में सृष्टि का प्रविलयन हो जाता है। आधुनिक वैज्ञानिक इसे ही कृष्ण-बिंदु (Blockhole) की संज्ञा देते हैं, जिससे कोटि-कोटि नीहारिकाओं (Galaxy) का सृष्टि-चक्र नृत्यशील रूप में निर्गत हुआ है। अपने चक्रिल पथ पर वर्तुलित विधान-पूर्वक उसी कृष्ण-बिंदु में समाहित हो जाता है। यही बिंदु अर्धमात्रात्मक नित्य और अनुच्चार्य भाव से 'अनादि-निधन' भावपूर्वक स्थित रहता है। दुर्गासप्तशती में इसी के लिए कहा गया है,—

"अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः।"

रुद्राक्षर-माला

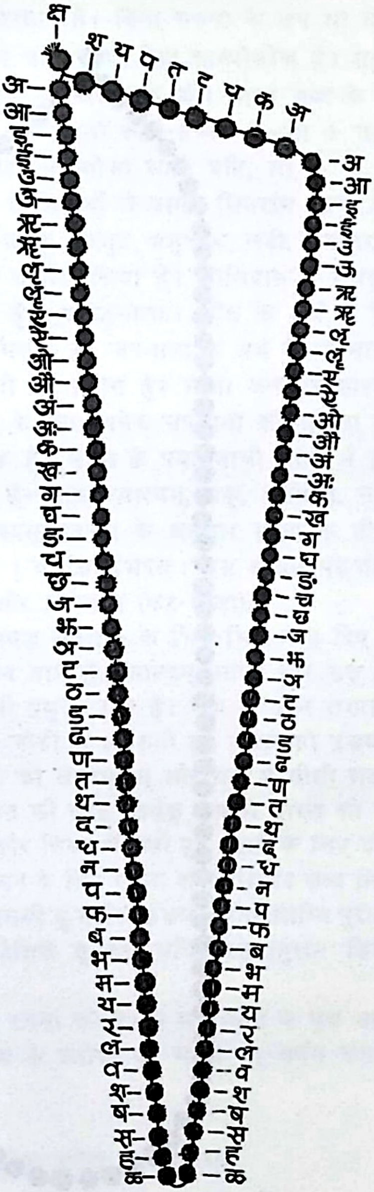
क्ष
श य प त ट च क अ
अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व श ष स ह क्ष
अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व श ष स ह क्ष

रुद्राक्षर-माला : त्रिकोणात्मक

रुद्राक्ष-माला

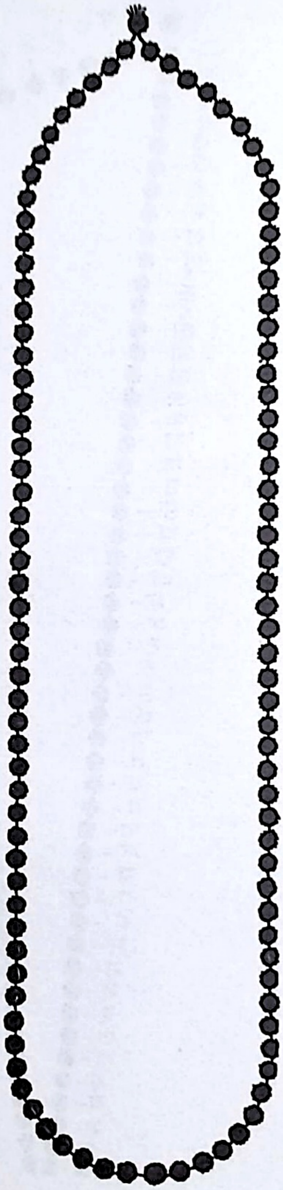

रुद्राक्ष-माला : वर्तुलाकार

माला तथा अक्षमाला

माला जपयोग का आवश्यक आधार है। बिना गणना के जप या तो निष्फल होता है या अभीष्ट देवता तक पहुँच नहीं पाता, ऐसा शास्त्रोल्लेख है। माला जप-यज्ञ या जपकर्म का आधार है और साथ ही अलंकरण भी। माला शब्द के निर्वचन से यह अर्थ स्पष्ट होता है, इसकी दो व्युत्पत्तियाँ कोश-सम्मत हैं—मा + ऋज्रेन्द्रा—ग्रवज्रेति रन्, रस्य लत्वम्, टाप् च। ज़द्वा मां शोभां लाति इति, ला + क + टाप्। माति मानहेतुर्भवतीति माला। इसके विभिन्नार्थों में वामन शिवराम आप्टे महोदय ने रेखा, पंक्ति, सिलसिला, श्रेणी, ताँता, समूह, झुरमुट, समुच्चय, लड़ी, कंठहार, जंजीर, लकीर, लहर, कौंध इत्यादि शब्दों का उल्लेख किया है। कालिदास ने मेघदूत में माला का समुच्चय अर्थ में प्रयोग किया है,—आबद्धमालाः। कौंध के अर्थ में 'तडिन्माला' और 'विद्युन्माला' शब्दों का प्रयोग मिलता है। जपमाला के अर्थ में अक्षमाला और कंठहार के अर्थ में रत्नमाला जैसे शब्दों का प्रयोग है। माला अलंकार-शास्त्र में उपमा का एक भेद है, जहाँ एक उपमेय के लिए अनेक उपमानों की श्रृंखला या माला बनती है। दूसरा अलंकार माला-दीपक है। माला के पर्यायवाची शब्दों में हलायुध कोश में जिन शब्दों का उल्लेख है, वे हैं—माला, माल्यम्, स्रक्, मालिका, मालाका, मालका, गणनिका एवं गुणान्तिका। मत्स्यसूक्तवचन के अनुसार माला के तीन प्रकार बताए गए हैं,—'माला तु त्रिविधा देवि ! वर्णाक्षपर्वभेदतः।' इस आधार पर तीन मालाएँ मानी गई हैं—वर्णमाला, अक्षमाला और पर्वमाला (कर-माला)।

अमरकोश में शरीरांगों से संबद्ध मालाओं के भिन्न-भिन्न नाम दिए गए हैं। मस्तक में धारण की गई माला के तीन नाम हैं,—माल्यम्, माला और स्रक् (स्रज्)। ये तीनों नाम सामान्य माला के लिए भी प्रयुक्त होते हैं। केश के बीच लगाई गई माला को गर्भक (पुँल्लिंग) और शिखा या चोटी में लटकती हुई माला को प्रभ्रष्टकम् कहते हैं। ललाट पर धारण की हुई माला को ललामकम् और गले में सीधी लटकती हुई माला को प्रालंबम् कहते हैं। यज्ञोपवीत की तरह तिर्यक् रूप में धारण की जानेवाली माला के लिए एक नाम—वैकक्षिकम् और शिखा में रखी हुई माला के लिए दो नाम—आपीडः तथा शेखरः मिलते हैं। माला-ग्रथन के लिए रचना और परिस्पंद शब्द मिलते हैं। उल्लेख है,—"माल्यं मालास्रजौमूर्ध्नि केशमध्ये तु गर्भकः प्रभ्रष्टकं शिखालम्बि पुरोन्यस्तं ललामकम् प्रालम्बमृजुलाम्बि स्यात् कण्ठाद्वैक्षिकं तु तत् यत्तिर्यक्क्षिप्तमुरसि शिखास्वापीडशेखरौ रचना स्यात्परिस्पन्दः।"

रुद्र कवि ने भावविलास की रचना की है। वे मान सिंह के पुत्र भावसिंह के समय में जीवित थे। उन्होंने इस ग्रंथ के श्लोकों की माला का वर्णन रूपक-शैली में इस प्रकार किया है—

सद्गुणानां समुद्रेण रुद्रेण ग्रथिता गुणैः
कण्ठस्था श्लोकमालेयं केषां न कुरुते श्रियम्।[1]

---

[1] रुद्र कवि, भावविलासः, पृ. १३५।

माला (अक्षमाला) को अँगरेजी में Rosary कहते हैं। अँगरेजी शब्द-कोश ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में रोजरी का उल्लेख है, जिसमें माला के दानों की संख्या और अर्थ-संपदा दोनों का उल्लेख किया गया है। कोश का उल्लेख है,—

"A form of prayer or set of devotions consisting in the recitation or fifteen decades of Aves, each decade being preceded by a Patermoster and followed by a Gloria."

"A string of hundred and sixty-five beads divided into fifteen sets (each having ten small and one large bead) used to assist the memory in the recitation of the Rosary; also a similar set of fifty-five beads, the small beads represent Aves and the large ones Patermosters and Glorias." 1597.

Any similar devotion or. . . . 1651.

"Alas! the Rosaries, how are they broken down!" 1657.

Everyday propound to your self a Rosary or Chaplet of good works, to present to God at night. 1667.[1]

हिन्दी-विश्वकोश में कामिल बुल्के ने माला पर विचार करते हुए लिखा है—"५९ दानों की एक जप-माला। जिसे रोमन कैथलिक ईसाई मरिया (ईसा की माला) से प्रार्थना करते समय काम में लाते हैं। कुछ दानों पर "प्रभु की बिनती" (दि आवर फादर)" और शेष पर "प्रणाम मरिया" के शब्दों से आरंभ होनेवाली एक छोटी-सी विनती बोली जाती है।"[2]

माला को उर्दू में तस्बीह कहते हैं। यह अरबी-भाषा का स्त्रीलिंग संज्ञा-पद है। तस्बीह के अर्थ में उर्दू, फारसी और अरबी में कहा गया है,— (१) पवित्र होकर ईश्वर की आराधना करना, (२) सौ दानों की एक माला, (३) सुब्हान अल्लाह कहना।

हिंदी में इसे सुमरनी कहते हैं। यह स्मरणी और सुमेरु से निष्प. शब्द है।

भारत-स्थित अँग्रेज जस्टिस, जो कलकत्ता में कार्यरत थे, उन सर जॉन्न उडरफ (Sir John Woodroffe) महाशय ने तंत्र पर अनेक ग्रंथ लिखे हैं। उन्होंने अक्षमाला को *The Garland of Letters* कहा है। इस शीर्षक से उनकी एक पुस्तक भी है।

माला, माली, मालाकार, मालिका, मालकी, मालिनी और माल्य के संबंध में महामहोपाध्याय पंडित रामावतार शर्मा ने वाङ्मयार्णव में प्रकार और शब्दार्थ-चिंतन इस प्रकार उपस्थित किया है,—

"माला पुष्पस्रजोर्मालः सूतीशूद्रोद्भवे द्वयोः ।
तत्र माली जातिङीषि मालस्तु स्यात्कठिञ्जरे ॥

पुंल्लिङ्गः कालपर्णाख्यतुलस्यां धारणोऽप्यथ ।
क्ली दक्षिणान्तरद्वीपे मालमस्माच्च भारतात् ॥

---

[1] *The Shorter Oxford English Dictionary*, vol. II, p. 1753.

[2] हिन्दी-विश्वकोश, खंड ९, प्रथम संस्करण, पृ. २६५।

मालको धारको विज्ञैरभिधेयवदिष्यते ।
वनदुर्गनिवासे तु मालकं खेटकाभिधे ॥

मालिका तु स्त्रियां पङ्क्तावाद्यानां च गृहान्तरे ।
सप्तलासंज्ञकें पुष्पवल्लिभेदेऽपि मालिका ॥

ग्रैवेयके पुष्पमाल्ये पुत्रिकाहस्तिमल्लयोः ।
मालकी तु स्त्रियां पुष्पवल्लीषु सकलास्वपि ॥

मालवाः स्युर्जनपदेऽवन्तिनाम्नि नृभूमनि ।
तन्निवासिव्रते तु द्वे मर्त्यजात्यन्तरेऽपि च ॥

मालिको द्वे भवेन्मालाकारे मालावति त्रिषु ।
मालिनी मातृकावृत्तभिदोर्मालिकयोषिति ॥

गौरीचम्पानगर्योश्च मन्दाकिन्यां नदीभिदि ।
मालुः पत्रलतायां च नार्यां च स्त्रीत्व इष्यते ॥

मालुधानो मातुलाहौ मालुधानी लतान्तरे ।
माल्यं क्ली कुसुमे पुष्पस्रजि धार्ये तु भेद्यवत् ॥"[1]

वाङ्मयार्णव में ही रुद्राक्ष और अक्षमाला के संबंध में कहा गया है,–

चक्राधारकदण्डे च रुद्राक्षेन्द्राक्षयोरहौ
अक्षं नपुंसकं तुत्थे स्यात्सौवर्चल इन्द्रिये ।
नित्येऽपि कैश्चिदुक्तोऽयं तत्रस्यादभिदेयवत्
अक्षमाला च सूत्रेऽरुन्धत्यां वत्सस्य मातरि
अक्षयो विष्णुवासे वा क्षयहीने त्रिलिङ्गकः ॥[2]

'माला' शब्द से अन्य अनेक शब्द निर्मित होते हैं,–
मालाकन्द, मालाकार, मालाग्रंथि, मालातृण, मालादीपक, मालादूर्वा, मालारिष्टा, मालाली, मालिक (मालाकार), मालिका, मालिन्, इत्यादि ।

विभिन्न प्रकार क़ी मालाओं का शास्त्रों में उल्लेख किया गया है। उनके प्रयोग भी भिन्न-भिन्न हैं। सभी धर्मों में किसी-न-किसी रूप में जपमालाओं का विधान है।

---

[1] महामहोपाध्याय पंडित रामावतार शर्मा, वाङ्मयार्णव, ४३८१-८५, ४३८७-८९।
[2] उपरिवत्, १४, १५, १७, १८।

हिन्दु-धर्म में १०८ दानों की माला की महिमा है। यह माला अनेक वस्तुओं से बनती है। जैन-धर्म में ग्यारह मनकों की माला का महत्त्व है। विशेषतः यहाँ मोती की माला का प्रचलन है। इस धर्म में जपमाला को गणितिया, कांचनिया, जपमाला इत्यादि कहते हैं। सिख-धर्म में रूई की माला का प्रचलन है। इनकी मालाओं में लोहे के मनके भी रहते हैं। बौद्ध-धर्म में भी १०८ मनकों की माला प्रसिद्ध है। जापान में पीपल की लकड़ी के दानों की माला बनती है। वहाँ के बौद्धों के बीच ११२ मनकों की माला का प्रयोग होता है। जापान में इन मालाओं का प्रयोग जप-विधान के अतिरिक्त सौन्दर्य या अलंकरण के लिए भी होता है। तिब्बत में जो माला प्रचलित है, उसे 'थेंगवा' कहते हैं। अरब, ईरान, इराक, जॉर्डन जैसे इस्लाम-देशों में निन्यानवे और एक-सौ-एक दानों की माला प्रचलित है। वहाँ इस माला को तस्बीह (तसबीह) कहते हैं। ईसाइयों के बीच १00 और १५0 दानों की माला का प्रचलन है। यहूदियों के बीच निन्याननें और बत्तीस दानों की माला प्रचलित है। इजिप्ट (मिस्र) में मृत्यु-संस्कार के बाद के कर्म-विधान में एक हजार दानों की माला का प्रयोग होता है।

वैष्णवों के मध्य तुलसी-माला की महिमा है। गणेश-जप में हाथी के दाँत की माला का प्रयोग होता है। त्रिपुर-सुंदरी एवं शिव के जप में रक्त चंदन एवं रुद्राक्ष की माला का प्रयोग होता है। तंत्रसार का उल्लेख है,—

वैष्णवे तुलसीमाला गजदन्तैर्गणेश्वरे ।
त्रिपुराया जपे शस्ता रुद्राक्षैः रक्तचन्दनैः ॥

श्रीमद्देवीभागवतपुराण के अनुसार एकबार कार्तिक-मास की पूर्णिमा को श्रीकृष्ण ने राधा की पूजा करते हुए इतना मधुर वंशी-नाद किया कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा अन्य देवगण वहाँ उपस्थित होकर झूमने लगे। फिर उन सबों ने राधा को अपने गले की मालाएँ उतार कर दे दीं। ब्रह्मा ने रत्नहार, शिव ने मणिहार, कृष्ण ने कौस्तुभमणिहार, विष्णु ने वैजयन्तीमाला और लक्ष्मी ने कनक-कुण्डल राधा के लिए दे दिए।

माला अनेक शब्दों के साथ समस्त होकर अनेकार्थ उपस्थित करती है, जैसे—जपमाला, करमाला, पर्वमाला, अक्षमाला, पुष्पमाला, धारणमाला, सौन्दर्यमाला, हस्तिदंतमाला, रत्नमाला, वैजयन्तीमाला, कनकमाला, कौस्तुभमणिमाला, कंकालमाला, लौहमाला, हरिद्रामाला, शंखमाला, नरास्थिमाला, मुण्डमाला, अंगुलिमाला, रक्तचंदनमाला, स्वयम्भूमाला, गुंजामाला, खरदन्तमाला, स्फटिकमाला, भद्राक्षमाला, रुद्राक्षमाला, पुत्रजावामाला, तुलसीमाला, स्वर्णमाला, रौप्यमाला, ताम्रमाला, औदुम्बरमाला, वैदुर्यमाला, वटबीजमाला, पुंगीफलमाला, जातीफलमाला, प्रवालमाला, कुशमाला, पद्माक्षमाला, अरिष्टमाला (रिट्ठे की माला), बदरीफल माला (बैर की माला), मरीचमाला (काली मिर्च की माला), पिचुमंदमाला, महाशंखमाला, कुसुममाला, कपर्दमाला, हरात्मिकामाला, संयुक्तमाला, निषिध्दमाला, अक्षमाला, मातृकामाला, सूत्रमाला, कर्पासमाला। इन सभी मालाओं का उल्लेख किया गया है। पूजा में देवताओं पर अर्पण के लिए पुष्पमाला का प्रयोग होता है। कालिकापुराण के अनुसार सभी फूलों में लाल-कमल की माला का महत्त्व सर्वाधिक है,—

"सर्वेषां पुष्पजातीनां रक्तपद्ममिहोत्तमम् ।"[1]

लाल कमल के एक हजार फूलों की माला बनाकर जो महादेवी को समर्पित करता है, एक सहस्र करोड़ और सौ करोड़ कल्पों तक वह मानव मेरे कुल में स्थित रहता और फिर श्रीमंडित होकर भूमंडल में राजा होकर अवतरित होता है,—

रक्तसहस्रेण यो मालां सम्प्रयच्छति ।
भक्तियुक्तो महादेव्यै तस्य पुण्यफलं शृणु ॥

कल्पकोटिसहस्रांणि कल्पकोटिशतानि च ।
स्थित्वा मम पुरे श्रीमांस्ततो राजा क्षितौ भवेत् ॥[2]

पत्रों में बिल्वपत्र (बेल के पत्ते) की माला वैसी ही फलदायक है। उल्लेख है,—

पत्रेषु बिल्वपत्रं तु देवीप्रीतिकरं मतम् ।
तत्संहस्रकृतामाला पूर्ववत् फलदा भवेत् ॥[3]

प्रत्येक पुष्प के मूल में ब्रह्मा का, मध्य में केशव का और अग्रभाग में महादेव का निवास होता है। पुष्प की पंखड़ियों पर संपूर्ण देवी-देवताओं का अधिवास होता है। पुष्प से देवताओं की पूजा करने से त्रिवर्ग साधित होता है। साथ ही तुष्टि, श्री और मोक्ष की प्राप्ति होती है,—

त्रिवर्गसाधनं पुष्पं तुष्टिश्रीपुष्टिमोक्षदम् ।
पुष्पमूले वसेत् ब्रह्मा पुष्पमध्ये तु केशवः ॥
पुष्पाग्रे तु महादेवः सर्वे देवाः स्थिता दले ।
तस्मात् पुष्पैर्यजेत् देवान्नित्यं भक्तियुतो नरः ॥[4]

मालाओं का उपयोग देवता को चढ़ाने के लिए, जप के लिए, रोगों के निवारण के लिए और सौन्दर्य के लिए होता है। जप के लिए करमाला और अक्षमाला सर्वोत्तम हैं। माला के व्यापक वर्गीकरण के आधार पर इसे तीन कोटियों में रखा जा सकता है,—वर्णमाला, मणिमाला ओर करमाला।

---

[1] कालिकापुराण, २ : ७२।
[2] उपरिवत्, ७२-७३।
[3] उपरिवत्, ७५।
[4] उपरिवत्, १०८-९।

वर्णमाला अक्षरमाला है। वर्णों की संख्या उनचास है और ळ को लेकर संख्या पचास हो जाती है। इन पचास अक्षरों के अनुलोम-विलोम से शती-माला बनती है। इन सभी अक्षरों के प्रतिनिधि वर्गाक्षर—अ, क, च, ट, त, प, य, श—इन आठ अक्षरों को जोड़ देने से एक सौ आठ अक्षरों की वर्णमाला को अष्टोत्तरशती-माला कहते हैं। अष्टोत्तरशती-माला बनाने का एक पृथक् विधान भी है। इन पचास अक्षरों के साथ 'ह्रीं ऐं क्लीं श्रीं' इन चार बीचाक्षरों को जोड़ देने से चौवन अक्षर बन जाते हैं। इनके अनुलोम-विलोम क्रम से एक सौ आठ अक्षरों की भी अष्टोत्तरशती-माला बन सकती है। इन मालाओं का मेरु क्षकार हैं। इस अष्टोत्तरशती वर्णमाला को सर्वश्रेष्ठ माला कहा गया है। इस अष्टोत्तरशती-क्षकार-सहित वर्णमाला को सभी मंत्रों की जननी तथा ज्ञान-प्रदीप की अंकुर-स्वरूपा ब्रह्मात्मिका अक्षरमाला कहा गया है। इस माला की वंदना की गई है। इस माला को विस-तंतु (कमल-नाल के तंतु) के सदृश अतिसूक्ष्म चित्रिणी नाड़ी से ग्रथित मानने की भावना करनी चाहिए। इस प्रकार की माला का ध्यान इस प्रकार है,—

अन्तुर्विद्रुम-भासमान भुजगा सुप्तोत्थवर्णोज्ज्वलाम् ।
आरोहमवरोहिका शतमयीं वर्गाष्टकाष्टोत्तरीम् ॥
साक्षात् ब्रह्ममयीं 'क्ष' मेरुसहिता श्री-मातृकाक्षावला ।
विद्यां नौमि समस्त-मन्त्र-जननीं ज्ञानैक-दीपाङ्कुराम् ॥

करमाला अँगुलियों के पर्वों पर कल्पित माला है, जिसे अँगुलि-पर्वमाला भी कहते हैं। कनिष्ठा, अनामिका, मध्यमा और तर्जनी इन चार अँगुलियों पर कुल बारह पर्व होते हैं। प्रत्येक अँगुलि पर तीन-तीन पर्व हैं। इनमें दो पर्वों को छोड़ दिया जाता है। इस प्रकार कुल दस पर्व होते हैं। इन पर दस बार जप करने से एक शती-कर माला बनती है। अँगुष्ठों के पर्वों की गणना इसलिए नहीं होती, क्योंकि इससे गणना की जाती है। यामल में तर्जनी के मूल पर्व को छोड़कर ऊपर के दो पर्वों के छोड़ने का विधान है; अर्थात् अनामिका के तीन पर्व, कनिष्ठा के तीन पर्व, मध्यमा के तीन पर्व तथा तर्जनी के मूल पर्व पर जप करने का विधान है। तर्जनी के ऊपरी दोनों पर्वों को मेरु माना गया है। यह भी कहा गया है कि जो साधक तर्जनी के अग्र-भाग और मध्य-भाग पर भी जप करता है, उसकी आयु, विद्या, और बल का नाश होता है। दैनिक जप कर-माला से ही करना चाहिए; किंतु काम्य-जप करमाला से नहीं करना चाहिए। विशेष परिस्थिति में जहाँ अन्य मालाओं की सुविधा उपलब्ध न हो, वहाँ करमाला से भी काम्य जप किया जा सकता है। इस करमाला को शक्तिमाला कहा गया है। यह सर्व-मंत्र-प्रदीपिका कही गयी है। यामल-तंत्र का उल्लेख है,—

अनामो तर्जिनी मूलपर्वणि ॥
मध्यमायास्त्रयं पर्वं तर्जिनी मूलपर्वणि ॥

प्रदक्षिण्य क्रमेणैव जपेद्दशसु पर्वसु ।
शक्तिमाला समाख्याता सर्व-मन्त्र-प्रदीपिका ॥
पर्वद्वयन्तु तर्जन्या मेरुं तद्विद्धि पार्वति ।
तर्जन्यग्रे तथा मध्ये यो जपेत्तत्र मानवः ॥
चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्या यशोबलम् ।
नित्यं जपं करे कुर्यात् नतु काम्यं कदाचन ॥
काम्यं चापि करे कुर्यात् मालाभावे च सुन्दरि ॥[1]

यह शक्ति-मंत्र-जपने के विधान की प्रणाली है। इसका क्रम इस प्रकार है,—अनामिका का मध्य पर्व—१, मूल पर्व—२, कनिष्ठा का मूलपर्व—३, मध्यपर्व—४, अग्रपर्व—५, अनामिका का अग्रपर्व—६, मध्यमा का अग्रपर्व—७, मध्यपर्व—८, मूलपर्व—९ और तर्जनी का मूल पर्व—१0।

वेदोक्त नित्यकर्म-पद्धति के अंतर्गत करमाला का जप-विधान भिन्न है। दाहिने हाथ की अँगुलियों को आपस में मिलाकर हथेली की ओर थोड़ा झुका लेना चाहिए। अँगुलियों के अलग-अलग रहने से जप का पूर्ण फल नहीं मिलता। अँगुलि के अग्रभाग (नख) तथा पर्व की लकीर पर किया गया जप निष्फल होता है। सुमेरु का उल्लंघन भी जप को निष्फल करता है। कहा गया है,—

“अंगुल्यग्रे च यज्जप्तं यज्जप्तं मेरुलंघनात् ।
पर्वसन्धिषु यज्जप्तं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥”

वैदिक मंत्रों के लिए करमाला का पर्व-विधान, जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है, इस प्रकार है,—

आरभ्यानामिका-मध्यं पर्वाण्युक्तान्यनुक्रमात् ।
तर्जनी-मूल-पर्यन्त जपेद्दशसु पर्वसु ॥
मध्यमांगुलिमूले तु यत्पर्वद्वितयं भवेत् ।
तं वै मेरुं विजानीयाज्जाप्ये तं नातिलंघयेत् ॥

तीसरे प्रकार की माला मणिमाला है। मणियों के प्रकार भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। इनमें रुद्राक्ष को सर्वश्रेष्ठ मणिमाला कहा गया है। यह सभी प्रकार की भुक्ति, मुक्ति और सिद्धि को देनेवाली है। यह सभी प्रकार की देवियों और देवों के लिए जपयोग्य माला है। इस पर शक्ति और शिव दोनों का जप हो सकता है। शक्ति-संगम-तंत्र

---

[1] यामलतंत्र ।

के अनुसार,—"रुद्राक्षः शक्ति-मात्रके" तथा "सर्वमन्त्रे च रुद्राक्षः" कहा गया है। चौवन रुद्राक्षों की माला काम्य कर्म में और एक सौ आठ रुद्राक्षों की माला सर्वाभीष्ट कर्म में प्रयोजनीय है,—

चतुः पञ्चाशदक्षैः सा काम्य-कर्मसु सिद्धिदा ।
अष्टोत्तरशतैः कृत्वा सर्वाभीष्टप्रदा मता ॥

स्फटिक की माला पर जप करने से मुक्ति मिलती है। पद्माक्षमाला पुष्टिकारिणी मानी गई है। पुत्रजीवमाला पुत्र, पशु, धान्य इत्यादि समृद्धियों को प्रदान करती है। मूँगा की माला धन, पुत्र, सौभाग्य के साथ-साथ वश्यकारिणी भी सिद्ध होती है। मोतियों की माला से मुक्ति और संपत्ति की प्राप्ति होती है। कुश की माला पापनाशिनी होती है। चाँदी और सोने की माला पर जप से कामनाओं की पूर्ति होती है,—

मुक्तिप्रदाः स्फटिकजाः पद्माक्षाः पुष्टिवर्धनाः ।
पुत्रजीव-भवाः पुत्र-पशु-धान्य-समृद्धिदाः ॥
विद्रुमोत्थास्तु धनदा पुत्र-सौभाग्यवश्यदा ।
मौक्तिका मुक्तिदाः प्रोक्ताः सर्वसम्पत् समृद्धिदाः ।
पापहा वै कुशमयाः कामदाः स्वर्णरूपजाः ॥

माला के संबंध में रावणकृत उड्डीश-तंत्र में उल्लेख मिलता है। यह प्रसिद्ध तंत्र-ग्रंथ है। इसमें उल्लेख है,—

प्रवालवज्रमणिभिर्वश्यपौष्टिकयोर्जपेत् ।
मत्ते भदन्तमणिभिर्जपेदाकृष्ट-कर्मणि ॥
साध्यकेशसूत्रयुक्तस्तुरङ्गदशनोद्भवैः ।
अक्षमाला परिष्कृत्य विद्वेषोच्चाटने जपेत् ॥

अर्थात् मूँगा, हीरा तथा मणि की माला पर जप से पुष्टि एवं वशीकरण संभव होता है। आकर्षण-प्रयोग में हाथी के दाँत की माला पर जप करना चाहिए। विद्वेषण तथा उच्चाटन-प्रयोग में स्फटिक या घोड़े के दाँतों की माला को सूत या केश में गूँथ कर जप करना चाहिए।[1] इस संबंध में और भी आगे कहा गया है,—

मृतस्य युद्धशून्यस्य दशनैर्गर्दभस्य च ।
कृत्वाक्षमाला जप्तव्य शत्रोर्मारणमिच्छता ॥

---

[1] रावणकृत उड्डीशतंत्रः, २ : १, २।

क्रियते शंखमालाभिर्धर्मकामार्थसिद्धये ।
पद्माक्षैः प्रजपेन्मन्त्र सर्वकामार्थ-सिद्धये ॥[1]

अर्थात् गदह के दाँतों की माला अथवा स्फटिक की माला पर जप करने से शत्रु-मारण और शत्रु-सैन्य-स्तंभन होता है। धर्म, अर्थ एवं काम की सिद्धि के लिए शंख की माला पर जप करना चाहिए। संपूर्ण कामनाओं की सिद्धि के लिए पद्माक्षमाला (कमलगट्टे की माला) पर जप करना चाहिए। इनके अतिरिक्त रुद्राक्षादिमाला तथा अन्य मालाओं के संबंध में भी उल्लेख है,—

रुद्राक्षमालया जप्तो मन्त्रः सर्वफलप्रदः ।
स्फाटिकी मौक्तिकी वापि रौद्राक्षी वा प्रवालजा ।
सरस्वती-प्राप्तये च पुत्रजीवैस्तथा जपेत् ॥
पद्मसूत्र-कृता रज्जुः शस्ता शान्तिकपौष्टिके ।
आकृष्ट्युच्चाटयोर्वाजिपुच्छबाल-समुद्भवा ॥
नरस्नायुविशेषे तु मारणे रज्जुरुत्तमा ।
अन्यासां चाक्षमालानां रज्जुः कार्पासिकी मता ॥[2]

अर्थात् रुद्राक्ष की माला पर सभी प्रकार के मंत्रों का जप किया जा सकता है। स्फटिक, मोती, मूँगा, रुद्राक्ष तथा पुत्रजीव की माला पर जप करने से सरस्वती प्रसन्न होती हैं और विद्या की प्राप्ति होती है। शान्ति एवं पुष्टि-प्रयोग में माला को कमल-सूत्रों से ग्रथित करना चाहिए, आकर्षण तथा उच्चाटन-प्रयोग में घोड़े की पूँछ के बालों से माला को गूँथना चाहिए। मारण-प्रयोग में मनुष्य की स्नायु के सूक्ष्म चर्म तंतु से माला को गूँथना चाहिए। अन्य कार्यों के लिए कपास के सूत का ही प्रयोग करना चाहिए।

माला में मनकों की संख्या का निर्धारण करते हुए रावणकृत उड्डीशतंत्र में कहा गया है,—

सप्तविंशति-संख्यकैः कृत्वा सिद्धि प्रयच्छति ।
अक्षैस्तु पञ्चदशभिरभिचार-फलप्रदा ॥
अक्षमाला विनिर्दिष्टा मन्त्रादौ तत्त्वदर्शिभिः ।
अष्टोत्तरशतेनैव सर्वकर्मेषु पूजिता ॥[3]

अर्थात् सत्ताईस दानों की माला सिद्धिदायिनी होती है। अभिचार-कर्म-प्रयोग में पंद्रह दानों की माला का विधान है। रुद्राक्ष की माला पर जप से सभी प्रकार के

[1] उपरिवत्, ३, ४।
[2] उपरिवत्, ५, ६, ७।
[3] उपरिवत्, ८, ९।

मंत्रों को सिद्ध किया जा सकता है—ऐसा तत्त्वदर्शियों का अभिमत है। एक सौ आठ मनकों की माला सभी कर्मों में सिद्धिदायक, अभीष्ट, पूजित और प्रयोजनीय है।

माला और जपकाल में दिशा-निर्देश के संबंध में इस तंत्र का उल्लेख है,—

> जपेत् पूर्वमुखं वश्ये दक्षिणं चाभिचारके ।
> पश्चिमे धनदं विद्यादुत्तरं शान्तिकं भवेत् ॥
> आयुष्यरक्षां शान्तिं च पुष्टिं वापि करिष्यति ॥[1]

अर्थात् वशीकरण-प्रयोग में पूर्व की ओर मुखकर बैठकर जप करना चाहिए। अभिचार-प्रयोग में दक्षिण की ओर, धन की प्राप्ति के लिए पश्चिम की ओर और शांति, आयु, रक्षा, पुष्टि एवं विद्या इत्यादि की प्राप्ति के लिए उत्तर की ओर मुख कर जप करना चाहिए। अनेक तंत्रों में दक्षिण की ओर मुखकर जप करने का विधान है, किंतु यह मारणादि अनिष्ट कर्मों के लिए ही विहित है।

दश विद्याओं की उपासना में भिन्न-भिन्न प्रकार की मालाओं का उल्लेख किया गया है, जो इस प्रकार है,—

काली की उपासना में दंतमाला
तारा की उपासना में अस्थिमाला
छिन्नमस्ता की उपासना में नरास्थिमाला
त्रिपुरा की उपासना में रक्तचंदनमाला
भैरवी की उपासना में स्वयंभूमाला
मातंगी की उपासना में गुंजामाला
धूमावती की उपासना में खरदंतमाला
बगलामुखी की उपासना में हरिद्रामाला
कमला की उपासना में कमलमाला
भुवनेश्वरी की उपासना में स्फटिकमाला

इसी प्रकार कुछ देवों की उपासना में भिन्न-भिन्न प्रकार की मालाओं का उल्लेख शास्त्र-विहित है।

विष्णु की उपासना में शंखमाला
शरभशालव की उपासना में भद्राक्षमाला
गणेश की उपासना में गजदंतमाला
गोविन्द की उपासना में तुलसीमाला
सूर्य की उपासना में प्रवालमाला
शिव की उपासना में रुद्राक्षमाला

---

[1] उपरिवत्, १०।

विभिन्न प्रयोजनों तथा कार्यसिद्धियों के लिए विभिन्न प्रकार की मालाओं का विधान है, जिसका शास्त्र-समाहार-रूप इस प्रकार है,—

सर्वकार्यसिद्धि के लिए, अभीष्ट और काम्य के लिए—रुद्राक्षमाला
पुष्टि के लिए—पद्माक्षमाला
मुक्ति के लिए—मुक्ताफलमाला
कान्ति के लिए—चन्दनमाला
वशीकरण के लिए—प्रवालमाला
मोहन-कर्म के लिए—गुंजाफलमाला
भाग्य-संपत्ति के लिए—भद्राक्षमाला
धनधान्य और पुत्र-प्राप्ति के लिए—पुत्रजीवकमाला
राज्य-प्राप्ति के लिए—रुद्राक्षमाला
विद्वेषण के लिए—अरिष्टकमाला (रीठे की माला)
मारण के लिए—बदरीफलमाला (बेर की माला)
भय के लिए—मरीचमाला (काली मिर्च की माला)
विनाश के लिए—पिचुमंदमाला अथवा निम्ब (नीम की लकड़ी) की माला
अकस्मात् अभीष्ट-सिद्धि के लिए—महाशंखमाला
सृष्टि की अखिल सिद्धियों के लिए—दंतमाला
सर्वशत्रुनाश के लिए—अस्थिमाला
शत्रुविशेषमारण के लिए—खरदंतमाला
साधना में सबका गुरु बन जाने के लिए—गजदंतमाला
सभी विद्याओं का स्वामी बनने के लिए—स्वयंभूकुसुममाला
वाक्सिद्धि के लिए—स्फटिकमाला
भूतों के नाश के लिए—औदुम्बरमाला
दारिद्र्यनाश के लिए—द्राक्षमाला
यक्षिणीसिद्धि के लिए—वटबीजमाला
ऐश्वर्य-प्राप्ति के लिए—कपर्दिमाला
सात्त्विक एवं राजसी प्रयोजन-सिद्धि के लिए—रजतमाला
श्री-समृद्धि तथा सभी प्रकार के सांसारिक वैभव एवं अर्थ-प्राप्ति के लिए प्रवालमाला
पातकमुक्ति, दोषमुक्ति एवं शांतिलाभ के लिए—कुशमूलमाला
अभिचार-कर्मों के लिए—कमलमाला
भैरवी-साधना के लिए—स्वर्णमाला, स्फटिकमाला अथवा मुक्तामाला

इन मालाओं के अतिरिक्त कुछ संयुक्त मालाओं का भी उल्लेख मिलता है। रुद्राक्ष और सोने के दानों से बनी माला शिव और विष्णु के लिए उपयुक्त मानी गई है, जिसे हरिहरात्मिकामाला कहते हैं। रुद्राक्ष और चाँदी से बनी हुई माला को ब्रह्म और शिव के लिए अनुकूल माना गया है, जिसे ब्रह्म-शिवात्मिकामाला कहते हैं।

आम्नाय-भेद से देवताओं की उपासना के क्रम में मालाएँ बदल जाती हैं,—

पूर्वाम्नाय के देवताओं के मंत्र का जप स्फटिकमाला से जपनीय है।
दक्षिणाम्नाय के देवताओं के मंत्र रुद्राक्षमाला से जपनीय हैं।
पश्चिमाम्नाय के देवताओं के मंत्र प्रवालमाला या मुक्तामाला से जपनीय हैं।
उत्तराम्नाय के देवताओं के मंत्र महाशंखमाला से जपनीय हैं।
ऊर्ध्वाम्नाय के देवताओं के मंत्र महाशंखमाला से ही जपनीय हैं ।

मालाओं के प्रकरण में शास्त्रों के अंतर्गत निषिद्धमाला का उल्लेख किया गया है। रुद्राक्षमाला पर सभी मंत्रों के जप का विधान तो किया गया है, लेकिन एक वर्जना भी है। रुद्राक्षमाला पर शक्ति-मंत्र का जप दिन में नहीं करना चाहिए। इससे जप तो निरर्थक हो ही जाता है, दुर्गति-प्राप्ति की भी संभावना रहती है। कहा गया है,—

रुद्राक्षैः शक्ति-मन्त्रस्तु दिवा यो जपति प्रिये ।
स दुर्गतिमवाप्नोति जपस्तस्य निरर्थकः ॥

उत्तराम्नाय के देवता के मंत्रों को पुत्रजीव की माला पर नहीं जपना चाहिए। तारा तथा कालिका के मंत्रों को शंखमाला से नहीं जपना चाहिए। अन्यथा सिद्धि तो नहीं ही मिलती, हानि की संभावना रहती है। कहा गया है,—

मणिभिः पुत्रजीवोत्थैर्न जपेदुत्तरेश्वरीम् ।
शङ्खमालां विधायाथ यस्तारां कालिकां जपेत् ।
मन्त्रक्षोभमवाप्नोति विद्या-सिद्धिर्न वै भवेत् ॥

निर्धारित मनकों से कम की माला पर जप नहीं करना चाहिए। बाएँ हाथ से जप का निषेध है। मणियों में नाखून का स्पर्श वर्जित है। जपकाल में माला में बने सुमेरु-मणि का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। वहीं से फिर उल्टी दिशा में लौट आने का विधान है। माला के मणियों को तर्जनी से नहीं छूना चाहिए। जपकाल में माला के मणियों को अपनी ओर लाते हुए जप करना चाहिए। माला को न तो भूमि पर रखना चाहिए, न इसे जपकाल में भूमि पर गिरने देना या स्पर्श करना चाहिए। माला जपते समय माला को ढँका होना चाहिए; अर्थात् इसे गोमुखी में रखना चाहिए। गोमुखी में रखकर ही जप करना चाहिए।

दाहिने हाथ को गोमुखी के अंतर्गत प्रवेश कराकर उसमें स्थित माला को विहित अँगुलियों से फेरना चाहिए। गोमुखी की माला, जो दाहिने हाथ की विहित अँगुलियों से जपी जा रही हो, उसका स्थिति-स्थान हृदय के पास होना चाहिए। दाएँ, बाएँ, आगे, ऊपर नहीं होना चाहिए। जिस देवता का ध्यान किया जा रहा हो, उसका

स्थान माला से थोड़ा ऊपर होना चाहिए। यदि आँखें बंदकर ध्यानपूर्वक जप किया जा रहा हो तो स्वभावतः दोनों भौंहों के बीच स्थित आज्ञाचक्र में ध्यान होता है। माला का स्थिति-स्थान हृदयचक्र-अनाहत के सामने है और ध्यान का स्थान आज्ञाचक्र, जो स्वभावतः ऊपर है। यदि किसी मूर्ति-चित्र या यंत्र पर ध्यानपूर्वक जप किया जा रहा हो तो उन यंत्रों, मूर्तियों और चित्रों को आसन पर बैठे साधक की नाभि से थोड़ा ऊपर होना चाहिए। यदि हृदय-स्थल से भी थोड़ा ऊपर हो तो और अच्छा है। किसी निर्धारित समय में ही जप करना फलदायक होता है। समयांतर से देवता को प्रसन्न करना कठिन हो जाता है। जप आहत और अनाहत—दोनों नादों के द्वारा एक आकाशीय ध्वनि-तरंग है, जिसमें विद्युत्-तरंग उत्पन्न होती है। इससे देवता का आकर्षण होता है। यदि कोई साधक प्रतिदिन प्रातःकाल छह बजे पवित्र होकर जप में बैठ जाता है तो कुछ ही दिनों के बाद वहाँ देवता की दिव्यता का अधिवास होने लगेगा। देवता की जपकाल में उपस्थिति होने लगेगी। फिर जब वही साधक कुछ दिनों बाद छह बजे के बदले आठ बजे जप करता है, नौ बजे जप करता है, तो वैसी स्थिति में देवता इसलिए नहीं आएँगे, क्योंकि वे अपने अभ्यस्त आकर्षण के कारण छह ही बजे आकर लौट गए रहेंगे। इसलिए निश्चित-निर्धारित माला के साथ, निश्चित समय का भी महत्त्व है।

माला के मनकों और अँगुलियों के बीच किसी प्रकार का व्यवधान नहीं होना चाहिए। माला यदि टूट जाए तो, उसका फिर से विधानपूर्वक पूजन करना चाहिए। जपकाल में जापक को अपना मस्तक ढँक कर रखना चाहिए। मुसलमानों, सिखों और हिन्दुओं के सभी धार्मिक विधानों के अंतर्गत माथे को ढँककर रखने का उल्लेख है। औरतों को भारतवर्ष में माथे पर आँचल रखने के लिए कहा गया है। इसके पीछे लज्जा के साथ-साथ धर्म-विधान भी है। पुरुषों के लिए पाग, मुरेठा, टोपी, हैट—इन सबों के पीछे सुरक्षा, अलंकरण और परंपरा के अतिरिक्त धर्माचरण का भी अनुक्रम रहा है। जपकाल में पूरी माला पर जप किए बिना विराम नहीं करना चाहिए और न कुछ बोलना चाहिए। ऐसा हो जाने पर फिर से जप करना चाहिए। माला स्वयं एक देवी है। माला-जप के आरंभ में उनकी प्रार्थना आवश्यक है। माला का प्रार्थना-मंत्र है—

"ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणी ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥
ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे
जपकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये ॥
ॐ अक्षमालाधिपतये सुसिद्धिं देहि देहि,
सर्वमन्त्रार्थसाधिनि साधय साधय,
सर्वसिद्धिं परिकल्पय-परिकल्पय मे स्वाहा ॥"

जप-समाप्ति के पश्चात् फिर माला की प्रार्थना करनी चाहिए—

"ॐ त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदा शुभदा भव ।
शिवं कुरुष्व मे भद्रे यशो वीर्यञ्च देहि मे ॥"

इस प्रकार जप के आरंभ और अंत में माला की प्रार्थना कर उसे गोमुखी में डाल देना चाहिए। कहा गया है कि जपमाला को गुरु को भी नहीं दिखाना चाहिए। यह परम गोपनीय होती है। इसे सदैव छिपाकर रखना चाहिए। अनेक स्थलों पर यह भी विधान है कि जपमाला को धारण नहीं करना चाहिए; क्योंकि धारण करने से उसकी गोपनीयता समाप्त हो जाती है। धारणीयमाला और जपनीयमाला दोनों को शोधित, अभिषिक्त, संस्कारित और अभिमंत्रित होना चाहिए, किंतु जपनीयमाला धारणीय नहीं होती। आपातकाल में धारणीयमाला से जप किया जा सकता है।

सामान्यतः जप की एक ही स्थिति है। जापक शुद्धासन पर शुचितापूर्वक बैठ जाता है और गोमुखी के अंतर्गत स्थित माला को निर्धारित अँगुलियों से जपने लगता है। साधक तो स्थित और निश्चलत् होता है; किंतु माला, चलायमान होती है। सभी जप का यही विधान है। किंतु एक विशेष स्थिति में जब माला बहुत बड़ी हो जाए, जिसके एक सौ नौ दानों को तो क्या दस-पाँच दानों को भी सँभालना कठिन हो जाए तो, वैसी स्थिति में किस प्रकार जप किया जाए! उदाहरण के लिए महाशंख से एक सौ आठ की माला बने तो ऐसी माला बीसियों फीट बड़ी हो सकती है। ऐसी स्थिति में माला तो स्थिर रहेगी, शुद्धासन पर पड़ी रहेगी; जापक ही चल-चलकर मनकों को स्पर्श करता हुआ जप कर पाएगा।

इक्यावन शक्तिपीठ के तीर्थ-स्थल तो स्थित हैं; वहाँ जा-जाकर साधक और जापक एक प्रदक्षिणा पूरी करता है। यह जप का ही एक स्वरूप है। ये तीर्थ मनके हैं। वहाँ जा-जाकर जापक अपना जप पूरा करता है। इसी प्रकार द्वादश-ज्योतिर्लिंग के मनके मिलकर माला बनाते हैं। विंध्याचल में त्रिकोण लगाया जाता है। त्रिकोण की प्रदक्षिणा की अनंत महिमा है। वहाँ तीनों देवियाँ जिस त्रिकोण के तीन कोनों पर स्थित हैं, उनसे एक त्रिकोणात्मक माला बनती है। यहाँ जापक स्वयं चलकर इन मणि-देवियों के दर्शन, स्पर्श और जप करता है। इसे त्रिकोण लगाना कहते हैं। जिस प्रकार जप का पुरश्चरण होता है और उसके लिए मालारूपी देवी साक्षी और सहयोगिनी होती है; उसी प्रकार त्रिकोण या ऐसे तीर्थाटन का भी पुरश्चरण होता है।

जपकाल में मन की स्थिरता आवश्यक है। मनोविज्ञान की परिभाषा में मन से बड़ा चंचल दूसरा कुछ भी नहीं है। शरीर को पंचकोशीय कहा गया है। अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश और आनन्दमय कोश—इन पंचकोशों में मन मध्यवर्ती है। वही अपकृष्ट होकर पशुता तक उतरता है और उत्कृष्ट

होकर आनंदमय कोश तक पहुँचता है। यह आनंद सच्चिदानंद है, जिससे मानव-मात्र वंचित है। उस आनन्द तक पहुँचने में जप साधक बनता है। इसके लिए माला सहायिका और मन बाधक सिद्ध होता है। मन को समाप्त करने की प्रक्रिया को अमनीकरण कहते हैं। मन जब अमन तक पहुँच जाता है, तो समाधि लगती है। समाधि की मधुमती भूमिका पर आनंद का अवतरण होता है। इसी स्थिति तक पहुँचने के लिए कबीर ने सहज साधना का उल्लेख किया है। कबीर के दर्शन में सहज पारिभाषिक शब्द है। स = साथ, ह = हठयोग, ज = जपयोग। हठयोग से चित्त-वृत्तियों का निरोध होता है और जपयोग से मन का अमनीकरण होता है। यही अमन इस्लाम में अमन-चैन और ईसाईयत में आमेन हो जाता है। यह शांति का पर्याय है। इसलिए माला मन को अस्वीकार कर आहत ध्वनियों के माध्यम से अनाहत के ईश्वर-तत्त्व तक पहुँचाती है। यही कारण है कि कबीर ने अपने पदों में माला तक का विरोध किया है। उन्होंने लिखा है—

माला फेरत जग मुआ, मिटा न मन का फेर
मनका मनका छाड़ि के मन का मनका फेर ।

अर्थात् माला फेरते-फेरते संसार (संसार-निवासी-मनुष्य) मर जाता है, किंतु मन का भटकाव समाप्त नहीं होता। इसलिए माला के मनकों (दानों) को छोड़कर मन के मनकों को ही जपना चाहिए। धीरे-धीरे मणिमाला छूट जाती है और मनोमाला का अस्तित्व कायम हो जाता है। साधना की उच्चावस्था में या सिद्धावस्था में मालाएँ छूट जाती हैं। किंतु मालाओं के बिना मन के अमनीकरण तथा निर्मल निर्मनस्कता तक पहुँचने की स्थिति बनती नहीं। इसलिए माला साधना की सिद्धावस्था के लिए अपरिहार्य एवं सर्वोत्तम आधारतत्त्व है।

शाक्त-दर्शन विशेषतः दुर्गासप्तशती और उसके विभिन्न अंगों में माला का उल्लेख किया गया है। देवी-कवच में भगवती को मालाधरी के नाम से संबोधित किया गया है। मालाधरी नाम की विशेष देवी ललाट की रक्षा करती है—'मालाधरी ललाटे चे भ्रुवौ रक्षेद् यशस्विनी।'[1] यहीं माला नाम के अनिष्टकारी तत्त्व से भी रक्षा की बात कही गई है। यहाँ माला से तात्पर्य है—

"सहजा कुलजा माला डाकिनी शाकिनी तथा ।
अन्तरिक्षचरा घोरा डाकिन्यश्च महाबलाः ॥"[2]

[1] देवी-कवच, श्लोक २२।
[2] उपरिवत, श्लोक ५०।

दुर्गासप्तशती के द्वितीय अध्याय में देवी-ध्यान के क्रम में कहा गया है कि देवी अक्षमालाधारिणी हैं,—

'ॐ अक्षस्रक्परशु गदेषुकुलिश पद्म धनुष्कुण्डिकाम्'[1]

दुर्गासप्तशती के दूसरे अध्याय में कहा गया है कि विश्वकर्मा ने भगवती को जो अनेक वस्तुएँ प्रदान कीं, उनमें कभी न कुम्हलानेवाले कमलों की माला भी दी,—

अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाभेद्यं च दंशनम् ।
अम्लानपङ्कजां मालां शिरस्युरसि चापरम् ॥[2]

दुर्गासप्तशती के तीसरे अध्याय के ध्यान-श्लोक में भगवती के गले में मुण्डमाला की शोभा का वर्णन है,—

ॐ उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकाम्[3]

षष्ठ अध्याय के ध्यान-श्लोक में भगवती को नागराज के आसन पर स्थित दिखाया गया है। नागों के फनों से सुशोभित होनेवाले मणियों की विशाल माला से उनकी देहलता उद्भासित हो रही है,—

ॐ नागाधीश्वर-विष्टरां फणिफणोत्तंसोरुरत्नावली-
भास्वद्देहलतां दिवाकर-निभां नेत्रत्रयोद्भासिताम् ।
मालाकुम्भकपालनीरजकरां चन्द्रार्धजूडां परां
सर्वज्ञेश्वरभैरवाङ्कनिलयां पद्मावतीं चिन्तये ॥[4]

यहीं देवी के काली-रूप का वर्णन है, जो नरमाला-विभूषित है,—

विचित्रखट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा ।[5]

---

[1] दुर्गासप्तशती, अध्याय २, ध्यानम् ।
[2] उपरिवत्, श्लोक २८।
[3] उपरिवत्, अध्याय ३, ध्यान-श्लोक।
[4] उपरिवत्, षष्ठ अध्याय, ध्यान-श्लोक।
[5] उपरिवत्, सप्तम् अध्याय, श्लोक ७।

नवम् अध्याय में भगवती को रुचिर (सुंदर) अक्षमाला धारण किए हुए दिखाया गया है,—

ॐ बन्धूकाञ्वननिभं रुचिराक्षमाला
पाशाङ्कुशौ च वरदां निजबाहुदण्डैः ।।[1]

सप्तशती के अंतर्गत षडंग-क्रम में प्राधानिक रहस्य के श्लोकों में माला का उल्लेख है। देवी-अवतार के रूप में महालक्ष्मी का जो स्वरूप-वर्णन किया गया है, उसके अंतर्गत कहा गया है कि वे वक्षःस्थल पर कबंध (धड़) की माला तथा मस्तक पर मुंडों की माला धारण किये हुए हैं,—

कबन्धहारं शिरसा बिभ्राणा हि शिरः स्रजम।[2]

वे देवी वीणा और पुस्तक के साथ अक्षमाला को भी धारण करती हैं,—

अक्षमालाङ्कुशधरा वीणापुस्तक-धारिणी ।[3]

वैकृतिक रहस्य के अंतर्गत भी महाकाली, जो विष्णु की योगनिद्रा भी कही गई हैं, विचित्रमाला, वस्त्राभूषण, अंगराग से सज्जित कान्तिमयी और सौभाग्यशालिनी हैं,—

सुचित्रजघना चित्रगाल्याम्बरविभूषणा ।
चित्रानुलेपना कान्तिरूप-सौभाग्य-शालिनी ।।[4]

वे अनेक प्रकार के अलंकरण और शस्त्रास्त्रों के साथ अक्षमाला को भी धारण करती हैं,—

अक्षमाला च कमलं बाणोऽसिः कुलिशं गदा ।[5]

इस प्रकार दुर्गासप्तशती और उसके विभिन्न अंगों के अंतर्गत माला और अक्षमाला के धारण का विधान है। स्वयं देवी माला और अक्षमाला को धारण कर अपने देवीत्व को सुरक्षित और भास्वर बनाती हैं; फिर मनुष्य के लिए तो वह अपरिहार्य ही है।

---

[1] उपरिवत्, नवम् अध्याय, ध्यान-श्लोक।

[2] उपरिवत्, प्राधानिक रहस्य, श्लोक ९।

[3] उपरिवत्, श्लोक १५।

[4] उपरिवत्, वैकृतिक रहस्य, श्लोक ९।

[5] उपरिवत्, श्लोक ११।

मेरुहीना च या माला मेरुलङ्घ्या च या भवेत् ।
अशुद्धा तु भवेदत्र सा माला निष्फला भवेत् ॥
विचित्रा विशतन्त्वाभा ब्रह्मनाडीगता तु या ।
तया संग्रथिता ध्येया सर्वकामफलप्रदा ॥
अष्टोत्तरशतजपे त्वादौ क्लीबं समुच्चरेत् ।
ॠ-ॠ-ऌ-ॡ-वर्णचतुष्टयं क्लीबं प्रचक्षते ॥
वर्गाणामष्टकं वाऽपि काम्यभेदक्रमेण तु ।
अ-क-च-ट-त-प-य-शा इत्येवं चाष्टवर्गकम् ॥

—मुण्डमालायाम्

(अष्टोत्तरशतजपे कर्त्तव्ये क्लीबचतुष्टयमादावुच्चार्य विलोमसमाप्तौ चापि तच्चतुष्टयं विलोमेन जपेदित्येकः पक्षः।

अनुलोमविलोमाभ्यां पञ्चाशद्वर्णमुच्चार्य शेषेऽष्टवर्गाक्षराण्युच्चरेदित्यपरः पक्ष इत्यर्थः। क्षकारश्च मेरुत्वेन सकृदेवोच्चार्यस्तदुत्तरं मन्त्रो नोच्चार्य इति तत्र विवेकः।)

श्रीमायाकामवाग्योगान्मातृकावर्णयोगतः ।
अनुलोमविलोमाभ्यामष्टोत्तरशतं जपेत् ॥

--प्रकारान्तरमुक्तम्, साधनसमुच्चये

त्रयं गुरो त्रयं देवि गणपाय प्रकीर्त्तितम् ।
न्यूनातिरिक्ते द्वितयं शेषमिष्टाय योजयेत् ॥

—तन्त्रान्तरे

चराऽथ कथ्यते मालाऽभिचारे तिथिसङ्ख्यकैः ।
मुक्त्यार्थं पञ्चविंशत्या संतुष्ट्यै सर्वदा जपेत् ॥
त्रिंशद्भिर्धर्मवृद्धिः स्याच्चतुष्पञ्चाशतेप्सितम् ।
शतात् सौख्यं तथाऽष्टाभिः शतात् सफलसिद्धयः ॥
समस्तसिद्ध्यै रुद्राक्षा मणयो धनदो मताः ।
गतप्राप्तिकरः शङ्खो भोगकृत स्फाटिको मतः ॥
पुत्रप्रदाः पुत्रजीवाः पद्माक्षाः पुष्टिवर्द्धनाः ।
विद्रुमोत्था वश्यकरा मौक्तिका मुक्तिदा मताः ।

पापापहाः कुशमयाः स्वर्णजाः कामदायकाः ।
कामवृद्धिस्तारजातैरिन्द्राक्षैः स्याद्गतं पदम् ॥
स्त्रीवश्यार्थं हरिद्राया दार्वी पुरुषवश्यकृत् ।
ज्वरहन्त्री तु लक्षायाः खड्गस्य पितृतृप्तिकृत् ॥

अर्कस्योच्चाटने कार्या श्रीफलैर्ज्ञानसाधने ।
गजदन्तस्य सर्वार्थं मोहने ताम्रजा मता ॥
मारणे चायसी प्रोक्ता धनार्थं श्वेतपद्मजा ।
विषोत्तारे चन्दनोत्था शान्तिकृच्छ्वेतकाष्ठजा ॥
रक्तचन्दनबीजोत्था यक्षिण्यादिकसाधने ।
पद्मकाष्ठोद्भवा तुष्ट्यै देवदारुभवैविरुक् ॥
कृष्णकाष्ठसमुद्भूतैस्तामसं कर्म सिद्ध्यति ।
भूतस्तम्भे निम्बजाता जनस्तम्भे समीभवा ॥
महानिम्बेन डाकिन्या भूनिम्बैः स्तम्भनं रुजाम् ।
इन्द्रवृक्षाद्रणस्तम्भोऽभिचारो वानरास्थितः ॥
ऋक्षास्थितो वन्यसिद्धिः शार्दूलात् तस्य देवताः ।
नरास्थ्ना राक्षसा वश्या वीरा वश्या हयास्थिभिः ॥
रासभास्थ्ना क्षुद्रसिद्धिर्मान्यता तु गजास्थिभिः ।
मृत्तिका भृष्टमणिजा माला शावरसिद्धिदा ॥

—मेरुतन्त्रे

रुद्राक्षशङ्खपद्माक्षपुत्रजीवकमौक्तिकैः ।
स्फाटिकैर्मणिरत्नैश्च हेमराजतवैद्रुमैः ॥
कुशैः पूर्वोदितै सर्वैः पर्वभिर्मातृकाक्षरैः ।
गर्दभाश्वनराणां दै दन्तैरण्यभिचारकैः ।
वैष्णवे तुलसी माला गजदन्तैर्गणेश्वरे ।
त्रिपुराया जपे शस्ता इन्द्राक्षै रक्तचन्दनैः ॥
महाशङ्खमयी ज्ञेया नीलसारस्वते मनौ ।

—पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्

रहस्यमालया जप्ता तारिणी सिद्धिदा भवेत् ।
अतस्तया प्रजप्तव्या मालया सिद्धिमिच्छता ॥
महाशङ्खमयी माला पञ्चाशन्मणिनिर्मिता ।
रहस्यमाला संप्रोक्ता गोपनीया प्रयत्नतः ॥
कर्णनेत्रान्तरालस्थो महाशङ्खः प्रकीर्त्तितः ।
तद्भावे तु कस्यापि कर्त्तव्याऽवयवस्य वै ॥

—त्रिशक्तिरत्ने

नरेभाश्वोष्ट्रमुण्डानां छिन्नानां रणसङ्कटे ।
माला वै कारयेद्वृत्तां महाविद्यासु साधकः ॥
तद्भावे स्फाटिकी स्यान्माला सर्वसमृद्धिदा ।

—यामले

रहस्यमालया जप्ता कालिका सर्वसिद्धिदा ।
महाशङ्खास्थिमालोक्ता तारिणीकालिकाविधौ ॥
तद्भावे स्फाटिकी स्यात् तथा पद्माक्षसम्भवा ।

—वीरतन्त्रे

स्वयम्भूमालिका देवि भैरव्यां कालिकाविधौ ।
छिन्नमस्ताविधौ देवि महाशङ्खास्थिमालिका ॥
बालायां भुवनेश्वर्यां स्फाटिकी परिकीर्त्तिता ।
गुञ्जामाला तु मातङ्ग्यां धूम्रायां खरदन्तजा ॥
हरिद्रा वगलायां च कमलाक्षा रमाविधौ ।

तथा—

पूर्वाम्नाये स्फाटिकजैर्दक्षिणे रुद्रनेत्रजैः ।
प्रवालैर्मौक्तिकैर्देवि पश्चिमाम्नायदेवते ॥
उत्तराम्नायदेवीनां महाशङ्खास्थिमालिका ।
ऊर्ध्वाम्नाये स्वम्भूत्था पाताले रत्नसम्भवा ॥
प्रवालैः सूर्यमन्त्रे च मौक्तिकैः शक्तिमात्रके ।
शिवशक्तिमयी माला रौद्राक्षी स्फाटिकी तथा ॥
रुद्राक्षस्वर्णसंयुक्ता माला विद्धि शिवात्मिकाम् ।
सर्वतन्त्रेषु रुद्राक्षाः शक्तिमन्त्रे दिवा न हि ॥

—तन्त्रे

रुद्राक्षैर्विहिता माला सर्वकामप्रसाधिनी ।
निर्मिता शङ्खमालाभिर्धनं कीर्तिं च यच्छति ॥
पद्माक्षैः पुष्टिलक्ष्मीदा शत्रुनाशकरी तथा ।
पुत्रञ्जीवभवा पुत्रपशुश्रीधान्यऋद्धिदा ॥
मुक्ताभी रचिता माला सौभाग्यं विपुलं श्रियम् ।
मन्त्रप्रत्यक्षदा सिद्धिं शान्तिकं चाथ पौष्टिकम् ॥
मुक्तिं च तनुते तद्वत् स्फाटिक्यप्यक्षमालिका ।
सारस्वते पद्मरागा पुष्कले च धने तथा ॥
सौवर्णी राजती माला सर्वान् कामान् प्रयच्छति ।
सारस्वते प्रवालोत्था वश्येऽधिकधनागमे ॥
पापक्षयकरी कौशी रुद्राक्षादिकुशान्तकैः ।
सर्वैरेतैर्विरचिता माला स्यान्मुक्तये नृणाम् ॥
नित्यं जपं प्रकुर्वीत पर्वभिर्वर्णमालिका ।
स्थिरेण मनसा न्यस्ता सर्वान् कामान् प्रयच्छति ॥
उच्चाटनेऽश्वदन्तानां माला प्रोक्ताऽश्ववालकैः ।
खरदन्तैरधोभूतैर्मनुष्यस्नायुतन्तुना ॥

ग्रथितैर्निर्मिता माला शत्रूणां नाशिते मता ।
प्रेतदन्तेरधोभूतेः कर्त्तव्या जपमालिका ॥
साध्यदेहभवैः केशैः प्रोक्तव्या द्वेषकर्मणि ।
अङ्गुलीजपसंख्यानमेकमेवमुदाहृतम् ॥
पुत्रञ्जीवैर्दशगुणैः शतं शङ्खैः सहस्रकम् ।
प्रवालैर्मणिरत्नैश्च दशसाहस्रकं स्मृतम् ॥
तदेव स्फाटिकं प्रोक्तं मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते ।
पद्माक्षैर्दशलक्षं स्याद्राजतैः कोटिरुच्यते ॥
सौवर्णैर्द्विगुणा सैव सर्वैः शतगुणा स्मृता ।
कुशग्रन्थ्या च रुद्राक्षैरनन्तगुणितं फलम् ॥
श्वेतपद्माक्षमालाभिरपि स्यादमितं फलम् ।
मातृकावर्णसम्भूतमालयाऽपि तदेव तु ॥

—यामले

कुशग्रन्थ्या जपेद्विप्रः सुवर्णमणिभिर्नृपः ।
पुत्रञ्जीवैर्जपेद्वैश्यः पद्माक्षैः सर्व एव हि ॥
रुद्राक्षस्फाटिकेन्द्राक्षमध्ये किंचिन्न दापयेत् ।
मध्ये दत्वा जपं कुर्यान् काममोक्षौ विनाशयेत् ॥

—मेरुतन्त्रे

सूत्रभेदाः

ग्रथिता पट्टसूत्रेण देव्याः प्रीत्यै तु मालिका ।
कार्पासैर्वैष्णवी माला पद्मसूत्रैरथापि वा ॥
ऊर्णाभिर्वा वल्कलैर्वा शैवी कार्या ससूत्रजा ।
प्रायशः सर्वदेवानां सूत्रोत्पत्तिर्विधिं शृणु ॥
सूत्रं द्विजेन्द्रपुण्यस्त्रीनिर्मितं ग्रन्थिवर्जितम् ।
त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य ग्राह्यं प्रक्षाल्य यत्नतः ॥

—मेरुतन्त्रे

या जीवत्पुत्रका नारी सुन्दरी पतिवत्सला ।
तया कर्त्तितसूत्रेण व्यूढा माला सुभावहा ॥

—उमामहेश्वरे

कन्याकर्त्तितसूत्रेण दुर्वर्णस्वर्णजैरपि ।

—तन्त्रान्तरे

दुर्वर्ण–रजतम् ।

मालाग्रथनप्रकारस्तत्संस्कारः

अथातो ग्रथनं वक्ष्ये मालानां तन्त्रबोधितम् ।
एकभुक्तं विधायादौ साधको ग्रथयेत् स्वयम् ॥

स्वयं च माला ग्रथिता स्वघृष्टं
न धार्यते चन्दनमित्यनेन।
निषिध्यते चन्दनसन्निधानात्
स्रगत्र पुष्पस्य न चाक्षमाला ॥
कृतनित्यक्रियाशुद्धः उक्तेष्वृक्षेषु मन्त्रवित् ।
यथाकामं यथालाभादक्ष्याण्यानीय यत्नतः ॥
अन्योन्यसमरूपाणि नातिस्थूलकृशानि च ।
कीटादिभिरदुष्टानि न जीर्णानि नवानि वै ॥
गव्यैस्तु पञ्चभिस्तानि प्रक्षाल्य च पृथक्-पृथक् ।

—पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्

पञ्चगव्येषु विशेष-उक्तम्

दुग्धकाञ्चनवर्णायाः श्वेतायाश्चैव गोमयम् ।
गोमूत्रं ताम्रवर्णाया नीलायाश्च भवेद्दधि ॥
घृतं तु कृष्णवर्णाया एवं पञ्चामृतेऽपि च ।
गवां वर्णास्तु सुलभा सन्ति देशेषु कुत्रचित् ॥
तत्र वर्णविभागेन पञ्चगव्यानि चाहरेत् ।
वर्णालाभेन दोषोऽस्ति मात्राहीनं तु वर्जयेत् ॥
गोसकृद्द्विगुणं मूत्रं सर्पिर्दद्याच्चतुर्गुणम् ।
क्षीरमष्टगुणं प्रोक्तं पञ्चगव्यं तथा दधि ॥
गायत्र्याऽऽदाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् ।
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधि क्राव्णेति वै दधि ॥
तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम् ।
क्षालयेत् पञ्चगव्याद्यैः इति ॥

—मेरुतन्त्रे

अश्वत्थपत्रैर्नवकैः पद्माकारेण कल्पिते ।
सूत्रे मणीन् सगन्धाभिक्षालितौंस्तत्र निःक्षिपेत् ॥
तारं शक्तिं मातृकाश्च सूत्रे चैव मणिष्वथ ।
विन्यस्य पूजयेदाज्यैर्जुहुयाच्चैव शक्तितः ॥
मालामेकैकमादाय सूत्रे वै योजयेत् सुधीः ।
मुखं मुखे तु संयोज्य पुच्छं पुच्छे तु योजयेत् ॥
गोपुच्छसदृशी कार्या यद्वा सर्पाकृतिः शुभा ।
तत्सजातीयमेकाक्षं मेरुत्वेनाग्रतो न्यसेत् ॥

—पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्

एको मेरुस्तत्र देयः सर्वेभ्यः स्थौल्ययुक् च यः ।
आद्यं स्थूलं ततस्तस्मान्न्यूनं न्यूनतरं ततः ॥

सर्पाकारां प्रकुर्वीत ब्रह्मग्रन्थिमणिं प्रति ।
अथ वा ग्रन्थिरहितं दृढरश्मिसमन्वितम् ।
त्रिरावृत्त्याऽथ मध्येन चार्धावृत्त्याऽन्तदेशतः ।
ग्रन्थिः प्रदक्षिणावर्त्तः स ब्रह्मग्रन्थिरुच्यते ॥
अन्योन्यघर्षणादेव जपहानिर्भवेद्ध्रुवम् ।
मध्यतो ग्रन्थयः कार्या नात्र मुक्तादि विन्यसेत् ॥

—मेरुतन्त्रे

एकैकमणिमध्ये तु ब्रह्मग्रन्थिं प्रकल्पयेत् ।
जपमालां विधायेत्थं ततः संस्कारमाचरेत् ॥
क्षालयेत् पञ्चगव्येन सद्योजातेन सज्जलैः ।
ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः ॥
भवे भवे नाति भवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः ।
चन्दनागुरुगन्धाद्यैर्वामदेवेन घर्षयेत् ॥

ॐ वाम देवाय नमः ।
ॐ ज्येष्ठाय नमः ।
ॐ श्रेष्ठाय नमः ।
ॐ रुद्राय नमः ।
ॐ कालाय नमः ।
ॐ कलविकरणाय नमः ।
ॐ बलप्रमथनाय नमः ।
ॐ सर्वभूतदमनाय नमः ।
ॐ मनोत्मनाय नमः ।

धूपयेत् तामघोरेण—

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः सर्वतः सर्वसर्वेभ्यः ।

लेपयेत् तत्पुरुषेण तु।

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।
मन्त्रयेत् पञ्चमेनैव प्रत्येकं तु शतं शतम् ॥
ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्माशिषो मेऽस्तु सदा शिवोम्।
मेरुञ्च पञ्चमेनैव ततो मन्त्रेण मन्त्रयेत् ।
संस्कृत्यैवं बुधो मालां तत्प्राणौं स्थापयेत् ततः ॥

—पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्

सन्त्रयेन्मूलमन्त्रेण क्रमेणोत्क्रमयोगतः ।
तथैव मातृकावर्णैर्मन्त्रयेन्मन्त्रतत्त्ववित् ॥
पूजयित्वा यथान्यायमिष्टदेवमनुक्रमात् ।

न्यासपूर्वं जपेन्मन्त्रमष्टोत्तरसहस्रकम् ॥
जुहुयाच्च दशांशेन यस्य देवस्य यत् प्रियम् ।

—क्रियासंग्रहे

होमकर्म ततः कुर्याद्देवताभावसिद्धये ।
अष्टोत्तरशतं हुत्वा संपाताज्यं विनिःक्षिपेत् ॥
होमकर्मण्यशक्तश्चेद्द्विगुणं जपमाचरेत् ।
त्वं माले सर्वलोकानां सर्वसिद्धिप्रदा मता ॥
तेन सत्येन मे सिद्धिं देहि मातर्नमोऽस्तु ते ।
इत्युक्त्वा परिपूज्याथ गोपयेद्यत्नतो गृही ॥

—योगिनीतन्त्रे

माले माले महामाले सर्वतत्त्वस्वरूपिणी ।
चतुर्वर्गस्त्वपि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धदा भव ॥
मायाबीजादिकं कृत्वा रक्तपुष्पैः समर्चयेत्—इत्युक्तम् ।

—यामले

एवं कृत्वाऽक्षमालायां जपेन्मातृकया सुधीः ।
मातृकावर्णभेदेभ्यः सर्वे तन्त्राः प्रजज्ञिरे ।
अतः सकलमन्त्राणां जपः कार्योऽनया स्रजा ।
गुरुं संपूज्य तद्धस्ताद्गृह्णीयात् सर्वसिद्धये ॥
गायत्रीं तु जपन् कश्चिन्मालां ग्रथ्नाति तान्त्रिकः
न हीत्थं ग्रथनं क्वापि मन्त्रशास्त्रे निरूपितम् ॥
अशुचिर्न स्पृशेदेनां करभ्रष्टां न कारयेत् ।

—पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्

येन मन्त्रेण या माला कृता तं तु जपेत् तया ।
अन्यमन्त्रजपाच्छापो देवतायाः प्रजायते ॥
दृढसूत्रं नियुञ्जीत जपे त्रुट्यति नो यथा ।
जीर्णे सूत्रे पुनः सूत्रं ग्रन्थयित्वा शतं जपेत् ॥

—मेरुतन्त्रे

प्रमादात् पतिते हस्ताच्छतमष्टोत्तरं जपेत् ।
तावन्निषिद्धं संस्पर्शे क्षालयित्वा यथोदितम् ॥

—पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्

तर्जन्या न स्पृशेत् सूत्रं कम्पयेन्नैव धूपयेत् ।
न स्पृशेद्वामहस्तेन करभ्रष्टां न कारयेत् ॥

अक्षाणां चालनेऽङ्गुष्ठश्चान्यमक्षं न संस्पृशेत् ।
जपकाले सदा विद्वान्मेरुं चैव न लङ्घयेत् ॥
परिवर्त्तनकाले तु संघट्टं नैव कारयेत् ।
कलिः खटखटाशब्दे दोलमाने चलेन्मतिः ॥
चलिते चैव विद्वेषः स्फुटिते व्याधिसम्भवः ।
हस्तच्च्युते महाविघ्नः सूत्रच्छेदे विनाशकृत् ॥

—मेरुतन्त्रे

छिन्ने सूत्रे तु मालायाः पुनः संस्कारमाचरेत् ।
अष्टोत्तरसहस्रं तु जपेद्वाऽष्टोत्तरं शतम् ॥

—क्रियासंग्रहे

यदा संत्रुट्यते माला ग्रन्थयित्वा च पूर्ववत् ।
प्रतिष्ठतायां तस्यां तु मन्त्रं जप्यादनन्यधीः ॥

अन्यत्रापि—

त्रुटिता चेत् स्वयं माला प्रायश्चित्तं समाचरेत् ।
गजान्तकसहस्रं तु जपहोमं समाचरेत् ॥
पुनः संग्रथनं कृत्वा प्राणस्थापनपूर्वकम् ।
तदा माला सिद्धिदः स्यान्नान्यथा शाङ्करं वचः ॥
अग्निदग्धे जपेल्लक्षं नष्टे भग्ने द्विलक्षकम् ।
चौरनीते षद्सहस्रं पतिते तु शतं जपेत् ॥

—शैवागमे

अङ्गुष्ठस्थामक्षमालां चालयेन्मध्यमाग्रतः ।
तर्जन्या न स्पृशेत् सोऽयं मुक्तिदो गणनक्रमः ॥
भुक्तौ मुक्तौ तथा हृष्टौ मध्यमायां जपेत् सुधीः ।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु जपेदुत्तमकर्मणि ।
तर्जन्यङ्गुष्ठसंयोगाद्विद्वेषोच्चाटने जपः ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठसंयोगाज्जपेन्मारणकर्मणि ॥
अन्यकाले इमां मालां पूजयित्वा तु गोपयेत् ।
गुरुं प्रकाशयेद्विद्वान्न तु मन्त्रं कदाचन ॥
अक्षमालां च मुद्रां च गुरोरपि न दर्शयेत् ।
भूतराक्षसवेतालाः सिद्धगन्धर्वचारणाः ।
हरन्ति प्रकटं यस्मात् तस्माद्गुप्तं जपेत् सुधीः ।

—पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्

स्त्रीशूद्राणां मालासंस्कारः

शूद्रार्थं वा स्त्रियामर्थे मालासंस्कार उच्यते ।
गणेशसूर्यविष्णवीशदुर्गाः संपूज्य भक्तितः ॥
मालायामथ तां मालां ह्सौं बीजेनाभिमन्त्रिताम् ।
अष्टोत्तरशतं पञ्चगव्ये तां स्थापयेत् त्र्यहम् ॥
चतुर्थे तु समुद्धृत्य क्षालयेदस्त्रमन्त्रतः ।
हृन्मन्त्रेण ग्रन्थयित्वा स्थण्डिले तां निधापयेत् ॥
तस्मादुत्तोल्य तां मालां स्थापयेद्धेमपात्रके ।
पञ्चामृतेन संस्नाप्य शीतलेन जलेन च ॥
चन्दनेन सुगन्धेन कस्तूरीकुङ्कुमादिभिः ।
अभिषेकं ततः कुर्याद्ध्सौ मन्त्रेण साधकः ॥
नवग्रहान् पूजयित्वा दिक्पालाँश्वापि पूजयेत् ।

—मेरुतन्त्रे

अत्रापि मातृकावर्णैर्मूलमन्त्रेण च मालामभिमन्त्र्य तस्यां प्राणप्रतिष्ठापूर्वकमिष्टदेवतार्चनं पूर्ववत् कार्यमिति सम्प्रदायविदः ।

तथा—

तिलेन घृतयुक्तेन शक्तितो होमयेत् ततः ।
स्वर्णं तु दक्षिणां दद्याद्गुरवे मणिसंख्यकाम् ॥
तन्मन्त्रजापिनो विप्रान् भोजयेद्वाऽथ वैदिकान् ।
अभावे स्वर्णपात्रस्य ग्राह्यमश्वत्थपत्रकम् ॥
मालासंस्कार इत्युक्तो जपे स्यात् सिद्धिदायकः ।

वाममार्गिणां मालासंस्कारः

कीकशादिकमालानां कौलिकानां च वामिनाम् ।
सिद्ध्यै वक्ष्यामि संस्कारं सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ॥
शिल्पिनं पूजयेदादौ वस्त्रगन्धानुलेपनैः ।
संहृष्टः कलयेन्मालां मन्त्रपूतं पिबेन्मधु ॥
पञ्चाशन्मणिभिः कार्या ऋतुमत्या भगे क्षिपेत् ।
निशामेकां समुद्धृत्य कारणैः क्षालयेत् ततः ।
शुद्धोदैर्मूलमन्त्रेणाभिषिञ्चेद्विजयारसैः ।
प्रक्षाल्य धूपयेत् पश्चात् प्रोतयेदिष्टसूत्रकैः ॥
सूत्रं स्वेष्टजपे नीलं कृष्णं मारणकर्मणि ।
मोहने हरितं स्तम्भे धूमाभं द्विषि-तालमम् ॥
शान्तौ पुष्टौ सितं द्वेषे रक्तमुच्चाटने भवेत् ।
वश्ये पीतं कषायं तु विक्षेपकरणे मतम् ॥

चक्रपूजां ततः कुर्यात् साष्टोत्तरसहस्रकम् ।
हुनेन्मद्यपलाभ्यां च मूलमन्त्रेण साधकः ॥
ततो बलिं यथान्यायं महिषादैः प्रदापयेत् ।
शक्तीश्च साधकाश्चौंपि भोजयेन्मणिसंख्यकान् ॥
एवं संसाधिता माला पशवे न प्रदापयेत् ।

करमाला

तर्जनी मध्यमाऽनामा कनिष्ठा चेति ताः क्रमात् ।
तिस्रोऽङ्गुल्यस्त्रिपर्वाणो मध्यमा चैकपर्विका ॥
पर्वद्वयं मध्यमाया मेरुत्वेनोपकल्पयेत् ।

—बालातन्त्रे

अनामामध्यमारभ्य कनिष्ठानुक्रमेण च ।
तर्जनीमूलपर्यन्ता करमाला प्रकीर्त्तिता ॥

—तन्त्रान्तरे

अनामामध्यमारभ्य कनिष्ठादित एव च ।
तर्जनीमूलपर्यन्तं जपेद्दशसु पर्वसु ॥
अनामामूलमारभ्य कनिष्ठादित एव च ।

तर्जनीमध्यपर्यन्तमष्टपर्वसु सञ्जपेत् ॥

—सनत्कुमारः

अयमुत्तरः श्लोकश्चाष्टोत्तरशतसंख्यजपे कर्त्तव्ये शतजपोत्तरमष्टजपपरः। इदं च वैष्णवविषयम् । शक्तिविषये तु ।

आरभ्यानामिकामूलात् प्रादक्षिण्यक्रमेण तु ।
मध्यमामूलपर्यन्तं जपेदष्टसु पर्वसु ॥
अनामामध्यगं पर्व मेरुं कृत्वा न लङ्घयेत् ।
तर्जन्यग्रे तथा मध्ये यो जपेत् तत्र मानवः ॥
चत्वारि तस्य नश्यन्ते आयुर्विद्या यशो धनम् ।

इति (सिद्धान्तसारे) प्रोक्तम्

तत्रैव—

अनामामूलमारभ्य प्रादक्षिण्य-क्रमेण तु ।
तर्जनीमूलपर्यन्तं जपेन्नवसु पर्वसु ॥

इदं च द्वादशावृत्त्याऽष्टोत्तरशतसंख्य-जपपरम् ।

श्रीविद्यायां तु (यामले) ।

अनामामध्यमायाश्च मूलाग्रं तु द्वयं द्वयम् ।
कनिष्ठायाश्च तर्जन्यास्त्रयं पर्व महेश्वरि ॥
अनामामध्यमायाश्च मेरुः स्याद् द्वितयं शुभम् ।
प्रदक्षिणक्रमाद्देवि जपेत् त्रिपुरसुन्दरीम्-इति विशेष-उक्तः ॥

अङ्गुलीर्न वियुञ्जीत जपकाले कदाचन ।
अङ्गुलीनां वियोगेन च्छिद्रेषु स्रवते जपः ॥
नोल्लङ्घयेच्च गणनां किञ्चित् सङ्कोचयेत् तलम् ।
न दर्शयेत् करं नो चेत् फलं गृह्णन्ति राक्षसाः ॥
—मेरुतन्त्रे

अङ्गुल्यग्रेषु यज्जप्तं यज्जप्तं मेरुलङ्घने ।
पर्वसन्धिषु यज्जप्तं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥
गणनाविधिमुल्लङ्घ्य यो जपेत् तु प्रमादतः ।
गृह्णन्ति राक्षसा यस्मान्नियतं गणयेद्बुधः ॥
—पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्

नाक्षतैर्हस्तपर्वैर्वा न धान्यैर्नैव पुष्पकैः ।
च चन्दनैर्मृत्तिकया जपसंख्यां न कारयेत् ॥
लाक्षाकुसितसिन्दूरं गोमयं च करीषकरम् ।
विलोड्य गुडिकां कृत्वा जपसंख्यां तु कारयेत् ॥
—रुद्रयामले

तत्राङ्गुलिजपं कुर्वन् साङ्गुष्ठाङ्गुलिभिजपेत् ।
अङ्गुष्ठेन विना कर्म कृतं तन्निष्फलं भवेत् ॥
—मन्त्रतन्त्रप्रकाशे

नित्यं जपं करे कुर्यान्न तु काम्यं कदाचन ।
काम्यमपि करे कुर्याद्यदि माला न विद्यते ॥
—मुण्डमालायाम्

माला-संस्कार

वैसे तो नित्य-जप को करमाला पर करने का शास्त्र-वचन है, किंतु काम्य-जप, अनुष्ठान-जप और निर्धारित नित्य-जप के लिए भी रुद्राक्षमाला पर जप का सर्वथा निर्देश है। करमाला की प्रतिष्ठा है और इसे शक्तिमाला भी कहते हैं। रुद्राक्षमाला अक्षर-विन्यस्त अक्षमाला है। बिना गणना के जो साधक जप करता है, उसके जप को बीच ही में राक्षस ग्रहण कर लेते हैं और वह कभी इष्ट देवता तक नहीं पहुँचता। इसलिए अक्षमाला पर जप का विधान है।

जप-माला पर किए गए जप की माला-संख्या की गणना अक्षत, पुष्प, चन्दन, मृत्तिका, धान्य अथवा हाथ के पोर से नहीं करनी चाहिए। सामान्य जप-संख्या या अक्षमाला जप-संख्या की गणना का एक शास्त्रोक्त विधान है। रक्त-चंदन, सिंदूर, लाख और शुद्ध गोबर को मिलाकर गोलियाँ बना लेनी चाहिए और उन्हें सुखाकर किसी पवित्र पात्र में रख लेना चाहिए। जप के समय इन्हीं गोलियों या गुटिकाओं से गणना करनी चाहिए।

रुद्राक्षमाला के अक्ष-बीजों की संख्या भिन्न-भिन्न होती है। एक सौ नौ, चौवन, बत्तीस, तीस, सत्ताईस, पच्चीस, चौदह दानों की या अन्य-संख्यक बीजाक्षों की मालाएँ हो सकती हैं। इसका निर्णय इस ग्रंथ के दूसरे प्रकरण में द्रष्टव्य है।

माला में ग्रथित होने के पूर्व रुद्राक्षों को पंचगव्य और गंगाजल से धो लेना चाहिए। फिर एक-एक बीजाक्ष को लेकर किसी भी अभीष्ट मंत्रांत में 'फट्' लगाकर माला में गूँथना चाहिए। माला की डोरी स्वर्ण की हो तो सर्वोत्तम माना जाता है। स्वर्ण के अभाव में रेशम की डोरी या शुद्ध कपास की डोरी से भी गूँथा जा सकता है। यह डोरी त्रिगुणीकृत होनी चाहिए। इसका रंग काला या लाल हो सकता है। काला रंग इहलौकिक समृद्धि-सिद्धियों के साथ मोक्ष-दायक भी है, जबकि रक्त वर्ण इहलौकिक सुख-समृद्धियों का विधायक माना गया है।

एक माला के अंतर्गत ग्रथित होनेवाले अक्ष-बीज समान आकृतिवाले, स्वस्थ, पुष्ट, कंटकित, अखंडित और सम होने चाहिए। इन्हें मुख से मुख और पुच्छ से पुच्छ मिलाकर (मुखात् मुखं पुच्छात् पुच्छम्) अनुग्रथित करना चाहिए। प्रत्येक बीजाक्ष को ग्रथित करने के बाद दूसरे रुद्राक्ष ग्रहण करने के पूर्व 'ॐ' का उच्चारण करना चाहिए और उस ग्रंथि में ॐ की प्रतिष्ठा की भावना करनी चाहिए। ग्रंथि ढाई फेरे देकर सुपुष्ट ब्रह्म-ग्रंथि अथवा नाग-पाश-ग्रंथि लगानी चाहिए। बिना ग्रंथि की माला जप की दृष्टि से अशुद्ध हो जाती है। दो रुद्राक्ष-बीजों को आपस में स्पर्श नहीं करना चाहिए। मध्यवर्ती ग्रंथि से दोनों अक्ष-बीज पृथक् हो जाते हैं। इसमें एक अपवाद भी है। तंत्र-वचन के अनुसार वनवासिनी (महिष-मर्दिनी), षड्विध तारा, त्वरिता, कालिका, तोतला, वाराही और चंडिका का मंत्र बिना गाँठ की माला पर ही जपना चाहिए।

इस प्रकार माला तैयार होने पर शुभ दिन, शुभ तिथि, शुभ लग्न, शुभ नक्षत्र में माला का संस्कार करना चाहिए। यह संस्कार साधक स्वयं कर सकता है अथवा गुरु भी कर सकता है। इसे योग्य पुरोहित से भी करा सकते हैं।

माला-संस्कार आरंभ करने के पूर्व साधक को नित्य-कर्म से निवृत्त होकर शुद्ध शरीर और पवित्र मन से पूजा-स्थल पर जाना चाहिए और पूर्वतः प्रबंधित पूजोपकरणों का विधान आरंभ करना चाहिए। इस क्रम में सबसे पहले सामान्यार्घ्य की स्थापना कर लेनी चाहिए। फिर 'ह्रौं' मंत्र से पंचगव्य (गोमय, गोमूत्र, गोदुग्ध, गोदधि, तथा गोघृत) में माला को छोड़ देना चाहिए। साधक को हाथ में स्वर्ण-मुद्रिका और कुश (दोनो में किसी एक से भी काम चल सकता है) धारणकर ही संपूर्ण संस्कार-कर्म करना चाहिए। पंचगव्य से स्नान कराने के पश्चात् जल (गंगाजल हो तो उत्तम) से प्रक्षालन

करना चाहिए। इसके पश्चात् पूर्वतः निर्मित, व्यवस्थित और प्राणप्रतिष्ठित पूजित सर्वतोभद्र-मंडल पर पीपल के नौ पत्तों की कमलाकार-संरचना पर इस माला को प्रतिष्ठित कर देना चाहिए। फिर माला पर मातृकाक्षरों का न्यास करना चाहिए। मातृकाक्षर मंत्र है,—

"अँ आँ इँ ईँ उँ ऊँ ऋँ ॠँ लृँ लॄँ एँ ऐँओँ औँ अँ अँः कँ खँ गँ घँ ङँ चँ छँ
जँ झँ ञँ टँ ठँ डँ ढँ णँ तँ थँ दँ धँ नँ पँ फँ बँ भँ मँ यँ रँ लँ वँ शँ षँ सँ हँ क्षँ"

माला पर इस मंत्र-न्यास के पश्चात् मूल-मंत्र (अभीष्ट मंत्र) का भी न्यास करना चाहिए। फिर 'हौं' मंत्र से पुनः गंगाजल से माला का प्रोक्षण करना चाहिए। फिर शीतल गंगाजल से इस माला को स्नान कराने का विधान है। स्नान-मंत्र है,—

"ॐ सद्योजात प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः ।
भवे भवे नातिभवे भवस्व मा भवोद्भवाय नमः ॥"

फिर चंदन, अगुरु, कर्पूर आदि सुगंधित द्रव्यों से माला को अनुलिप्त-घर्षित करना चाहिए।

चंदनादि-अनुलेपन-मंत्र,—

"ॐ वाम-देवाय नमः
जेष्ठाय नमः
श्रेष्ठाय नमः
रुद्राय नमः
कालाय नमः
कल-विकरणाय नमः
बल-विकरणाय नमः
बलाय नमः
बलप्रमथनाय नमः
सर्वभूतदमनाय नमः
मनोन्मनाय नमः"

इसके पश्चात् माला को निम्नलिखित मंत्र से घूप दिखाना चाहिए।

घूपन-मन्त्र,—

"अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोर-घोरतरेभ्यः ।
सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥"

उपर्युक्त अघोर-मंत्र से माला को अभिमंत्रित करना चाहिए। इसके शतवार पाठ का विधान है। फिर तत्पुरुष सूक्त से माला में चंदनानुलेपन करना चाहिए। चंदनानुलेपन-तत्पुरुष-मंत्र,—

"ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।"

इसके बाद ईश-सूक्त से रुद्राक्षमाला के प्रत्यक मणि को अभिमंत्रित करना चाहिए।

"ॐ ईशानः सर्व-विद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम् ।
ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम् ॥"

फिर नौ पीपल-पत्र पर स्थित इस पूज्यमान् अक्षमाला में चतुर्विध प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

प्रथम

अक्षमाला के प्रत्येक बीजाक्ष पर लोम-विलोम क्रम से पचास मातृकाक्षरों और फिर अष्टवर्ग के मातृकाक्षरों का विन्यास कर सुमेरु पर क्षँ का विन्यास करना चाहिए। प्रत्येक मातृकाक्षर का चंद्रबिंदुयुक्त उच्चारण करना चाहिए।

द्वितीय

रुद्राक्षमाला के एक सौ नौ दानों का अलग-अलग षोडशोपचारपूजन करना चाहिए। दो मणियों के बीच की ग्रंथि पर 'ॐ' का विन्यासकर उनका भी सर्वत्र षोडशोपचारपूजन करना चाहिए। प्रत्येक रुद्राक्ष-बीज के तीन भाग होते हैं—मुख, मध्य और मूलाग्र; जिनमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश का निवास होता है। एक ही अक्षबीज के इन तीनों भागों पर अलग-अलग षोडशोपचार-पूजन करना चाहिए। फिर रुद्राक्ष के कंटकों पर आवाहित और प्रतिष्ठित सभी देवी-देवताओं का एकत्र पूजन होगा। इस तरह एक अक्षमाला (एक सौ नौ मणियों वाली) पर ८,७२० बार पूजन होगा। इसका पृथक् स्वरूप इस प्रकार है,—रुद्राक्ष-बीज पूजन—४ × १६ × १०९ = ६,९७६ + ग्रंथि-पूजन १६ × १०९ = १,७४४। ६,९७६ + १,७४४ = ८,७२०।

फिर शास्त्रोक्त विधि से माला में माला-रूपी देवी की प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

तृतीय

प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र

ॐ आं ह्रीं क्रों य रं ल व शं ष सं हौं हं सः अस्या मालायाः प्राणाः इह प्राणाः। ॐ आं ह्रीं क्रों य रं ल व शं ष सं हौं हं सः अस्या मालायाः जीव इह स्थितः। ॐ आं ह्रीं क्रों य रं ल व शं ष सं हौं हं सः अस्या मालायाः सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनश्चक्षु श्रोत्रघ्राणपदानि इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।

चतुर्थ

अंत में माला पर अपने अभीष्ट देव या देवी का आवाहन, प्राण-प्रतिष्ठा एवं पूजन करना चाहिए। शिव या शिवा, गणेश या बटुक-भैरव, सूर्य या अन्य देव या देवी का आवाहन हो सकता है। फिर उनके लिए दीक्षित-मंत्र या प्रयोग-मंत्र या प्रिय-मंत्र का भी माला पर विन्यास करना चाहिए। इस पुस्तक के इतर खंड में जो प्रयोग-प्रकरण हैं, उनमें हमने कुछ चुने हुए सर्व-सिद्धिदायक एवं सर्वफलप्रद मंत्रों का प्रयोग दिया है। वे मंत्र हैं,—

१. शिव-मंत्र
"ॐ नमः शिवाय ।"

२. महामृत्युंजय-मंत्र
"ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भूवः स्वः
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्
भूर्भुवः स्वरों जूं सः हौं ॐ ॥"

३. गायत्री-मंत्र
"ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।"

४. उच्छिष्टगणेश नवार्ण-मंत्र
"हस्तिपिशाचिलिखे स्वाहा।"

५. वटुक-भैरव-मंत्र
"ॐ ह्रीं वटुकाय आपदुद्धारणाय कुरु कुरु वटुकाय ह्रीं।"

६. देवी नवार्ण-मंत्र
"ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे।"

७. प्रणव-मंत्र
"ॐ" इत्यादि।

फिर माला की प्रार्थना करनी चाहिए ।

"ऐं ह्रीं अक्षमालिकायै नमः ।"
ॐ माले माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥
ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे ।
जपकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये ॥

ॐ अक्षमालाधिपतये सुसिद्धिं देहि देहि सर्वमन्त्रार्थसाधिनि साधय
साधय सर्वसिद्धिं परिकल्पय परिकल्पय मे स्वाहा।

फिर माला को गोमुखी में रखकर मध्यमा, अनानिका और अंगुष्ठा अँगुलियों के सहयोग से अपनी ओर मणिकाओं को घुमाते हुए जप करना चाहिए। अपने शरीर में काम-कला, मस्तक पर गुरु-आवाहन और मस्तिष्क में गुरु-ध्यान करते हुए हृदय में अभीष्ट देव या देवी का भावन और जिहुवा पर मंत्र का दीपन करते हुए उस प्रभा-पटल पर जिहुवा को दीपक के रूप में विभावन करते हुए, एकाग्र-चित्त से, पवित्रतापूर्वक, मंत्र के अर्थ का स्मरण करते हुए प्रातःकाल (अथवा निर्दिष्ट-निर्धारित काल) में जप करना चाहिए।

जप के अंत में माला की पुनः प्रार्थना करनी चाहिए। जपांत माला-प्रार्थना-मंत्र,—

"ॐ त्वं माले सर्वभूतानां सर्वलोक-प्रिया मता।
शिवं कुरुष्व में भद्रे यशो वीर्च्यं च सर्वदा ॥"

अथवा—

"ॐ त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदा शुभदा भव ।
शिवं कुरुष्व में भद्रे यशो वीर्च्यं च देहि मे ॥"

फिर माला को मस्तक पर या गले में धारण करके निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण करना चाहिए,—

"ह्रीं सिद्धचै नमः ।"

फिर प्राणायाम-न्यासादि का विहित विधान संपन्नकर हाथ में पुष्प, चंदन, अक्षत, शंखोदक (दक्षिणावर्त शंख में पहले से रखे हुए गंगाजल) लेकर निम्नलिखित मंत्र का पाठ करना चाहिए,—

"ॐ गुहुयातिगुहुयगोप्त्रीं त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ॥"
(यदि अभीष्ट देवी हों ।)

अथवा—

"ॐ गुहुयातिगुहुयगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥"
(यदि अभीष्ट देव हों ।)

फिर निम्नलिखित मंत्र का पाठ करके दाहिने हाथ के पुष्पाक्षतादि को देव या देवी के वाम-कर में समर्पण कर देना चाहिए।

समर्पण मंत्र—

"ॐ इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुर्यावस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वम् अमुकदेव्यै (अमुक देवाय) समर्पयामि ब्रह्मार्पणं भवतु।"

फिर माला को सर अथवा गले से उतारकर गोमुखी में रखते समय निम्नलिखित मंत्र का पाठ करना चाहिए,—

"ॐ त्वं माले सर्वदेवानां सर्वसिद्धिप्रदा मता।
तेन सत्येन मे सिद्धिं देहि मातर्नमोऽस्तु ते ।।"

इस माला को पवित्र स्थान में रखना चाहिए। अशुचि-अवस्था में इसका स्पर्श वर्जित है। इसे किसी को देने की बात तो अलग किसी को दिखाना तक नहीं चाहिए। यहाँ तक कि अपने गुरु को भी नहीं दिखाना चाहिए। इसे परम गोपनीय रूप में रखना चाहिए (स्वयोनिवत् गुप्तां कुर्यात्) ।

फिर देव या देवी के लिए आठ बार पुष्पांजलि-प्रदान करना चाहिए।

इसके पश्चात् बलि-प्रदान करने का विधान है। बलि-प्रदान-मंत्र के पूर्व धेनु-मुद्रा, अवगुंठन-मुद्रा, योनि-मुद्रा और पुनः धेनु-मुद्रा बनाकर अंत में तत्त्व-मुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिए।

बलि-प्रदान-मंत्र,—

"ॐ क्रीं श्रीं अमुकदेव्यै (अमुकदेवाय) स्वाहा एष बलिर्नमः ।"
(दिन का बलि-प्रदान)

तथा—

"ॐ पद्मे पद्मे महापद्मे पद्मावति महायक्षाधिपते मयोपनीतमिमं बलिं गृहण गृहण गृहणापय गृहणापय मम सर्वशान्तिं कुरु कुरु पराविद्यां चाकृष्याकृष्य छिन्धि ह्रीं हूं स्वाहा ।"

फिर विधान-पूर्वक हवन करना चाहिए। जप के दशांश हवन, हवन के दशांश तर्पण, तर्पण के दशांश मार्जन और मार्जन के दशांश ब्राह्मण-भोजन का विधान है। यह पूर्ण 'पुरश्चरण' कहलाता है।

पूजारंभ के पूर्व भूत-शुद्धि, शिखा-सूत्र-बंधन, चंदन-भस्म-लेपादि जो विहित विधान हैं, उन्हें अवश्य कर लेना चाहिए। लोक-प्रचलित और सर्वज्ञात होने के कारण इसका यहाँ उल्लेख नहीं किया गया है। इस प्रकार माला-संस्कार का विधान पूर्ण होता है। यह विधान सर्वांगीण कहा जा सकता है। नाना शास्त्र-पुराणों और तंत्र-वाङ्मय से इसका संग्रह-संचयन किया गया है और साथ ही परीक्षित प्रक्रिया को अपनाया गया है। जो साधक अथवा जापक ज्ञान-साध्य, समय-साध्य और द्रव्य-साध्य माला-संस्कार के इस विधान को संपन्न करने में असमर्थ हों, वे इसका संक्षिप्त रूप भी ग्रहण कर सकते हैं। हजारों बार पूजन के स्थान पर वे सम्मिलित रूप से एक बार भी पूजन कर सकते हैं। पूजा-विधान और जप-कर्म में भाव की प्रधानता मानी गई है,—'भावमिच्छन्ति देवताः।'

कलियुग में जप से बड़ा कोई यज्ञ नहीं। कृष्ण कहते हैं— 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि।' और भी कहा गया है— 'कलौ जपात् सिद्धिः जपात् सिद्धिः जपात् सिद्धिः।' इसलिए मनुष्य को नित्य जप की दिनचर्या भी रखनी चाहिए।

किसी एक मंत्र को चुनकर, उसमें दीक्षित होकर, उसके विधि-विधान जानकर, मंत्रार्थ समझकर, उसका उचित एवं शुद्ध उच्चारण जानकर, जपसंख्या निर्धारित कर, जपकाल नियतकर आजीवन जपना चाहिए। जपकर्ता (जापक) के लिए वह मंत्र सर्वेष्ट-साधक, इहलोक एवं परलोक के लिए उद्धारक एवं उन्नायक सिद्ध होता है। यह शुद्ध और सिद्ध-मंत्र जापक के लिए यान बन जाता है। इस मंत्र के माध्यम से प्रत्येक अभीप्सा की पूर्ति की जा सकती है। मंत्र, मंत्रार्थ, मंत्रगुरु और मंत्र-देवता में एकीभाव कर लेना चाहिए। फिर तो मंत्र उच्चार्य, बोध्य और श्रव्य-मात्र नहीं रहकर दृश्य बन जाता है। प्रत्येक मंत्र किसी-न-किसी देवता से उपदिष्ट और ऋषि, तपस्वी या साधक से स्वसाक्षात्कृत एवं दृष्ट होता है। कहा गया है,—'ऋषयः मन्त्र द्रष्टारः।' जपकर्ता भी एक दिन उस मंत्र का द्रष्टा बन जाता है। उस द्रष्टा के लिए कुछ असंभव नहीं रह जाता।

मालायाः संस्काराः

तत्रादौ कुशोदकसहितैः पञ्चगव्यैर्मालां प्रक्षाल्य अश्वत्थ-पत्रनवकरचिते कमले स्थापयित्वा,—

"ॐ ह्रीं अँ आँ इँ ईँ उँ ऊँ ऋँ ॠँ लृँ लॄँ एँ ऐँ ओँ औँ अँ अँः कँ खँ गँ
घँ ङँ चँ छँ जँ झँ ञँ टँ ठँ डँ ढँ णँ तँ थँ दँ धँ नँ पँ फँ बँ भँ मँ यँ रँ लँ
वँ शँ षँ सँ हँ क्षँ"

इत्येतानि मातृकाक्षराणि मूलमन्त्रं च मालायां विन्यस्य पुनः पञ्चगव्येन प्रोक्ष्य,—

"ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः
भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः"[1]
(इतिमन्त्रेण शीतजलेन प्रक्षालयेत् ।)

पुनः–

"वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः
श्रेष्ठाय नमः रुद्राय नमः
कालाय नमः कलविकरणाय नमो
बल-विकरणाय नमः ।"
(इति मन्त्रेण चन्दनागुरुकर्पूरादिसुगन्धद्रव्यैर्घर्षयेत् ।)
"अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः
सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ।"
(इति मन्त्रेण तां धूपयेत् ।)
"ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।"
(इति मन्त्रेण मालायां चन्दनं लेपयेत्।)
"ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम्
ब्रह्माधिपतिब्रह्मणोपतिब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम् ।"
(इति मन्त्रेण मेरुसहितं प्रत्येकमणिं सकृत्सकृदभिमन्त्रयेत्।)

ततः
अस्या मालायाः
इति शब्दं संयोज्य पूर्ववत् प्राणप्ततिष्ठामन्त्रप्रयोगेण मालायाः प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा ध्यायेत्,–

"ॐ ह्रीं माले माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणी
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव।"

इति माला संप्रार्थ्य,–

"ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वं सर्वकार्येषु सर्वदा ।"

इति मन्त्रेण दक्षिणहस्ते मालामादाय हृदये धारयन् स्वेष्टदेवतां ध्यात्वा.

---

[1] "अप्रतिष्ठितमालाभिर्भवं जपति यो नरः।
सर्वं तद्विफलं विद्यात् क्रुद्धा भवति देवता।"

मध्यमाङ्गुलिमध्यपर्वणि संस्थाप्य ज्येष्ठाग्रेण भ्रामयित्वा एकाग्रचित्तो मन्त्रार्थं स्मरन् प्रातःकालमारभ्य मध्यंदिनं यावत् यथाशक्ति मूलमन्त्रं जपेत्। नित्यमेव समानो जपः कार्यो न तु न्यूनाधिकः। ततो जपान्ते,—

"ॐ त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदा शुभदा मम ।
शुभं कुरुष्व मे भद्रे यशो वीर्यं च सर्वदा ॥
तेन सत्येन सिद्धिं मे देहि मातर्नमोऽस्तु ते ।
ॐ ह्रीं सिद्धये नम ।"

इति मालां शिरसि निधाय गोमुखीरहस्ये स्थापयेत् नाशुचिः स्पर्शयेत् नान्यं दद्यात् अशुचिस्थाने न निधापयेत् स्वयोनिवत् गुप्तं कुर्य्यात्। तथा च अर्घोदकेन चुलुकमादाय,—

"ॐ गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थितिः ॥"

ॐ इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्म्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुर्यावस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेणशिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तंयं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा।
मां मदीयं च सकलममुक-देवाय समर्पयामि नमः ।

ॐ तत्सदीति ब्रह्मार्पणं भवतु। इति देवदक्षिणकरे जल-समर्पणं कृत्वा कृताञ्जलिपूर्वकं क्षमापनं पठेत् ।

अथ क्षमापनम्,—

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।
पूजाभागं न जानामि त्वं गतिः परमेश्वरः ॥१॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर ।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥२॥
यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर ॥३॥
कर्मणा मनसा वाचा त्वत्तो नान्या गतिर्मम।
अन्तश्चरसि भूतानामिष्टस्त्वं परमेश्वर ॥४॥
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम ।
तस्मात्कारुण्यभावेन क्षमस्व परमेश्वर ॥५॥

मातृयोनिसहस्रेषु सहस्रेषु व्रजाम्यहम् ।
तेषु तेष्वचला भक्तिरच्युतेऽस्तु सदा त्वयि ॥६॥
गतं पापं गतं दुःखं गतं दारिद्र्यमेव च ।
आगता सुखसम्पत्तिः पुण्याच्च तव दर्शनात् ॥७॥
देवो दाता च भोक्ता च देवरूपमिदं जगत् ।
देवं जपति सर्वत्र यो देवः सोऽहमेव हि ॥८॥
क्षमस्व देव देवेश क्षम्यतां भुवनेश्वर ।
तव पादाम्बुजे नित्यं निश्चला भक्तिरस्तु मे ॥९॥

इति कृताञ्जलिः प्रार्थयित्वा शङ्खमुद्धृत्य,—

"देवोपरि भ्रामयित्वा साधु वासाधु वाकर्म्म यद्यदाचरितं मया ।
तत्सर्वं कृपया देव गृहाणाराधनं मम ॥१॥"

इत्युच्चरन् देवस्य दक्षिणहस्ते किञ्चिज्जलं दत्त्वा प्राग्वदर्घ्यं देवशिरसि दत्त्वा शङ्खं यथास्थानं निवेश्य ततो गतसारनैवेद्यं देवस्योच्छिष्टं किञ्चिदुद्धृत्य तत्तदुच्छिष्टभोजिने विनिवेदयेत् । तद्यथा,—

विष्णोरुच्छिष्टं विष्वक्सेनाय १, शिवस्योच्छिष्टं चण्डेश्वराय २, सूर्यस्योच्छिष्टं चण्डांशवे ३, गणेशोच्छिष्टं वक्रतुण्डाय ४, शक्तेरुच्छिष्टमुच्छिष्टं चाण्डाल्यै इत्युच्छिष्टाधिकारिणे ऐशान्यां दिशि दद्यात्। तच्छेषनैवेद्यं शिरसि धृत्वा नैवेद्या दिकं देवभक्तेषु विभज्य स्वयं भुक्त्वा विसर्जनं कुर्य्यात्। तथा च,—

"गच्छ गच्छ परस्थाने स्वस्थाने परमेश्वर ।
पूजाराधनकाले च पुनरागमनाय च ॥"

इत्यक्षतान्निक्षिप्य विसर्ज्जनं कृत्वा देवं स्वहृदये स्थापयेत् । तथा च,—

तिष्ठ तिष्ठ परस्थाने स्वस्थाने परमेश्वर ।
यत्र ब्रह्मादयो देवा सर्वे तिष्ठन्ति मे हृदि ॥१॥

इति हृदयकमले हस्तं दत्वा देवं संस्थाप्य मानसोपचारैः सम्पूज्य स्वात्मानं देवरूपं भावयन् यथासुखं विरहेत् ।

एवमेव विधिना जपं समाप्य जपान्ते तत्तद्दशांशतो नित्यहोमं वा कुर्य्यात् ॥[1]

---

[1] मन्त्रमहार्णवः।

रुद्राक्ष-धारण-विधि
(अनुभूत तांत्रिक विधि : साधकोक्त)

रुद्राक्ष-धारण की एक ऐसी भी विधि है, जिसकी परंपरा शास्त्रों में नहीं मिलती, वरन्, साधकों के प्रयोगाश्रम में उपलब्ध होती है। शास्त्र और साधक में साधकों को ज्यादा महत्त्व दिया गया है। इस परिच्छेद में एक ऐसी ही दुर्लभ रुद्राक्ष-धारण-विधि का उल्लेख किया जा रहा है, जो हृषीकेश के साधक-सन्त के द्वारा अनुभूत और निर्दिष्ट है। उनका यह भी आदेश है कि इस विद्या-विधि का योग्य साधकों के मध्य गुरुमुख-प्रचार ही उचित है, किंतु मैं व्यक्तिगत रूप से यह मानता हूँ कि गुरु-शिष्य-परंपरा के नहीं रहने पर और दीक्षा-क्रम, क्रम-दीक्षा, शक्ति-पात, शाक्ताभिषेक, पूर्णाभिषेक, इत्यादि परंपरा के विलुप्त या क्षीण होने के कारण ग्रंथ ही गुरु रह गया है। इसलिए जो भी व्यक्ति निष्ठा, आस्था और नियम के साथ इन विधि-विधानों का पालन करेगा, उसे निश्चय ही अनुकूल परिणाम प्राप्त होंगे। इस शास्त्रेतर संत-कथन की अनुभूत-विधि का प्राप्त प्रयोग इस प्रकार है।

रुद्राक्ष को पुष्य-नक्षत्र के दिन धारण करना चाहिए। पुष्य-नक्षत्र सर्वोत्तम नक्षत्र माना जाता है, जिसके अधिपति शनि हैं। इस नक्षत्र में बृहस्पति उच्च के होते हैं। अतः पुष्य-नक्षत्र-काल के पंचांग-निर्धारित सर्वोत्तम मुहूर्त्त में रुद्राक्ष को धारण करना चाहिए। उस दिन यदि बृहस्पतिवार पड़े तो वह सर्वोत्तम तिथि है। प्रत्येक महीने में एक बार पुष्य-नक्षत्र आता है; किंतु बृहस्पतिवार-सहित पुष्य-नक्षत्र वर्ष में एक या दो बार पड़ता है। अतः रुद्राक्ष-धारण के लिए वर्ष में एक या दो बार घटित बृहस्पतिवार-सहित पुष्य-नक्षत्र सर्वोत्तम हैं।

रुद्राक्ष-धारण-तिथि से बीस दिन पूर्व अभिषेक-प्रविधि का आरंभ होता है। प्रथम तेरह दिन रुद्राक्ष (एक बीजाक्ष या संपूर्ण माला, अनेक बीजाक्ष या कई मालाओं) को किसी पवित्र पात्र (लौहेतर) के भीतर गोमूत्र में रखना चाहिए। गोमूत्र (एक ही गाय से) भी प्रतिदिन ताजा गोमूत्र से बदल देना चाहिए। ताजा गोमूत्र डालने के पूर्व रुद्राक्ष की सफाई करनी चाहिए।

तेरहवें दिन संध्या-समय रुद्राक्ष को गोमूत्र से निकालकर साफ कर लेना चाहिए और गंगाजल से अभिषेक कर किसी ताम्रपात्र पर या अन्य पवित्र पात्र पर रख देना चाहिए। उस रात रुद्राक्ष वैसे ही रहना चाहिए।

चौदहवें दिन रुद्राक्ष को गो-दुग्ध में डाल देना चाहिए। कच्चा गोदुग्ध का ही विधान है। प्रतिदिन प्रातःकाल गोदुग्ध को बदल देना चाहिए। इस प्रकार सात दिनों तक गोदुग्ध में अधिवास के बाद रुद्राक्ष को सामान्य जल और फिर गंगाजल से अभिषिक्त कर लेना चाहिए। अंतिम दिन दूध से निकालने और गंगाजल से अभिषेक कराने के बीच रुद्राक्ष को सामान्य जल से धोते समय कोमल ब्रश का भी प्रयोग किया जा सकता है। गोदुग्ध-स्नान के सातवें अथवा गोमूत्र-स्नान के आरंभ से बीसवें दिन उसे

गंगाजलाभिषिक्त कराकर पुनः ताम्रपात्र या किसी सत्पात्र पर रख देना चाहिए। यह कार्य संध्या समय करना चाहिए, ताकि उस दिन दिनभर रुद्राक्ष का गोदुग्ध-निवास हो सके। फिर रातभर रुद्राक्ष को गंगाजल से अभिषिक्त कराकर छोड़ देना चाहिए।

फिर दूसरे दिन, अर्थात् गोमूत्र-स्नान के आरंभ के इक्कीसवें दिन; सूर्योदय के बाद पुष्य-नक्षत्र के शुभ मुहूर्त्त में (बृहस्पतिवार का दिन हो तो अत्युत्तम) रुद्राक्ष का पूजन आरंभ करना चाहिए।

सामान्य पूजन की दृष्टि से पहले पंचगव्य (गोमय, गोमूत्र, गोदुग्ध, गोदधि और गोघृत) में रुद्राक्ष को डुबोकर स्नान कराना चाहिए। फिर पंचामृत (गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत, मधु तथा शक्कर) में डुबोकर स्नान कराना चाहिए। फिर गंगाजल से अभिषेककर स्वर्णपात्र, रजतपात्र, ताम्रपात्र अथवा काठ के ऊपर बिछे वस्त्रावरण पर सर्वतोभद्र-मंडल की रचनाकर उसका सविध पूजन करना चाहिए। विभिन्न रंगों से सज्जित, प्राण-प्रतिष्ठित और पूजित सर्वतोभद्र-मंडल पर पीपल के नौ पत्तों को बिछा देना चाहिए। फिर उनपर रुद्राक्ष या रुद्राक्ष-माला को रखकर उनका षोडशोपचार-पूजन करना चाहिए। रुद्राक्ष के तीन भाग होते है—मुख, मध्य और मूल, जिनमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश का निवास होता है। इन तीनों का अलग-अलग षोडशोपचार करने के बाद रुद्राक्ष के कंटकों में आवाहित और प्रतिष्ठित सभी देव-देवियों का एक ही साथ षोडशोपचार-पूजन करना चाहिए। इस प्रकार एक रुद्राक्ष-बीज पर चौंसठ बार पूजन (१६ × ४) करना चाहिए। यदि एक सौ नौ रुद्राक्षों की माला हुई तो उसके रुद्राक्षों पर ६,९७६ (१०९ × ६४) बार पूजन करना होगा। रुद्राक्ष की माला में दो अक्ष-बीजों के बीच की प्रत्येक गाँठ पर ॐ को उच्चारणपूर्वक प्रतिष्ठित करना चाहिए। उस ग्रंथि-प्रतिष्ठित ऊँकार का भी षोडशोपचार-पूजन होना चाहिए। इस प्रकार एक माला की ग्रंथियों पर १,७४४ (१०९ × १६) बार षोडशोपचार-पूजन करना चाहिए। इस प्रकार एक माला पर, जिसमें १०९ अक्ष-बीज हों, ८,७२० (६,९७६ + १,७४४) बार पूजन करना चाहिए। इस प्रकार अभिषिक्त, प्राणप्रतिष्ठित और पूजित माला को रुद्राक्ष-मुख-संख्या के आधार पर निर्धारित पूजा-विधान के साथ एक बार और पूजन करना चाहिए। फिर माला की प्रार्थना (ॐ मां माले महामाये ···) के बाद अपने अभीष्ट मंत्र (उच्छिष्ट-गणेश, नवार्ण-मंत्र, गायत्री-मंत्र, प्रणव-मंत्र या अन्य अभीष्ट मंत्र) का कम-से-कम एक अक्षमाला जप अवश्य करना चाहिए। संख्या अधिक भी हो सकती है, किंतु एक माला का जप निश्चय करना चाहिए। फिर दूसरे दिन से पूजा करने के योग्य पूजक की स्थिति में आकर अर्थात् स्नानादि शुद्धीकरण के पश्चात् निर्धारित संख्या में, निश्चित समय पर प्रतिदिन जप करना चाहिए।

इस प्रकार यह उत्कृष्ट एवं सर्वसिद्धि-दायक रुद्राक्ष-धारण एवं जप-विधान है। यदि किसी अभीष्ट की प्राप्ति, मंत्र की सिद्धि, कामना की पूर्ति या ऐसी अन्य सिद्धियों के लिए जप करना हो तो उसके दो विधान विहित हैं। एक तो मंत्र-जागरण-जप-विधान (शास्त्रोक्त संख्या मे) और दूसरे प्रयोग-जप-विधान (शास्त्रोक्त संख्या मे) साधित करना चाहिए। यह परम सिद्धि और सफलतादायक विधान है। किसी पर्व-तिथि और पुण्य-

तिथि पर संस्कारित, प्राण-प्रतिष्ठित या पूजित माला या अक्ष-बीज पर शुद्ध गोघृत लगाना चाहिए।

रुद्राक्ष-संख्यांक और देहांग-निर्देश

किस अंग में कितने रुद्राक्षों को धारण करना चाहिए—इसके लिए अलग-अलग पुण्यफल और शास्त्रोल्लेख हैं। रुद्राक्ष-धारण-मात्र महान् पुण्यदायक और पापनाशक माना गया है। श्रीमद्देवीभागवत के अनुसार चारों वेदों और पुराणों के पाठ से, तीर्थ-सेवन से तथा समस्त विद्यार्जन से जो पुण्य उपलब्ध होता है, वह रुद्राक्ष-धारण से तत्काल हो जाता है। रुद्राक्ष-धारण-पूर्वक मृत्यु को प्राप्त हुआ व्यक्ति रुद्र-लोक में चला जाता है और उसका पुनर्जन्म नहीं होता। कोई मरणासन्न व्यक्ति कंठ अथवा भुजाओं में रुद्राक्ष धारण कर मरे तो वह अपने इक्कीस कुलों का उत्तारण कर देता है। वह सगुणोपासक या निर्गुणोपासक, ब्राह्मण या चांडाल, कोई भी हो सकता है।[1]

भस्म और रुद्राक्ष धारण करनेवाला देवत्व और शिवत्व को धारण कर भ्रमण करता है। सभी प्रकार के पापों से युक्त व्यक्ति भी रुद्राक्ष-धारण-मात्र से रुद्र हो जाता है।[2]

मस्तक पर रुद्राक्ष-धारण कोटि-गुणित फल देनेवाला होता है। कानों में रुद्राक्ष-धारण दशकोटि-गुणित पुण्यफलदायक है। इसका धारण गले में शतकोटि-गुणित, मस्तक-मध्य में कोटि-सहस्रगुणित फलदायक हो जाता है—

शिरसा धारयते कोटिः कर्णयोर्दशकोटयः ।
शतकोटिर्गले बद्धो मूर्ध्नि कोटि-सहस्रकम् ॥[3]

यज्ञोपवीत में दस सहस्र-गुणित, भुजाओं में लक्षकोटि-गुणित पुण्यफल रुद्राक्षधारण से प्राप्त होता है। कलाई में रुद्राक्षधारण तो मोक्ष को साधित करनेवाला परतत्त्वमय हो जाता है—

अयुतं चोपवीते तु लक्षकोटिर्भुज-स्थिते ।
मणिबन्धे तु रुद्राक्षो मोक्ष-साधनकः परः ॥

इसी पुराण-ग्रंथ में यह कहा गया है कि जो सहस्र रुद्राक्षों को धारणकर रुद्राक्ष व्रतधारी बन जाता है, उसे सभी देव नमस्कार करते हैं। वह रुद्र-सदृश हो जाता है। सहस्र रुद्राक्षों के अभाव में दोनों बाहुओं में सोलह-सोलह रुद्राक्षों को धारण करना चाहिए—

---

[1] श्रीमद्देवीभागवत, ११ : ६ : १०-१३।
[2] उपरिवत्, १४-१५।
[3] उपरिवत्, १६।
[4] उपरिवत्, १७।

महाव्रतमिदं प्राहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ।
सहस्रं धारयेद्यस्तु रुद्राक्षाणां धृतव्रतः ।
तं नमन्ति सुराः सर्वे यथा रुद्रस्तथैव सः ।
अभावे तु सहस्रस्य बाहूवोः षोडश-षोडश ॥[1]

इसी पुराण में यह भी उल्लेख है कि शिखा के मध्य एक, हाथों में बारह-बारह, कंठ में बत्तीस, मस्तक पर चालीस, कानों में छह्-छह और वक्षःस्थल पर एक सौ आठ रुद्राक्षों को धारण करनेवाला रुद्र-सदृश हो जाता है—

एकं शिखायां करयोर्द्वादश द्वादशैव तु ।
द्वात्रिंशत् कण्ठदेशे तु चत्वारिंशच्च मस्तके ॥
एकैकं कर्णयोः षट् षट् वक्षस्याष्टोत्तरं शतम् ।
यो धारयति रुद्राक्षान् रुद्रवत् स तु पूज्यते ॥[2]

इसी पुराण में आगे कहा गया है कि कन्धों पर पाँच सौ रुद्राक्षों को धारण करना चाहिए। एक सौ आठ रुद्राक्षों की माला को यज्ञोपवीत की तरह धारण करना चाहिए। कंठ-प्रदेश में द्विसर, त्रिसर रुद्राक्ष को धारण करना चाहिए। कुंडल, मुकुट, कर्णिकाहार, केयूर (कंगन), कटक (मेखला-करधनी) में, पेट पर, शरीर और इन आभूषणों में रुद्राक्ष धारण करना चाहिए।

सभी काल और स्थितियों में रुद्राक्ष-धारण उचित है।तीन सौ रुद्राक्षों का धारण अधम, पाँच सौ रुद्राक्षों का धारण मध्यम और एक सहस्र रुद्राक्षों का धारण उत्तम कहा गया है—

(मणिबन्धे द्वादशाक्षान्) स्कन्धे पञ्चशतं भवेत् ॥
अष्टोत्तरशतैर्मालोपवीतं च प्रकल्पयेत् ।
द्विसरं त्रिसरं वापि विभृयात् कण्ठदेशतः ॥
कुण्डले मुकुटे चैव कर्णिहारकेषु च ।
केयूरे कटके चैव कुक्षिवंशे तथैव च ॥
सुप्ते पीते सर्वकालं रुद्राक्षं धारयेन्नरः ।
त्रिशतं त्वधमं पञ्चशतं मध्यममुच्यते ॥
सहस्रमुत्तमं प्रोक्तं चैव भेदेन धारयेत् ।[3]

[1] उपरिवत्, २९-३०।
[2] उपरिवत्, ३१-३२।
[3] उपरिवत्, ७ : १७-२०।

शिवपुराण में भी प्रायः इसी प्रकार का उल्लेख है। कुछ अतिरिक्त उल्लेख के रूप में कहा गया है—जो व्यक्ति साढ़े पाँच सौ रुद्राक्षों को मुकुट रूप में भक्तिपूर्वक सम्यक् रूप से धारण करता है, वह भी फलदायक है,—

शतार्द्धेन युतैः पञ्चशतैर्वै मुकुटं मतम् ।
रुद्राक्षैर्विरचेत्सम्यग्भक्तिमान्पुरुषो नरः ॥[1]

रुद्राक्ष-धारण से महापाप का नाश होता है। रुद्र-संख्या-शत (ग्यारह सौ) रुद्राक्षों को धारणकर मनुष्य रुद्र-रूप हो जाता है। इन ग्यारह सौ रुद्राक्षों के धारण का जो फल है, उसे सौ वर्षों में भी वर्णित नहीं किया जा सकता है,—

रुद्राक्ष-धारणं प्रोक्तं महापातकनाशनम् ।
रुद्रसंख्याशतं धृत्वा रुद्ररूपोभवेन्नरः।
एकादशशतानीह धृत्वा यत्फलमाप्यते ।
तत्फलं शक्यते नैव वक्तुं वर्ष शतैरपि ॥[2]

इसी पुराण में उल्लेख है कि तीन सौ साठ रुद्राक्षों की तीन लड़ियाँ बनाकर यज्ञोपवीत की तरह पहनने का भी फल महान् है,—

त्रिभिः शतैः षष्टि-युक्तैस्त्रिरावृत्त्या तथा पुनः ।
रुद्राक्षैरुपवीतं च निर्मीयाद्भक्तितत्परः ॥[3]

शिखा में कहीं एक और कहीं तीन रुद्राक्षों के धारण का विधान है। शिवपुराण में ही आगे कहा गया है—हे महेश्वरि ! कानों में छह-छह रुद्राक्ष वाम और दक्षिण की ओर पहनना चाहिए, कण्ठ में एक सौ एक, बाँहों में ग्यारह, कर्पूरद्वार और मणिबंध में भी ग्यारह-ग्यारह रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। यज्ञोपवीत में तीन और कटि-प्रदेश में पाँच रुद्राक्षों का धारण-विधान है। हे परमेश्वरि ! इन संख्याओं के साथ जो रुद्राक्ष-धारण करता है, वह अपने इस रूप में प्रणम्य और स्तुत्य हो जाता है तथा उसे महेश की समता प्राप्त हो जाती है,—

---

[1] शिव-पुराण, रुद्राक्ष-माहात्म्य-वर्णन, श्लोक १९।
[2] उपरिवत्, श्लोक १७-१८।
[3] उपरिवत्, श्लोक २०।

शिखायां च त्रयं प्रोक्तं रुद्राक्षाणां महेश्वरि ।
कर्णयोः षट् च षट् चैव वामदक्षिणयोस्तथा ॥
शतमेकोत्तरं कण्ठे बाहुवोर्वै रुद्रसंख्यया ।
कर्पूरद्वारयोस्तत्र मणिबन्धे तथा पुनः ॥
उपवीते त्रयं धार्यं शिवभक्तिरतैर्नरः ।
शेषानुर्वरितान्पञ्च सम्मितान्धारयेत्कटौ ॥
एतत्संख्याधृता येन रुद्राक्षाः परमेश्वरि ।
तद्रूपं तु प्रणम्यं हि स्तुत्यं हि सर्वैर्महिशवत् ॥[1]

इसी पुराण में दो प्रकार के और वक्तव्य मिलते हैं। पहले वक्तव्य के अनुसार निर्देश है—"शिखा में एक, मस्तक पर तीस, कंठ में पचास और भुजाओं में सोलह-सोलह रुद्राक्षों को धारण करना चाहिए। मणिबंध में बारह-बारह, स्कन्ध में पाँच सौ और यज्ञोपवीत में एक सौ आठ रुद्राक्ष के दानों को व्यवस्थित करना चाहिए। इस प्रकार जो दृढ़व्रती होकर एक हज़ार रुद्राक्षों को धारण करता है, वह रुद्र के समान हो जाता है और सभी देवगण उसे नमस्कार करते हैं।"[2]

दूसरे स्थल पर शिवपुराण में कहा गया है "शिखा में एक, मस्तक में चालीस, कंठ में बत्तीस, हृदय में एक सौ आठ, कानों में छह-छह, भुजाओं में सोलह-सोलह और हाथों में बारह या चौबीस रुद्राक्षों को जिसने प्रीति से धारण किए हैं, वे सभी शिव की तरह पूजनीय एवं वंदनीय हो जाते हैं।"[3]

इस प्रकार शिवपुराण में दो-तीन विकल्प मिलते हैं।

रुद्राक्षजाबालोपनिषद् में रुद्राक्षों की संख्या और देहांग-निर्देश के संबंध में थोड़ा भिन्न उल्लेख मिलता है—"शिखा में एक, मस्तक पर तीस, गले में छत्तीस, भुजाओं में सोलह-सोलह, मणिबंध में बारह तथा कंधे पर पंद्रह रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। एक सौ आठ रुद्राक्षों की माला को गले में यज्ञोपवीत की तरह धारण करना चाहिए। दो लड़ी, तीन लड़ी, पाँच लड़ी अथवा सात लड़ियों को (रुद्राक्ष-मालाओं को) कंठ में धारण करना चाहिए। रुद्राक्ष को मस्तक पर मुकुट के रूप में, कानों में कुंडल के रूप में, और कानों में ही हार के रूप में भी धारण करना चाहिए। भुजबंध एवं कुक्षिबंध में विशेष-रूप से सूत्रित माला को सदैव धारण करना चाहिए। तीन सै रुद्राक्षों का धारण अधम, पाँच सौ रुद्राक्षों का धारण मध्यम तथा एक हजार रुद्राक्षों का धारण उत्तम माना गया है—

---

[1] उपरिवत्, श्लोक २१-२४।
[2] उपरिवत्, श्लोक २७-२९।
[3] उपरिवत्, श्लोक ३०-३२।

तदक्षमुत्तमं विद्यात् तद्धार्यं शिवपूजकैः ।
शिखायामेक-रुद्राक्षं त्रिशतं शिरसा वहेत् ॥
षटत्रिंशत् गले दध्याद्बाहुवोः षोडश-षोडश ।
मणिबन्धे द्वादशैवस्कन्धे पञ्चशतं वहेत् ॥
अष्टोत्तरशतैर्मालामुपवीतं प्रकल्पयेत् ।
द्विसरं त्रिसरं वाऽपि सराणां पञ्चकं तथा ॥
सराणां सप्तकं वाऽपि विभृयात् कण्ठदेशतः ।
मुकुटे कुण्डले चैव कर्णिकाहारकेऽपि वा ॥
केयूर-कटके सूत्रं कुक्षिबन्धे विशेषतः ।
सुप्ते पीते सदाकालं रुद्राक्षं धारयेन्नरः ॥
त्रिशतं त्वधमं पञ्चशतं मध्यममुच्यते ।
सहस्रमुत्तमं प्रोक्तमेवं भेदेन धारयेत् ॥[1]

निर्णयसिंधु में पदार्थादर्श के अंतर्गत वोपदेव के कथन का उल्लेख है, जिसके अनुसार रुद्राक्ष-संख्या और देहांग-निर्देशपूर्वक धारण-विधि का विधान किया गया है।

इस उल्लेख के अनुसार सारी बातें तो समान हैं, किंतु एक अतिरिक्त देहांग-निर्देश किया गया है। इसके अनुसार दोनों आँखों में चार-चार रुद्राक्षों के धारण का विधान किया गया है। उल्लेख है "कंठदेश में बत्तीस, मस्तक पर चालीस, कानों में छह-छह, हाथों में बारह-बारह, बाहुओं में सोलह-सोलह, आँखों में चार-चार, शिखा में एक और वक्षःस्थल पर एक सौ आठ रुद्राक्षों को धारण करनेवाला स्वयं नीलकंठ हो जाता है—

पदार्थादर्शे वोपदेवः—रुद्राक्षान् कण्ठदेशे दशनपरिमितान्मस्तके विंशति द्वे षट् षट् कर्णप्रदेशे करयुगलकृते द्वादश द्वादशैव। बाहुवोरिन्दोः कलाभिर्नयनयुगकृते एकमेकं शिखायां वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकण्ठः ।[2]

अनेक शास्त्र-पुराणों में रुद्राक्ष-धारण की संख्या के संबंध में मतैक्य नहीं है। देहांगों का निर्देश भी कहीं कम, कहीं अधिक है। आँखों में रुद्राक्ष-धारण का निर्देश तो केवल पदार्थादर्श में ही मिलता है।

शास्त्र और देहांगों पर रुद्राक्ष-संख्या का निष्कर्ष इस प्रकार है—

---

[1] रुद्राक्षजाबालोपनिषद, श्लोक १७-२२।

[2] निर्णयसिंधु, रुद्राक्ष-माहात्म्य-वर्णन।

देहांग/देहांग-भूषण	संख्या	विधायक-शास्त्र
शिखा	१	श्रीमद्देवीभागवत
मणिबंध (कलाई) (दोनों)	१२/१२	"
कंठ	३२	श्रीमद्देवीभागवत
मस्तक	४०	"
कान (दोनों)	६/६	"
वक्षःस्थल	१०८	"
कंधों पर	५००	"
यज्ञोपवीत	१०८	"
कंठ-प्रदेश	द्विसर (२ लड़े)	"
देहांग-भूषण	त्रिसर (३ लड़े)	"
कुंडल	—	"
मुकुट	—	"
कर्णिकाहार	—	"
केयूर (कंगन)	—	"
कटक (मेखला)	—	"
पेट	—	"
मुकुट	५५०	शिवपुराण
मुकुट	१,१००	"
यज्ञोपवीत	३६० (तीन लड़े)	"
शिखा	१, और ३	"
कान (दोनों)	६/६	"
कंठ	१०१, ५०, ३२	"
बाहु (दोनों)	११, १६, २४	"
कर्पूर-द्वार	११	"
मणिबंध (कलाई)	११; १२	"
यज्ञोपवीत	३; १०८	"
कटि-प्रदेश	५	"
मस्तक	३०, ४०	"
स्कन्ध	५००	"
हृदय	१०८	"
शिखा	१	रुद्राक्षजाबालोपनिषद्
मस्तक	३०	"
कंठ	३६	"
बाहु (दोनों)	१६/१६	"

मणिबंध (कलाई)	१२/१२	रुद्राक्षजाबालोपनिषद्
स्कन्ध	१५	"
यज्ञोपवीत	१०८	"
कंठ	२, ३, ५, एवं ७ लड़ें	"
मुकुट	—	"
कुंडल	—	"
कर्णहार	—	"
भुजबंध	—	"
कुक्षिबंध	—	"
—	३०० (अधम)	"
—	५०० (मध्यम)	"
संपूर्ण शरीर पर	१,००० (उत्तम)	पदार्थादर्श
नेत्र (दोनों)	४	निर्णयसिंधु
कंठ-प्रदेश	३२	"
मस्तक	४०	"
कान (दोनों)	६/६	"
मणिबंध (कलाई) दोनों	१२/१२	"
बाहु (दोनों)	१६/१६	"
शिखा	१	"
वक्षःस्थल	१०८	"

इस प्रकार विभिन्न शास्त्रों में संख्याएँ भिन्न-भिन्न हैं। इसमें शिवमहापुराण के निर्देशनुसार १,१०८ रुद्राक्षों का धारण सर्वोत्तम है। (इन पंक्तियों के लेखक ने शिवमहापुराणोक्त १,१०८ अभिषिक्त रुद्राक्षों का धारण कर कोटि जप किए हैं और जो अनुभूति उपलब्ध हुई है, उसे ही लिपिबद्ध किया है।) रुद्राक्ष-धारण के सुपरिणाम अनुभवैकगम्य हैं। इनका शब्दव्याख्यान असंभव है।

भिन्नमुखी रुद्राक्ष और उनका माहात्म्य

एकमुखी रुद्राक्ष

एकमुखी रुद्राक्ष साक्षात् शिव-स्वरूप है। यह ब्रह्म-हत्या के पाप का नाश करता है। यह प्रत्येक धारक को अवध्यता प्रदान करता है और प्रत्येक स्रोत पर अग्नि का स्तंभन करता है। इससे सभी पापों का नाश होता है। एकमुखी रुद्राक्ष परतत्त्व-स्वरूप है, जिसे धारण करने से जितेन्द्रिय पुरुष पर-तत्त्व (शिव-तत्त्व) में लीन हो जाता है।

एकमुखी रुद्राक्ष 'एकोऽहं द्वितीयो नास्ति' की भावना से समृद्ध जापक को अलौकिक, अद्वैत-भाव की मधुमती भूमिका में पहुँचा देता है। इसका धारणकर्त्ता शिवलोक में

जाकर शिव के साथ आनंदपूर्वक रहने लगता है। शंकर के अनुग्रह से और किसी महान् पुण्य के योग से ही एकमुखी रुद्राक्ष की प्राप्ति, धारण और जप का संयोग मिलता है। एकमुखी रुद्राक्ष को धारण करनेवाला मरणशील व्यक्ति मोक्ष-मार्ग को प्राप्त कर लेता है। इसके धारण से मनुष्य चिंतामुक्त और निर्भय हो जाता है। उसे किसी भी प्रकार की अन्य शक्ति और शत्रु से कोई कष्ट-भय नहीं होता। जहाँ एकमुखी रुद्राक्ष का सविध पूजन होता है, वहाँ साक्षात् लक्ष्मी निवास करने लगती हैं। रुद्राक्षों में एकमुखी रुद्राक्ष सर्वश्रेष्ठ, शिव-स्वरूप, सर्वकामनासिद्धि-फलदायक और मोक्षदाता है। यह तो शास्त्रोक्त बात है। एकमुखी रुद्राक्ष के धारण के पश्चात् साधना-उपासना करने से ईश्वर-दर्शन और स्वसाक्षात्कार शीघ्र होता है। इस रुद्राक्ष का नियंत्रक-संचालक ग्रह सूर्य है। अतः सूर्यग्रह के समस्त दोष इसके धारण से नष्ट होते हैं। ज्योतिषशास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार सरदर्द, नेत्रपीड़ा, बवासीर कष्ट (अर्श रोग), यकृत-दोष का निवारण इस रुद्राक्ष के धारण से शीघ्र ही हो जाता है। इससे शासकीय विरोध या सरकारी अकृपा का भी शीघ्र शमन होता है। एकमुखी रुद्राक्ष सामाजिक-स्तर में उन्नयन लाता है और दूसरों पर शासन करने की नेतृत्वशक्ति को अद्‌भुत रूप से विकसित करता है।

लोकश्रुति है कि एकमुखी रुद्राक्ष जब फल के रूप में पृथ्वी पर टपकता है तो पृथ्वी पर टिकता नहीं, वह सीधे पाताल-लोक चला जाता है। इसीलिए तपस्वी रुद्राक्ष-वृक्ष के नीचे इसलिए भी आसन लगाकर बैठते हैं कि उन्हें कभी-न-कभी एकमुखी रुद्राक्ष के दर्शन होंगे। नेपाल के पशुपति मंदिर (काठमांडु) में एकमुखी रुद्राक्ष के दर्शन किये जा सकते हैं। संसार में एकमुखी रुद्राक्षों की संख्या अंगुलिगण्य है। मूल्य की दृष्टि से एकमुखी रुद्राक्ष बहुमूल्य ही नहीं, अमूल्य है। एक लाख से दस लाख तक या इससे भी अधिक रुपये ऐसे रुद्राक्ष के लिए कम ही हैं। यह बेचने और खरीदने-वाले की स्वेच्छा और समझौते पर निर्भर करता है।

बाजार में कभी-कभी किसी दुकान में किसी फकीर की झोली में या फुटपाथ पर एकमुखी रुद्राक्ष के दर्शन हो जाते हैं, किंतु यह असली रुद्राक्ष नहीं होता। ये रुद्राक्ष प्लास्टिक के या काठ के बने होते हैं, किंतु इतनी खूबी से कारीगरी की जाती है कि इन्हें पहचानना कठिन है। एक तीसरी प्रक्रिया भी है। द्विमुखी रुद्राक्ष की एक ओर लोहे का कवच पहना देने से एकमुखी रुद्राक्ष बनता है; क्योंकि उसका दूसरा मुख कवच के कारण उभर नहीं पाता। कभी-कभी इन रुद्राक्षों में शिव-लिंग, अर्घा इत्यादि के चिह्न भी बने होते हैं; जिसे निहायत नकली समझना चाहिए। बाजार में एकमुखी रुद्राक्ष के नाम पर ये तीनों प्रकार के रुद्राक्ष बेचे जाते हैं; जिनकी कीमत एक रुपये से लेकर पाँच सौ रुपये तक हो जाती है। इन सभी रुद्राक्षों में 'अभावेशालिचूर्णम्' भाव से असली द्विमुखी रुद्राक्ष की लौह-कवच द्वारा पेड़ में लगे रहने की स्थिति में ही जिसे एकमुखी बना लिया जाता है, उसे स्वीकार किया जा सकता है। उसे ही एकमुखी रुद्राक्ष मानकर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा की जा सकती है

और पूजन, धारण और जप में उसका उपयोग किया जा सकता है। अथवा हरगौरी (अर्धनारीश्वरीभूत) रुद्राक्ष को भी एकमुखी रुद्राक्ष का स्थानापन्न माना जाता है। असली एकमुखी रुद्राक्ष तो चतुर्वर्ग-सिद्धिदायक, संसार में अप्रतिम, जिससे समता किसी की नहीं की जा सकती, मोक्ष-दायक और शिव-स्वरूप है। यह रुद्राक्ष अद्भुत और अलभ्य है।

द्विमुखी रुद्राक्ष

द्विमुखी रुद्राक्ष हरगौरी-स्वरूप (अर्धनारीश्वर) है। यह गोवध आदि अघ (पाप) का नाश करनेवाला है। इसे शिव-शिवारूप और देव-देवी रूप भी कहते हैं। इस अर्धनारीश्वर रुद्राक्ष के धारण से भगवान् अर्धनारीश्वर (शिव) प्रसन्न होते हैं। पद्मपुराण के अनुसार तो द्विमुखी रुद्राक्ष साक्षात् अग्निस्वरूप भी है। जिसके शरीर पर यह प्रतिष्ठित होता है, उसके जन्मार्जित पाप उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार अग्नि ईंधन को जला डालती है। स्त्री-हत्या, ब्रह्म-हत्या और ऐसी अनेक हत्याओं का पाप जो मनुष्य को लगता है, उसके इस रुद्राक्ष के धारण से वे सभी पाप तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं।

अग्नि-पूजन से जो फल मिलता है और घृत की आहुति से संपन्न अग्निकार्य से जो फल मिलता है, उसे द्विमुखी रुद्राक्ष-धारणकर्त्ता सत्पुरुष तुरंत प्राप्त कर लेता है और अंत में स्वर्ग का सुख भी भोगता है।

अनेक अलौकिक उपलब्धियों और आत्मिक तृप्तियों के अतिरिक्त इस रुद्राक्ष के धारण से सांसारिक सुख और समृद्धि की भी प्राप्ति होती है। यह रुद्राक्ष चिंतामुक्त करता है। द्विमुखी रुद्राक्ष को 'देव-देव' की भी संज्ञा दी गई है।

द्विमुखी रुद्राक्ष द्वैत और अद्वैत का, अव्यक्त और व्यक्त का, परमात्मा और आत्मा का, ब्रह्म और जीव का, पुरुष और नारी का, ईश्वर और माया का एकाश्रित प्रतीक-बीज भी है। यह रुद्राक्ष एक से दो हो जाने और फिर दो से एक हो जाने का लोक-पर-लोक-धर्म है। इसे ही अद्वैत का द्वैतीकरण और द्वैत का अद्वैतीकरण कहते हैं। यह रुद्राक्ष शिव-शिवात्मक, अर्धनारीश्वर और देव-देव रूप होने के कारण सांसारिक व्यक्तियों के लिए तथा मोक्षाकांक्षी व्यक्तियों के लिए भी समान-रूप से महत्त्वपूर्ण है।

द्विमुखी रुद्राक्ष को संचालित-नियंत्रिक करने वाला ग्रह चंद्र (Moon) है। इसके धारण से आद्याशक्ति भगवती की कृपा सहज-भाव से सुलभ हो जाती है। चंद्र-ग्रह के समस्त दोषों के निवारण के लिए इस रुद्राक्ष को धारण किया जा सकता है। ढंढक, खाँसी, मानसिक कष्ट, खिन्नता इत्यादि को दूर करने में यह रुद्राक्ष अभिभावक की तरह सहयोग करता है। विशेषकर दारिद्र्य को नष्ट करनेवाला यह रुद्राक्ष परमपूजनीय माना जाता है।

त्रिमुखी रुद्राक्ष

त्रिमुखी रुद्राक्ष ब्रह्मसदृश है। इसके धारण से जन्मांतरों में देह से किए गए प्रच्छन्न सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। त्रिमुखी रुद्राक्षधारणकर्त्ता उदर में नहीं आता (उसका पुनर्जन्म) नहीं होता। उसे कोई रोग नहीं होता और वह अकुशल-जीवन भी व्यतीत नहीं करता। उसकी कभी पराजय नहीं होती; आग से उसका घर कभी नहीं जलता। ये सभी और इन सबों के अतिरिक्त भी सभी प्रकार के वज्र या विपत्ति का निवारण त्रिमुखी रुद्राक्ष के धारण से हो जाता है। इस रुद्राक्ष के धारण करनेवालों का कुछ भी अशुभ नहीं होता। पद्मपुराण के इस उल्लेख के अतिरिक्त अन्य शास्त्रग्रंथों में श्रीमद्देवीभागवत, रुद्राक्षजाबालोपनिषद् और ऐसे अनेक ग्रंथों ने त्रिमुखी रुद्राक्ष को अग्नि-स्वरूप माना है। यह गहन (अग्नि) का साक्षात् रूप है, जो भ्रूण-हत्या जैसे पाप का नाश करता है। इसे अग्नि-जन्मा (अग्निसंभूत) कहते हैं। यह सभी प्रकार के पाप-समुच्चय का नाश करता है। रुद्राक्षजाबालोपनिषद् ने तो त्रिमुखी रुद्राक्ष को तीनों अग्नियों का स्वरूप कहा है, जिसके धारण से अग्निदेव नित्यशः प्रसन्न होते हैं। यह स्त्री-हत्या के पाप को दूर करता है।

त्रिमुखी रुद्राक्ष सृष्टि के त्रित्व का प्रतीक है। यह शैवागम के त्रिक-दर्शन का साकार-रूप है। यही इच्छा, कर्म, ज्ञान; स्वप्न, स्वाप, जागरण का प्रतिनिधित्व करनेवाला त्रिक-बीज है। इसे नर-शक्ति-शिवात्मक, मातृ-मान-मेयात्मक, इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मक, शक्तित्रयात्मक (परा, परापरा, अपरा) माना गया है। यह त्रिक का प्रतीक है और त्रिक सर्वश्रेष्ठ शास्त्र है। कहा गया है कि वेद से श्रेष्ठ शैव-शास्त्र है, शैव से श्रेष्ठ वामपंथ है, वामपंथ से श्रेष्ठ दक्षिणपंथ है, दक्षिणपंथ से श्रेष्ठ कौल (कौलमत) है और इससे भी श्रेष्ठ त्रिकशास्त्र है,—

वेदादिभ्यः परं शैवं शैवाद् वामं तु दक्षिणम् ।
दक्षिणात् परतः कौलं कौलात् परतरं त्रिकम् ॥

यह सूंपर्ण सृष्टि जिस त्रिधर्म से नियंत्रित है, उसमें त्रिकाल से लेकर त्रिदेव तक और त्रितत्त्व से लेकर त्रिलोक तक सब कुछ सम्मिलित है। त्रिमुखी रुद्राक्ष इन सबों का प्रतीक-बीजाक्ष बनता है।

त्रिमुखी रुद्राक्ष अनेक पापों के साथ, विशेष रूप से स्त्री-हत्या के पाप से मुक्त कराता है। इससे विद्या की प्राप्ति होती है और दार्शनिक बोधोदय होता है। इसके धारण से पाचन-संस्थान की व्याधियाँ नष्ट होती हैं और यह सभी प्रकार के अपघात और अशुभ घटना से बचाता है।

त्रिमुखी रुद्राक्ष को संचालित-नियंत्रित करनेवाला मंगल ग्रह है। अतः इसके धारण से मंगल ग्रह की प्रतिकूलता के सभी दोष नष्ट होते हैं। जैसे— भूमि-संबंधी झगड़ा-झंझट का निवारण होता है। इससे वैधव्य, रक्तविष और दुर्घटनाएँ शमित होती हैं।

चतुर्मुखी रुद्राक्ष

चतुर्मुखी रुद्राक्ष स्वयं चतुर्मुख ब्रह्मा-स्वरूप है। यह नर-हत्या के पाप को दूर करता है। इसके धारण करने से चतुर्मुख भगवान् प्रसन्न होते हैं। जो व्यक्ति चतुर्मुखी रुद्राक्ष को धारण करता है, वह द्विजत्व को भी प्राप्त कर लेता है। धारणकर्त्ता सहज ही सभी शास्त्रों का ज्ञाता, वेदों का जानकार और वरेण्य बन जाता है। साथ ही, सभी धर्मों के अर्थतत्त्व का ज्ञाता एवं स्मृति-पुराणादि का भी जानकार हो जाता है। वह वेद-शास्त्र-संपन्न, बहुश्रुत, सर्वशास्त्रज्ञ, महाज्ञानी, सर्वप्रिय, संपत्ति-संपन्न, सर्वस्नेही, हितचिंतक, नेतृत्व-गुण-संपन्न बन जाता है। चतुर्मुखी रुद्राक्ष के धारणकर्त्ता की आँखों में तेजस्विता और वाणी में मधुरता तथा शरीर में स्वास्थ्य एवं आरोग्य-जनित कान्ति उत्पन्न हो जाती है। ऐसे व्यक्ति जहाँ भी होते हैं, उनके चतुर्दिक् सम्मोहन का प्रभामंडल निर्मित हो जाता है।

इसके धारण से मनुष्य और मनुष्येतर प्राणियों की गृहगत हत्या से उत्पन्न पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। अर्थात् चतुर्मुखी रुद्राक्ष मानवेतर हत्या, नर-हत्या, ब्रह्म-हत्या और ऐसी अनेक हत्याओं के पाप को दूर करता है। इसके धारण से महाज्ञान की प्राप्ति, सभी प्रकार की अशुद्धियों का शुद्धीकरण, सभी प्रकार के रोगों का निवारण और अभीप्सा की तृप्ति होती है।

यह चतुर्वर्गफलदायक, चतुर्दिक् यश-उन्नायक तथा चारों आश्रमवासियों के लिए सदैव धारणीय है।

चतुर्मुखी रुद्राक्ष का संचालन-नियंत्रण बुध ग्रह से होता है। अतः बुध ग्रह की प्रतिकूलता के सभी दोष नष्ट हो जाते हैं। इसके धारण से बुध ग्रह के सुप्रभाव में विवर्धन होता है। इसके धारण से सुबुद्धि का विकास होता है। इसके धारण से लेखकीय प्रकाशन भी होता है। ज्योतिषशास्त्र, गणित, साहित्य इत्यादि अनेक क्षेत्रों में इससे सहयोग मिलता है। किसी भी क्षेत्र में विद्यार्जन करनेवाले छात्र या छात्राओं के लिए यह चमत्कारी प्रभाव उत्पन्न करता है।

पंचमुखी रुद्राक्ष

पंचमुखी रुद्राक्ष स्वयं रुद्र-स्वरूप है। इसे कालाग्नि के नाम से भी जानते हैं। जाबालोपनिषद् में इसे ब्रह्म-स्वरूप भी कहा गया है। इसके धारण से पुरुष-हत्या का पाप दूर होता है। यह रुद्राक्ष अगम्यगमन तथा अभक्ष्यभक्षण के कारण उत्पन्न पाप को नष्ट करता है। इसके धारण से शंकर नित्य संतुष्ट होते हैं। पद्मपुराण के अनुसार इसका धारणकर्त्ता प्राणियों का अधिपति बन जाता है। सद्योजात, ईशान, तत्पुरुष, अघोर और वामदेव शिव के ये पाँचों देवरूप पंचमुखी रुद्राक्ष में निवास करते हैं। इसीलिए पृथ्वी पर पंचमुखी रुद्राक्ष का सर्वाधिक प्रचार-प्रसार है। रुद्र-स्वरूप और ब्रह्म-स्वरूप के अतिरिक्त पंचमुखी रुद्राक्ष को रुद्र का आत्म-स्वरूप भी कहा गया है। सर्वजनों के अतिरिक्त विद्वानों के द्वारा यह विशेष-रूप से धारणीय बताया गया

है। शिव के समक्ष सुर और असुरों के द्वारा कोटि-सहस्र-कल्प तथा कोटिशतकल्प तक यह रुद्राक्ष पूजनीय बना रहता है, ऐसा शास्त्रोल्लेख है। इसे रुद्र-कालाग्नि भी कहते हैं। यह पृथ्वी पर सार्वभौम और शिवालय में सर्वतेजःसंपन्न हो जाता है। इसलिए सभी प्रयत्नों से साथ विधि-विधान-पूर्वक पंचमुखी रुद्राक्ष को धारण करना चाहिए, ऐसा शास्त्रोल्लेख है।

पंचमुखी रुद्राक्ष सभी रुद्राक्षों में सर्वाधिक शुभ और पुण्यदायी माना गया है। इससे यशोवृद्धि होती है और वैभव-संपन्नता भी आती है। इससे सुख-शांति और ख्याति की प्राप्ति होती है। दूषित-दृष्टिग्रस्त-अन्नभक्षण से उत्पन्न बाधाएँ भी इस रुद्राक्ष के धारणकर्त्ता को नहीं व्यापतीं।

इन सभी गुणों से संपन्न होने के कारण पंचमुखी रुद्राक्ष प्रचुरता से उपलब्ध भी है। इसका मूल्य भी बहुत कम है। एक रुद्राक्ष से एक माला तक और एक हजार रुद्राक्ष-धारण-प्रसंग तक पंचमुखी रुद्राक्ष का ही प्रयोग-प्रचलन है।

पंचमुखी रुद्राक्ष का संचालन-नियंत्रण बृहस्पति ग्रह से होता है। अतः बृहस्पति ग्रह की प्रतिकूलता से उत्पन्न बाधाओं का उपशमन पंचमुखी रुद्राक्ष के धारण से हो जाता है। सामान्य स्थिति में इसके धारण से अन्य लाभों के अतिरिक्त बृहस्पति ग्रह की प्रसन्नता अर्जित की जा सकती है। इसके धारण के परिणामस्वरूप शारीरिक शक्ति, मानसिक शक्ति, संपत्ति-शक्ति, भाग्यशक्ति और प्रसन्नता की प्राप्ति होती है।

षण्मुखी रुद्राक्ष

षण्मुखी रुद्राक्ष को श्रीमद्देवीभागवत में कार्तिकेय, रुद्राक्षजाबालोपनिषद् में कार्तिकेय के साथ गणेश और निर्णयसिंधु में गुहसंज्ञक कहा गया है। मुख्यतः यह कार्तिकेय और गणेश का स्वरूप है। अतः यह शिव-पुत्रों का सिद्ध होता है। इसके धारण से ब्रह्म-हत्या इत्यादि पापों से मुक्ति मिलती है। इससे भ्रूण-हत्या का भी पाप नष्ट होता है। इसके धारण से महालक्ष्मी प्रसन्न होती हैं और उत्तम आरोग्य की प्राप्ति होती है। शास्त्रोल्लेख है कि इसका धारणकर्त्ता कल्पान्त तक स्कन्द के सदृश शूर-वीर बना रहता है। वह कभी पराजय को प्राप्त नहीं करता और पृथ्वी पर गुणों का आकर (खजाना) बना रहता है। वह विधि-विधान-पूर्वक इस रुद्राक्ष के निरंतर धारण से कुमारत्व (शिव-पुत्र-पद) को प्राप्त कर लेता है। षण्मुखी रुद्राक्ष को धारण करनेवाला ब्राह्मण राजाओं के द्वारा पूज्य होता है, क्षत्रिय विजय प्राप्त करता है तथा वैश्य एवं शूद्र-वर्ण के व्यक्ति सदैव धन-धान्यादि-ऐश्वर्य से भरे-पूरे रहते हैं। उनके लिए गौरी (पार्वती) विशेष-रूप से वरदायिनी और माता की भाँति सदैव सुलभ बन जाती है। ऐसा व्यक्ति अपने भुजबल से ही विश्वजयी बन जाता है। षण्मुखी रुद्राक्ष धारणकर्त्ता वाग्मी (वाक्पटु) और धीर होता है। सभा में, नृपों के घर में और गोष्ठियों में उसकी वाक्पटुता का सम्मोहक प्रभाव रहता है। वह कभी कातरता को प्राप्त नहीं होता। निश्चय ही वह कभी भंग (टूटा हुआ) नहीं होता। इस रुद्राक्ष का धारण विद्या, बुद्धि

और लक्ष्मी के साथ-साथ सर्व-प्रकट-शुद्धि के लिए भी अनुकूल माना जाता है। सभी वर्णों के व्यक्तियों के लिए इस रुद्राक्ष का धारण समान फल प्रदान करता है। इसका धारणकर्त्ता सुलक्षण, सद्‌गुणी, धैर्यशाली, वक्ता और सौभाग्यशाली होता है। यह रुद्राक्ष विद्यार्जन में विशेष लाभदायक है।

इस रुद्राक्ष का संचालन-नियंत्रण शुक्र ग्रह के द्वारा होता है। अतः इस ग्रह की प्रतिकूलता से उत्पन्न बाधाओं के निवारण के लिए इस रुद्राक्ष का धारण अनुकूल और उपयोगी होता है। यौन-रोग, प्रेमजनित-निराशा तथा निर्वीर्यता को दूर करने और उनके स्थान पर अनुकूलता के आनयन के लिए इस रुद्राक्ष का धारण सर्वथा समीचीन और अनुकूल होता है।

सप्तमुखी रुद्राक्ष

सप्तमुखी रुद्राक्ष के देवता सात माताएँ हैं। सूर्य और सप्तर्षि भी इसके देवता माने जाते हैं। इसे अनंग (कामदेव) के नाम से भी जाना जाता है। सप्तमुखी रुद्राक्ष को महासेन (कार्तिकेय-विशाल सेना के अधिपति), अनंत (वासुकि) और नागराट् (नागराज) भी कहा जाता है।

पद्मपुराण के अनुसार सप्तमुखी रुद्राक्ष के सातों मुख में सात महाबलशाली नाग निवास करते हैं वे हैं—अनंत, कर्कट, पुण्डरीक, तक्षक, विषोल्बण, कारोष, और शंखचूड। इसके धारणमात्र से शरीर के अंतर्गत किसी भी प्रकार के विष का असर नहीं होता। इसके धारणकर्त्ता के प्रति भगवान् शंकर परम प्रसन्न और अनुकूल बन जाते हैं। जैसी प्रसन्नता वे नागेश्वर (नागराज) के प्रति दिखाते हैं, वैसी ही प्रसन्नता वे सप्तमुखी रुद्राक्ष-धारणकर्त्ता के प्रति दिखाते हैं। इसके (सप्तमुखी रुद्राक्ष के) प्रसन्न होने पर रुद्राक्षधारी व्यक्ति सभी पापों से मुक्त होता चलता है। वह ब्रह्म-हत्या, सुरापान, चोरी, गुरु-पत्नी-गमन इत्यादि पापों से तत्क्षण मुक्त हो जाता है। किसी प्रकार के अपहरण से उत्पन्न पाप का इससे नाश होता है।

इसके धारण से विपुल वैभव और उत्तम आरोग्य की प्राप्ति होती है। विधान और पवित्रतापूर्वक इसे धारण करने से महत् ज्ञान और संपत्ति स्वतः उत्पन्न होती है। तीनों लोकों में देवों के द्वारा जो भोग्य होता है, उसके समान भोग्य को धारणकर्त्ता निश्चय ही प्राप्त करता है। इसके धारण से गुप्तधन की प्राप्ति, स्त्रीवशीकरण और शत्रुनाश का भी लाभ प्राप्त होता है। इसे धारण करने से मनुष्य यशस्वी होता है। उसकी कीर्ति उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। वह सदैव प्रगति के पथ पर ही चलता रहता है। इस रुद्राक्ष के धारणकर्त्ता को महालक्ष्मी का आशीर्वाद स्वतः प्राप्त होता रहता है।

सप्तमुखी रुद्राक्ष के संचालक-नियंत्रक ग्रह शनि हैं। इसके धारण से शनिग्रह के दोषों का निवारण और शनि-कृपा का लाभ होता है। दुर्भाग्य, विपत्ति और मृत्युभय के क्षणों में सप्तमुखी रुद्राक्ष उद्धारक सिद्ध होता है।

अष्टमुखी रुद्राक्ष

अष्टमुखी रुद्राक्ष को मंत्रमहार्णव में महासेन और विनायक अर्थात् कार्तिकेय और गणेश कहा गया है। रुद्राक्षजाबालोपनिषद् के अनुसार अष्टमुखी रुद्राक्ष आठ माताओं का भी स्वरूप माना गया है। यह अष्टवसुओं को भी प्रिय है और इसमें गंगा का भी निवास माना गया है। इसके धारण से तीनों प्रसन्न होते हैं—ऐसा इस उपनिषद् का वचन हैं। श्रीमद्देवीभागवत अष्टमुखी रुद्राक्ष को साक्षात् विनायक सिद्ध करता है। पद्मपुराण के अनुसार यह कार्तिकेय और गणेश का सम्मिलित अधिवास है। इस प्रकार अष्टमुखी रुद्राक्ष में कार्तिकेय, गणेश, अष्टमातृगण, अष्टवसुगण और गंगा का अधिवास माना गया है।

यह रुद्राक्ष मिथ्या-भाषण से उत्पन्न पापों को नष्ट करता है। गुरु-पत्नी का यदि पृष्ठोदर-कर-पूर्वक (त्रिविध क्रिया-पापपूर्वक) स्पर्श हो जाए तो उससे उत्पन्न पाप को, अन्य अनेक पापों को तथा अति-पापों को यह नष्ट करता है। यह रुद्राक्ष संपूर्ण विघ्नों को भी नष्ट करता है। इससे मोक्ष और परागति की भी प्राप्ति होती है। इसके धारण करने से अन्नकूट (अन्न में मिलावट करनेवाला), तूलकूट (डंडी मारनेवाला), स्वर्णकूट (सोने में मिलावट करनेवाला) जिस पाप का भागी होता है, उस पाप को यह रुद्राक्ष नष्ट करता है। दुष्ट एवं युवती स्त्रियों के तथा गुरु-स्त्री के स्पर्श से जो पाप उत्पन्न होता है, उन सभी प्रकार के पापों को और ऐसे अनेक पापों को यह रुद्राक्ष नष्ट करता है। अष्टमुखी रुद्राक्ष के धारणकर्त्ता के सभी विघ्न नष्ट हो जाते हैं और वह परम-पद को प्राप्त करता है।

पद्मपुराण में शिव ने कार्तिकेय को अष्टमुखी रुद्राक्ष की महिमा को समझाते हुए कहा है कि जो व्यक्ति अष्टमुखी रुद्राक्ष को धारण करता है, वह किसी जन्म में मूर्ख नहीं रहता, वह कभी व्याकुलता को प्राप्त नहीं होता। वह बुद्धि-भ्रष्ट भी नहीं होता। उसके सभी कार्यों में सदैव अविघ्नता बनी रहती है। लेखन-कार्य में उसे निपुणता प्राप्त होती है और महत् कार्यों में कौशल प्राप्त होता है। उसके द्वारा आरंभ किए गए सभी कार्यों में क्षेम (मंगल) की स्थिति सदैव बनी रहती है। जो अर्ध-सत्य का प्रयोग करता है (वणिक्-वृत्ति में), डण्डी मारता है या अन्य सभी प्रकार के झूठ और बेईमानी का आश्रय होता है; जो गुरु-पत्नी का शिश्नोदर-कर-स्पर्श करता है, उससे उत्पन्न पाप या अन्य सभी पापों को यह रुद्राक्ष नष्ट करता है। फिर वह व्यक्ति तीनों देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) के आशीर्वाद को प्राप्त कर अक्षय-उत्तम भोग को भोगता हुआ अंततोगत्वा परागति में लीन हो जाता है। ऐसा इस पुराण का विश्वास-वचन है।

इसके धारण से कभी अपयश नहीं मिलता। कला में निपुणता, नेतृत्वगुण-संपन्नता और सुविधा-प्राप्ति के लिए इस रुद्राक्ष की सर्वश्रेष्ठता स्वयं-सिद्ध है।

अष्टमुखी रुद्राक्ष का संचालन-नियंत्रण राहु ग्रह से होता है। इस ग्रह की प्रतिकूलता से उत्पन्न संपूण विघ्न-बाधाएँ इस रुद्राक्ष के धारण से समाप्त होती हैं। इससे राहु-ग्रह की प्रसन्नता के सभी परिणाम उपलब्ध होते हैं।

नवमुखी रुद्राक्ष

नवमुखी रुद्राक्ष भैरव-स्वरूप है। इसे शिव-सायुज्य को प्रदान करनेवाला कहा गया है। यह कपिल (अग्नि-रंग-स्वरूप) तथा मुक्तदायक है अथवा 'कपिलः मुक्तिदः' (महर्षि कपिल के शाप से सगर के साठ हजार पुत्र भस्म हो गए, फिर अनेक प्रार्थना के बाद वे ही कपिल ऋषि कपिल-धारा अर्थात् गंगा के रूप में उन्हें मुक्ति प्रदान करते हैं।) नव-वक्त्र का धारणकर्त्ता शंकर के समान बलशाली हो जाता है।

लक्षकोटि सहस्र (अर्थात् अगणित) ब्रह्म-हत्या के पाप को जो अर्जित करता है, उसको नवमुखी रुद्राक्ष शीघ्र ही पाप-नाश के बाद निष्पाप कर देता है। रुद्राक्षजाबालोपनिषद् के अनुसार नवमुखी रुद्राक्ष में नव शक्तियों का निवास होता है। अतः यह नवशक्ति-प्रतीक बीजाक्ष है। इसके धारण से सभी नौ शक्तियाँ प्रसन्न होती हैं। श्रीमद्देवीभागवत और पद्मपुराण दोनों ही नवमुखी रुद्राक्ष पर भैरव देव का निवास सिद्ध करते हैं। देवलोक में भी नवमुखी रुद्राक्ष सदैव इन्द्र और अन्य देवों द्वारा पूजित होता है। भगवान् शंकर के आश्रम में स्वयं शंकर की तरह पवित्र निवास-स्थल पर यह रुद्राक्ष गणेश की तरह है—ऐसा शास्त्र-वचन है। इसके धारण से भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है। सहस्र भ्रूण-हत्या और शत ब्रह्म-हत्या के पाप से नवमुखी रुद्राक्ष तत्काल मुक्त करता है। नवमुखी रुद्राक्ष पर यमराज का भी अधिवास शास्त्रोक्त है। इसके धारण से यमराज का भय नहीं रहता। यमराज को काल कहा गया है। भैरव को भी काल-भैरव कहते हैं। नवमुखी रुद्राक्ष के धारण से ये दोनों कालदेव प्रसन्न होते हैं; तत्परिणामतः अकाल-मृत्यु नहीं होती। नवग्रह की बाधाएँ समाप्त होती हैं और नव शक्तियों की ऊर्जा मिलती रहती है। कुछ शास्त्रों में नवमुखी को रुद्र-स्वरूप भी कहा गया है। यह इसलिए भी सत्य है कि भैरव (काल-भैरव) और यमराज (काल) दोनों ही शिव के महत्त्वपूर्ण शासनांग हैं।

नवमुखी रुद्राक्ष का संचालन-नियंत्रण करनेवाला ग्रह केतु है। अतः इसके धारण से केतु ग्रह की प्रसन्नता प्राप्त होती है और प्रतिकूलताएँ नष्ट होती हैं।

दशमुखी रुद्राक्ष

रुद्राक्षजाबालोपनिषद् के अनुसार दशमुखी रुद्राक्ष यमदेव-स्वरूप है, जिसके देखने और धारण करने से परम शांति मिलती है। निर्णयसिंधु और मंत्रमहार्णव के अनुसार दशमुखी रुद्राक्ष साक्षात् जनार्दन (विष्णु) देवस्वरूप है। श्रीमद्देवीभागवत के अनुसार भी दशमुखी रुद्राक्ष विष्णु-स्वरूप है। इसके धारण से ग्रह (प्रतिकूल), पिशाच, वेताल, ब्रह्मराक्षस, सर्प इत्यादि का भय नष्ट होता है और उनसे उत्पन्न बाधाएँ उपशमित होतीं हैं। यह महासेन-स्वरूप भी है। इसके धारण से अन्य सभी प्रकार के भूतप्रेतादि का विघ्न नष्ट होता है। शास्त्रों के अनुसार कुल मिलाकर दशमुखी रुद्राक्ष पर यमदेव, भगवान् विष्णु, महासेन, दशदिक्पाल और दशमहाविद्याओं का निवास होता है। दशमुखी रुद्राक्ष पर जितने देवों और देवियों का अधिवास है, उसके आधार पर यह अपने

प्रकार का सर्वाधिक सशक्त रुद्राक्ष है। इसके धारण से सभी नवग्रह शांत होते हैं और धारणकर्त्ता के प्रति सदय, सानुकूल और प्रसन्न होते हैं। यह महान् शक्तिशाली रुद्राक्ष है।

दशमुखी रुद्राक्ष अपनी चमत्कारी शक्ति-सामर्थ्य के कारण नवग्रह के नियंत्रण-केंद्र से ऊपर है। इसीलिए इसका नियंत्रक-संचालक कोई ग्रह नहीं है। इसका प्रभाव ग्रहांतरों तक जाता है और ग्रहांतरों से आता है। यह समस्त सुखों को देने वाला एक चमत्कारी रुद्राक्ष है।

एकादशमुखी रुद्राक्ष

एकादशमुखी रुद्राक्ष एकादश रुद्र-स्वरूप है। यह एकादश-रुद्राधिदैवत सदैव सौभाग्यवर्धक माना गया है। सभी शास्त्रों में इस रुद्राक्ष को शिखा में धारण का विधान है। इस रुद्राक्ष-धारण से उत्पन्न पुण्यफल के संबंध में कहा गया है कि एक सौ सहस्र गायों के सम्यक् दान से जो फल प्राप्त होता है, वह फल एकादशमुखी रुद्राक्ष के धारण से तत्काल प्राप्त होता है और एक सहस्र अश्वमेध यज्ञ और एक सौ वाजपेय यज्ञ (सर्वोच्च स्थान् प्राप्त करने के निमित्त किये जानेवाले सोम-यज्ञ के सात रूपों में से एक) का पुण्यफल भी प्राप्त होता है। इस रुद्राक्ष को धारण करनेवाला व्यक्ति पद्मपुराण के अनुसार इस लोक में शंकरसदृश हो जाता है और मरने के बाद उसका पुनर्जन्म नहीं होता। इसके धारण से एक लाख स्वर्ण शृगों के दान का भी फल प्राप्त होता है। चन्द्रग्रहण के समय किए गए दान का जो फल होता है, वह इस रुद्राक्ष के धारण का भी फल होता है। इस रुद्राक्ष पर इन्द्र का भी स्वामित्व है। इन्द्र की प्रसन्नता से ऐश्वर्य और यश की प्राप्ति होती है। अधिकार और अकुतोभयता मिलती है। इसके धारण से एकादशेन्द्रिय (मन के सहित) नियंत्रित होती हैं। यह रुद्राक्ष योग-साधना में सर्वाधिक सहायक है। इसे धारण कर साधना-तपस्या करनेवाला व्यक्ति परम योगी बन सकता है, ऐसा शास्त्र-संकेत है।

द्वादशमुखी रुद्राक्ष

द्वादशमुखी रुद्राक्ष आदित्य (द्वादशादित्य) अर्थात् सूर्य-स्वरूप है। अकेले रुद्राक्ष-जाबालोपनिषद् के अनुसार द्वादशमुखी रुद्राक्ष पर विष्णु का अधिवास माना गया है, किंतु अन्य सभी शास्त्र और पुराणों में इस रुद्राक्ष पर सूर्य की प्रतिष्ठा मानी गई है। यह रुद्राक्ष सभी प्रकार के रोगों के निवारण में समर्थ है। इसके धारण से सूर्य देव प्रसन्न होते हैं और गोमेध एवं अश्वमेध यज्ञों का सुफल प्राप्त होता है। इसके धारण से शृंगधारी, शस्त्रधारी और व्याघ्र आदि से धारणकर्त्ता को कोई भय नहीं रहता। उसे किसी भी प्रकार का शारीरिक और मानसिक कष्ट नहीं रहता। वह किसी भी प्रकार के रोग से ग्रस्त नहीं होता और न उसे कहीं भी किसी तरह का भय होता। वह सदैव ईश्वर (शिव) की तरह सुखपूर्वक प्रसन्न रहता है। द्वादशमुखी रुद्राक्ष धारण करनेवाला व्यक्ति हाथी, घोड़ा, मृग, मार्जार, साँप, चूहा, मेढक, गधा या ऐसे अनेक प्रकार के पशुओं की हत्या से उत्पन्न पाप से मुक्त हो जाता है। इसके धारण से अग्निभय नहीं होता। धारणकर्त्ता अर्थलाभ और सुख को भोगकर ईश्वर बन जाता है। उसे

दरिद्रता कभी नहीं छूती। उसकी किसी भी प्रकार की वज्रता (सांसारिक कठोरता अथवा आकाशीय हिमपात) से रक्षा होती रहती है। यह सभी प्रकार की दुर्घटनाओं से बचानेवाला बीमा-विधानवत् (Insurance-like) है। यह शक्ति और निर्भयता प्रदान करता है। यह शासकीय शक्ति और राजत्व-विधान देता है। यदि कोई सर्वाधिकार-संपन्न सम्राट् की तरह शासन करना चाहता है तो यह रुद्राक्ष सर्वाधिक सहायक सिद्ध होता है। सूर्य से ही जीवों की उत्पत्ति होती है—'आदित्यादेव भूतानि जायन्ते।' यह सूर्य द्वादशमुखी रुद्राक्ष पर प्राण-प्रतिष्ठित होकर धारणकर्त्ता को सूर्यवत् तेजस्विता, प्रखरता, भास्वरता और सम्राट्-स्वरूपता प्रदान करता है। जिस प्रकार सूर्य दृश्य ग्रह-मंडल के बीच सम्राट् की तरह है, उसी प्रकार जो मनुष्य इस रुद्राक्ष को धारण करता है, अपने देश और काल का सम्राट् बन जाता है। विश्व के अंधकार को दूर करनेवाले सूर्य इस रुद्राक्ष के माध्यम से धारणकर्त्ता के मन के भीतर के दुःख, निराशा, कुंठा, पीड़ा और दुर्भाग्य के अंधकार को भी दूर कर देते हैं। सूर्य तेजोपुंज है, अतः द्वादशमुखी रुद्राक्ष भी धारणकर्त्ता को तेजस्वी बना देता है। यह सूर्य की तरह यशस्वी भी बनाता है।

त्रयोदशमुखी रुद्राक्ष

त्रयोदशमुखी रुद्राक्ष साक्षात् कामदेव कहा गया है। यह सभी कामनाओं और सिद्धियों को देनेवाला है। यह शुभ और शम् माना गया है। इसके धारण करने से कामदेव प्रसन्न होते हैं। जो व्यक्ति सुधा-रसायन का प्रयोग करना चाहता है और धातुओं के निर्माण के लिए कृतसंकल्प है, उसे इस रुद्राक्ष के धारण से सिद्धि प्राप्त होती है। वे सिद्ध और भाग्य-युक्त हो जाते हैं। इसके धारण से माता-पिता, बहन-भाई, और गुरु तक की हत्या का पाप नष्ट हो जाता है। इसके धारण से अक्षय स्वर्ग का लाभ भी मिलता है, जैसे देव महेश्वर को अक्षय स्वर्ग मिला हुआ है। इसके धारण से सभी कामनाओं की पूर्ति, अर्थ-लाभ, रस-रसायन की सिद्धियाँ और संपूर्ण सुख-भोग मिलता है।

त्रयोदशमुखी रुद्राक्ष को इन्द्र का अवतार भी माना गया है। इन्द्र सभी देवों के देव हैं, देवेन्द्र हैं। इस रुद्राक्ष पर उनका अधिवास होने से इसके धारणकर्त्ता को सभी देवों की कृपा सहज ही प्राप्त हो जाती है। यह ऋद्धि-सिद्धि-दायक है। इसके धारण से वशीकरण और आकर्षण होता है। इसका धारणकर्त्ता किसी भी दशा और परिवेश में, किसी भी प्रसंग और देश में अजित और अपराजेय बना रहता है। उसे किसी भी अभाव की अनुभूति नहीं होती। यह सर्वपापों से मुक्त कराकर इच्छामरण प्राप्त कराता है। कहते हैं, इसके धारणकर्त्ता के घर जलकुंभ भरने (पानी भरने) के लिए भगवान् तक आते हैं। यह भी मान्यता रही है कि त्रयोदशमुखी रुद्राक्ष पर कामदेव के साथ उनकी पत्नी रति का भी निवास है। यह मनुष्य-मात्र की जो इच्छाएँ हो सकती हैं, उन सबों को पूर्ण करनेवाला है। हिमालय में स्थित तपस्वी और योगिगण आध्यात्मिक उपलब्धियों के वशीभूत होकर इस रुद्राक्ष को धारण करते हैं।

चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष

चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष श्रीकंठस्वरूप है। यह रुद्रदेव की आँखों से विशेष रूप से उत्पन्न हुआ है। जो व्यक्ति इस रुद्राक्ष को भक्तिपूर्वक मस्तक पर धारण करता है, वह सदैव ब्राह्मणों एवं देवताओं के द्वारा पूज्य होता है और अंत में परागति को प्राप्त करता है। इस रुद्राक्ष के धारण करने से धारणकर्त्ता का शरीर शिव का शरीर हो जाता है। वह शिव-शक्ति-पिण्ड बन जाता है, अर्थात् वह शक्ति-पीठ और ज्योतिर्लिंग दोनों बन जाता है। इस रुद्राक्ष को धारण करनेवाले व्यक्ति के भी दर्शन पुण्य और भाग्य से होते हैं। यह वंशोद्धारक (धारणकर्त्ता के वंश में मृत सभी व्यक्तियों की आत्मा का उद्धार करनेवाला) तथा धारणकर्त्ता के निधन पर परलोक की सुगम और सुखद यात्रा करानेवाला होता है। इस प्रकार यह अतीतोद्धारक और भविष्य-दर्शक दोनों है। यह वर्तमान को भी समृद्ध करता है। इस प्रकार यह त्रिकाल-सुखदायक है। यह सभी रोगों का हरण करनेवाला सदैव आरोग्य प्रदान करनेवाला है। इससे वंशवृद्धि भी होती है।

इसके धारण से व्यक्ति बहुमान-पुरस्सर और यशस्वी बनता है। चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष में हनुमत् देव का भी अधिवास माना गया है। यह रुद्राक्ष भूत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी से भी रक्षा करता है। इससे बल और उत्साह का भी वर्धन होता है। इससे निर्भयता प्राप्त होती है और संकटकाल में संरक्षण प्राप्त होता है।

यह रुद्राक्ष चमत्कारी माना गया है। इसमें अनंत गुण अध्युषित हैं। शास्त्र-प्रमाण के अनुसार मानव-वाणी से इसके गुणों का व्याख्यान संभव नहीं है। इसका धारणकर्त्ता सर्वोच्च स्वर्ग को प्राप्त करता है।

चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष वाला चौदहों भुवनों का रक्षक और स्वामी बन जाता है।

रुद्राक्ष और नक्षत्र का ज्योतिषशास्त्रीय संबंध

(क) रुद्राक्ष और जन्म-नक्षत्र

नक्षत्रों की संख्या सत्ताईस है। प्रत्येक नक्षत्र पर किसी-न-किसी ग्रह का आधिपत्य होता है। एक से नौ मुखी रुद्राक्षों पर अलग-अलग नौ ग्रहों का आधिपत्य है। अतः ये सत्ताईस नक्षत्र किसी-न-किसी संवद्ध रुद्राक्ष से संचालित होते हैं। इसलिए जन्म-नक्षत्र के अनुसार विभिन्न मुखों के रुद्राक्षों का धारण जिन पर विभिन्न ग्रहाधिवास है, अनेक दृष्टियों से लाभप्रद और सिद्धिदायक है। रुद्राक्ष के विभिन्न मुख या भिन्न-मुखदार रुद्राक्ष, जिनपर भिन्न-भिन्न ग्रहों का अधिवास होता है, वे अपने संबद्ध ग्रहों से शक्ति ग्रहण करते हैं। रुद्राक्ष-बीजों की ग्राहिका-शक्ति सर्वाधिक तीव्र और संचयिता (reservoir) की तरह है। रुद्राक्ष-बीज केवल शक्ति-संग्रहण ही नहीं, ऊर्जा का विकीर्णन भी करता है। शोध, अध्ययन, प्रयोग और अनुभूति के आधार पर ज्योतिषशास्त्रीय पृष्ठाधार से रुद्राक्ष और जन्म-नक्षत्र को ग्रहों से मेल कराते हुए जो निष्कर्ष निकलता है, वह अद्भुत और लोकहितकारी है। नीचे इनकी सूची प्रस्तुत है,—

नक्षत्र, ग्रह और रुद्राक्ष

संख्या	जन्म-नक्षत्र	नक्षत्राधिपति ग्रह	उपयुक्त धारणाय रुद्राक्ष
१.	अश्विनी	केतु	नवमुखी
२.	भरणी	शुक्र	षण्मुखी
३.	कृत्तिका	सूर्य	एकमुखी, द्वादशमुखी या गौरीशंकर
४.	रोहिणी	चंद्रमा	द्विमुखी
५.	मृगशिरा	मंगल	त्रिमुखी
६.	आर्द्रा	राहु	अष्टमुखी
७.	पुनर्वसु	बृहस्पति	पंचमुखी
८.	पुष्य	शनि	सप्तमुखी
९.	आश्लेषा	बुध	चतुर्मुखी
१०.	मघा	केतु	नवमुखी
११.	पूर्व फाल्गुनी	शुक्र	षण्मुखी
१२.	उत्तर फाल्गुनी	सूर्य	एकमुखी, द्वादशमुखी या गौरीशंकर
१३.	हस्त	चंद्रमा	द्विमुखी
१४.	चित्रा	मंगल	त्रिमुखी
१५.	स्वाति	राहु	अष्टमुखी
१६.	विशाखा	बृहस्पति	पंचमुखी
१७.	अनुराधा	शनि	सप्तमुखी
१८.	ज्येष्ठा	बुध	चतुर्मुखी
१९.	मूल	केतु	नवमुखी
२०.	पूर्वाषाढ	शुक्र	षण्मुखी
२१.	उत्तराषाढ	सूर्य	एकमुखी, द्वादशमुखी या गौरीशंकर
२२.	श्रवण	चंद्रमा	द्विमुखी
२३.	धनिष्ठा	मंगल	त्रिमुखी
२४.	शतभिषा	राहु	अष्टमुखी
२५.	पूर्वभाद्रपद	बृहस्पति	पंचमुखी
२६.	उत्तरभाद्रपद	शनि	सप्तमुखी
२७.	रेवती	बुध	चतुर्मुखी

(ख) जन्म-लग्न, जन्म-राशि तथा रुद्राक्ष

संख्या	जन्म-राशि/लग्न	राशि के स्वामी ग्रह	उपयुक्त धारणीय रुद्राक्ष
१.	मेष	मंगल	त्रिमुखी
२.	वृष	शुक्र	षण्मुखी
३.	मिथुन	बुध	चतुर्मुखी

वाणिज्य, त्वचा, गॉल ब्लाडर, नाड़ी-संस्थान इत्यादि का कारक है। इस ग्रह की प्रतिकूलता से इन सबों में प्रतिकूलता और अनियमितता आती है। इस ग्रह के सदोष होने पर अपस्मार, मानसिक रोग, पक्षाघात, पीतज्वर, नासिका-रोग, दमा इत्यादि रोग होते हैं। इन सबों के निदान के लिए चतुर्मुखी रुद्राक्ष का धारण लाभप्रद है। व्यापारियों के लिए चतुर्मुखी रुद्राक्ष विशेष-रूप से लाभदायक और फलप्रद है।

पंचमुखी रुद्राक्ष

इसका संचालक ग्रह बृहस्पति है। यह ग्रह ज्ञान, गौरव का भी कारक है। यह मज्जा, यकृत, चरण, नितंब इत्यादि का भी कारक ग्रह है। बृहस्पति धर्म तथा धन-संपत्ति का भी नियामक ग्रह है।

बृहस्पति यदि बुरे प्रभाव में होते हैं तो व्यक्ति को अनेक तरह के कष्ट होते हैं। बृहस्पति स्त्री के लिए पति का और पुरुष के लिए पत्नी का भी कारक है। इसकी प्रतिकूलता से निर्धनता, और दांपत्य-सुख में विघ्न उत्पन्न होता है। इससे अनेक प्रकार की बीमारियाँ भी उत्पन्न होती हैं। इससे चर्बी की बीमारी, गुर्दा, जाँघ और कान की भी बीमारी होती है। इसका एक दुष्प्रभावित रोग मधुमेह भी है। इन सभी बीमारियों के निदान और निवारण के लिए पंचमुखी रुद्राक्ष धारण करना चाहिए।

पंचमुखी रुद्राक्ष सभी रुद्राक्षों में सस्ता तथा सर्वाधिक संख्या में उपलब्ध है, जबकि इसके नियंत्रक और संचालक ग्रह बृहस्पति हैं, जो सभी ग्रहों में सबसे बड़े और देवताओं के गुरु हैं।

षण्मुखी रुद्राक्ष

इसके नियंत्रक और संचालक ग्रह शुक्र हैं, जो भोग-विलास और सुख-सुविधा के प्रतिनिधि हैं। शुक्र ग्रह गुप्तेन्द्रिय, वीर्य, स्त्री, मुंख, गला, पुरुषार्थ, काम-वासना, उत्तम भोग्य-वस्तु, प्रेम, संगीत, भागीदारी इत्यादि के भी कारण हैं। शुक्र के दुष्प्रभाव से नेत्ररोग, यौनरोग, मुखरोग, मूत्ररोग, ग्रीवारोग और जलशोथ इत्यादि रोग होते हैं। इन सभी रोगों के निदान एवं निवारण के लिए षण्मुखी रुद्राक्ष धारणीय है।

आज के युग में यंत्र-तंत्र का प्रभाव बढ़ गया है। इसके नियामक शुक्र हैं। वर्तमान युग में वैदिक-संस्कारों की परंपरा क्षीणतर हुई है और तंत्रानुष्ठान बढ़ गया है। लोगों के मानस में लोकान्तर-जीवन और परलोक-सुख से भी आस्था कम हो गई है। समाज इहलोक के सुख में ही ज्यादा विश्वास करने लगा है। इसलिए भोग-विलास के उपकरण अधिकाधिक आविष्कृत-प्रचलित हुए हैं। संगीत, परिवहन, नारियों की जीवन-शैली और सामाजिक-स्थिति में भी काफी परिवर्तन हुआ है। इन सबों के कारक शुक्र ग्रह हैं। इस युग में बृहस्पति की अपेक्षा शुक्र-ग्रह की महत्ता अधिक हो गई है। यही कराण है कि षण्मुखी रुद्राक्ष इस युग के लिए बहुत ही महत्त्वपुर्ण हो गया है।

सप्तमुखी रुद्राक्ष

इस रुद्राक्ष के संचालक तथा नियंत्रक ग्रह शनि हैं। ये रोग तथा मृत्यु के कारक हैं। यह ग्रह ठंढक, नपुंसकता, श्रम, पैरों के बीच तथा नीचेवाले भाग, गतिरोध, पृथक्ता, विष, दीर्घ प्रभाव (लंबी अवधि तक रोग), वायु, स्नायु, अभाव का नियामक है। यह लोहा, पेट्रोल, चमड़ा आदि का भी प्रतिनिधित्व करनेवाला ग्रह है।

शनि के प्रभाव से दुर्बलता, उदर-पीड़ा, विकलांगता, हड्डी एवं मांस में दर्द, पक्षाघात, मृगी, वधिरता, मनश्चिंता, अस्थि-राज-यक्ष्मा, इत्यादि रोग उसके प्रतिकूल होने पर उत्पन्न होते हैं। ज्योतिषशास्त्र में शनि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हस्तरेखा-विद्या में भाग्य-रेखा को शनि-रेखा भी कहते हैं। इस प्रकार शनि भाग्य का कारक भी है। प्रकुपित होने पर यह हताशा, कार्य-विलंबन इत्यादि उत्पन्न करता है। जन्म-कुंडली में यह ग्रह यदि नवें घर तथा नवें घर के स्वामी से किसी भी तरह संबद्ध हो जाता है तो उस व्यक्ति का भाग्योदय देर से होता है। शनिग्रह को नियंत्रित और शांत करने के लिए सप्तमुखी रुद्राक्ष अत्यंत लाभकारी है।

कलियुग में सप्तमुखी रुद्राक्ष की महत्ता अधिक बढ़ी है। इसका कारण यह है कि सप्तमुखी रुद्राक्ष शनि द्वारा संचालित होता है और शनि सेवा-भाव या दास्य-भाव का ग्रह है। यह लोहा चमड़ा और पेट्रोल का कारक है। आधुनिक युग में इन तीनों वस्तुओं की उपयोगिता बढ़ गई है। यह युग नौकरी-पेशा लोगों का युग भी है। लोगों में नौकरी के प्रति आग्रह भी बढ़ा है। इस रुद्राक्ष के देव हनुमान् हैं, जो सेवा-वृत्ति और दास्य-भावना के प्रतीक हैं। इसलिए इन सभी दृष्टियों से सप्तमुखी रुद्राक्ष आधुनिक युगीन सिद्ध होता है।

अष्टमुखी रुद्राक्ष

इसका नियंत्रक और संचालक ग्रह राहु है, जो छाया-ग्रह है। इसमें शनि की भाँति या शनि से भी बढ़कर प्रकाशहीनता का दोष है। यह शनि की तरह लंबा, मूर्ख, अभाव एवं रोगकारक ग्रह है। यह योजनाओं को विलंबित करानेवाला भी ग्रह है। यह ग्रह घटनाओं को अकस्मात् भी घटित करा देता है। फेफड़े की बीमारी, पैरों का कष्ट, चर्मरोग, सर्प-भय, मोतियाबिन्द, अण्डकोश-वृद्धि, श्वास-कष्ट इत्यादि रोगों का कारक राहु है। अष्टमुखी रुद्राक्ष के धारण से एतत्संबंधी सभी प्रकार के रोगों का निवारण एवं निदान संभव है।

नवमुखी रुद्राक्ष

इसके नियंत्रक और संचालक ग्रह केतु हैं, जो राहु की तरह ही छाया-ग्रह हैं। जिस प्रकार राहु शनि के सदृश हैं, उसी प्रकार केतु मंगल के सदृश हैं। मंगल की तरह केतु अपनी युति (साहचर्य) अथवा दृष्टि के प्रभाव में आनेवाले पदार्थों को हानि पहुँचाता है।

अनुग्रहण करते रहते हैं। प्राच्य-विद्या की मान्यता के अनुसार इन ग्रहों में देवाधिवास होता हैं, जो अनुकूल या अनुकूलित होने पर आशीर्वाद की वर्षा भी करते हैं। इस संदर्भ में ग्रह और राशि के अनुकूल विहित शास्त्र-सम्मत, बहुशः प्रयुक्त मंत्रों का लोककल्याणार्थ निर्देश किया जा रहा है।

(१) ग्रह

ग्रह	मंत्र
सूर्य	ॐ ह्वां ह्वीं ह्वौं सः सूर्याय नमः
चंद्र	ॐ श्रां श्रीं श्रौं सः चन्द्राय नमः
बुध	ॐ ब्रां ब्रीं ब्रौं सः बुधाय नमः
मंगल	ॐ क्रां क्रीं क्रौं सः भौमाय नमः
बृहस्पति	ॐ ग्रां ग्रीं ग्रौं सः गुरवे नमः
शुक्र	ॐ द्रां द्रीं द्रौं सः शुक्राय नमः
शनि	ॐ प्रां प्रीं प्रौं सः शनये नमः
राहु	ॐ ह्वां ह्वीं ह्वौं सः राहवे नमः
केतु	ॐ स्त्रां स्त्रीं स्त्रौं सः केतवे नमः

इन मंत्रों का रुद्राक्षमाला पर एक माला जप (१०८ बार) दैनिक रूप से करना चाहिए। इस मंत्र-जप से संबद्ध ग्रह की प्रतिकूलताएँ समाप्त होती हैं, उनका अनुकूलन होता है तथा आशीर्वाद की प्राप्ति होती है ।

(२) राशि

ग्रह की भाँति प्रत्येक राशि पर भी अधिष्ठित देव हैं । अपनी जन्म-राशि के अनुसार निर्दिष्ट मंत्र का एक माला (रुद्राक्षमाला) संख्यक (१०८ बार) जप नित्य-प्रति करना चाहिए। इससे राशि का आशीर्वाद प्राप्त होता है, चित्त में प्रसन्नता आती है। आरोग्य की प्राप्ति होती है। समाज में प्रतिष्ठा और प्रभाव की वृद्धि होती है। जिन्हें अपनी जन्म-राशि ज्ञात न हो वे अपनी नाम-राशि पर जप कर सकते हैं। प्रातःकालीन पूजा में इस जप-विधान को सम्मिलित कर लेना चाहिए।

संख्या	राशि	मंत्र
१.	मेष	"ॐ ह्रीं श्रीं लक्ष्मीनारायणाय नमः"
२.	वृष	"ॐ गोपालय उत्तरध्वजाय नमः"
३.	मिथुन	"ॐ क्लीं कृष्णाय नमः"
४.	कर्क	"ॐ हिरण्यगर्भाय अव्यक्त-रूपिणे नमः"
५.	सिंह	"ॐ क्लीं ब्रह्मणे जगदाधाराय नमः"

इसके कुपित होने पर फेफड़े का कष्ट, ज्वर, नेत्र-पीड़ा, उदर-कष्ट, फोड़े-फुंसियाँ, शरीर में दर्द, दुर्घटना एवं अज्ञात कारणों से उत्पन्न रोग परेशान करते हैं। केतु को मोक्ष का कारक भी माना गया है। इस ग्रह की शान्ति के लिए नवमुखी रुद्राक्ष शुभात्मक और लाभात्मक है।

दशमुखी रुद्राक्ष

दशमुखी रुद्राक्ष से ऊपर सभी रुद्राक्ष नवग्रहों के प्रभा-प्रभाव-मंडल से ऊपर होते हैं। अतः इन पर किसी ग्रह-विशेष का आधिपत्य नहीं होता।

दशमुखी रुद्राक्ष सभी ग्रहों को नियंत्रित करता है। यदि अनेक ग्रह प्रतिकूल हों तो दशमुखी रुद्राक्ष लाभकारी ढंग से धारणीय हो जाता है।

एकादशमुखी रुद्राक्ष

यह रुद्राक्ष योग-साधना में प्रवृत्त व्यक्तियों के लिए बहुत अनुकूल है। यह शरीर-स्वास्थ्य, यम-नियम-आसन-षट्कर्म या अन्य यौगिक क्रियाओं में आनेवाली बाधाओं को दूर करता है। योग-सांधकों के लिए यह रुद्राक्ष सर्वाधिक अनुकूल है।

द्वादशमुखी रुद्राक्ष

यह एकमुखी रुद्राक्ष का स्थानापन्न माना गया है। वैसे तो गौरीशंकर रुद्राक्ष भी एकमुखी रुद्राक्ष का स्थानापन्न है, किंतु रोगों के निवारण की दृष्टि से गौरीशंकर रुद्राक्ष की स्थानापन्नता प्रभावहीन होती है। इसलिए एकमुखी रुद्राक्ष का रोग-निवारक एवं ग्रह-शांतिदायक रुद्राक्ष द्वादशमुखी रुद्राक्ष ही हो सकता है, क्योंकि एकमुखी और द्वादशमुखी दोनों रुद्राक्षों के संचालक सूर्य हैं।

त्रयोदशमुखी रुद्राक्ष

साधना और सिद्धि के लिए त्रयोदशमुखी रुद्राक्ष लाभदायक है। यह षण्मुखी रुद्राक्ष का स्थानापन्न है। भौतिक समृद्धि के लिए यह रुद्राक्ष परम सिद्धिदायक है। इसका साधक सिद्ध होकर अंतर्मुखी नहीं होता, बल्कि विश्व-कल्याण के लिए अपनी साधना-सिद्धियों का उपयोग करता है।

चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष

यह सप्तमुखी रुद्राक्ष का स्थानापन्न है। शनि-शांति के लिए चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष को सप्तमुखी रुद्राक्ष के साथ पहनने से और अधिक लाभ होता है।

रुद्राक्ष और ग्रहराशि-मंत्र

भारतीय ज्योतिष-विद्या को ज्योतिर्विज्ञान कहते हैं । जितने ग्रह-नक्षत्रादि हैं, वे किसी-न-किसी प्रकार से प्रकाश (light) और स्पंदन (vibration) को प्रक्षेपण और

अनुग्रहण करते रहते हैं। प्राच्य-विद्या की मान्यता के अनुसार इन ग्रहों में देवाधिवास होता हैं, जो अनुकूल या अनुकूलित होने पर आशीर्वाद की वर्षा भी करते हैं। इस संदर्भ में ग्रह और राशि के अनुकूल विहित शास्त्र-सम्मत, बहुशः प्रयुक्त मंत्रों का लोककल्याणार्थ निर्देश किया जा रहा है।

(१) ग्रह

ग्रह	मंत्र
सूर्य	ॐ हुवां हुवीं हुवौं सः सूर्याय नमः
चंद्र	ॐ श्रां श्रीं श्रौं सः चन्द्राय नमः
बुध	ॐ ब्रां ब्रीं ब्रौं सः बुधाय नमः
मंगल	ॐ क्रां क्रीं क्रौं सः भौमाय नमः
बृहस्पति	ॐ ग्रां ग्रीं ग्रौं सः गुरवे नमः
शुक्र	ॐ द्रां द्रीं द्रौं सः शुक्राय नमः
शनि	ॐ प्रां प्रीं प्रौं सः शनये नमः
राहु	ॐ हुवां हुवीं हुवौं सः राहवे नमः
केतु	ॐ स्त्रां स्त्रीं स्त्रौं सः केतवे नमः

इन मंत्रों का रुद्राक्षमाला पर एक माला जप (१०८ बार) दैनिक रूप से करना चाहिए। इस मंत्र-जप से संबद्ध ग्रह की प्रतिकूलताएँ समाप्त होती हैं, उनका अनुकूलन होता है तथा आशीर्वाद की प्राप्ति होती है ।

(२) राशि

ग्रह की भाँति प्रत्येक राशि पर भी अधिष्ठित देव हैं । अपनी जन्म-राशि के अनुसार निर्दिष्ट मंत्र का एक माला (रुद्राक्षमाला) संख्यक (१०८ बार) जप नित्य-प्रति करना चाहिए। इससे राशि का आशीर्वाद प्राप्त होता है, चित्त में प्रसन्नता आती है। आरोग्य की प्राप्ति होती है। समाज में प्रतिष्ठा और प्रभाव की वृद्धि होती है। जिन्हें अपनी जन्म-राशि ज्ञात न हो वे अपनी नाम-राशि पर जप कर सकते हैं। प्रातःकालीन पूजा में इस जप-विधान को सम्मिलित कर लेना चाहिए।

संख्या	राशि	मंत्र
१.	मेष	"ॐ ह्रीं श्रीं लक्ष्मीनारायणाय नमः"
२.	वृष	"ॐ गोपालय उत्तरध्वजाय नमः"
३.	मिथुन	"ॐ क्लीं कृष्णाय नमः"
४.	कर्क	"ॐ हिरण्यगर्भाय अव्यक्त-रूपिणे नमः"
५.	सिंह	"ॐ क्लीं ब्रह्मणे जगदाधाराय नमः"

६.	कन्या	"ॐ नमो प्रीं पीताम्बराय नमः"
७.	तुला	"ॐ तत्त्वनिरञ्जनाय तारकरामाय नमः"
८.	वृश्चिक	"ॐ नारायणाय सुरसिंहाय नमः"
९.	धनु	"ॐ श्रीं देवकृष्णाय ऊर्ध्वषंताय नमः"
१०.	मकर	"ॐ श्रीं वत्सलाय नमः"
११.	कुंभ	"ॐ श्रीं उपेन्द्राय अच्युताय नमः"
१२.	मीन	"ॐ क्लीं उद्धृताय उद्धारिणे नमः"

विभिन्न-मुखीन रुद्राक्षों को धारण की शास्त्रसम्मत-विधि

एकवक्त्ररुद्राक्षधारणविधिः

विनियोगः—

अस्य श्रीशिवमन्त्रस्य प्रसाद ऋषिः, पङ्क्तिः छन्दः, शिवो देवता, हंकारो बीजम्, औं शक्तिः, मम चतुर्वर्गसिद्ध्यर्थे रुद्राक्ष-धारणार्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः—

वामदेव ऋषये नमः शिरसि। पङ्क्तिश्छन्दसे नमो मुखे। ऋँ ऐँ ऐं नमः हृदि। हं बीजाय नमो गुह्ये। ओं शक्तये नमः पादयोः।

करादिन्यासः—

ॐ ॐ ह्लां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ऐँ ह्लीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ ह्लीं ह्लूँ मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ आं ह्लैं अनामिकाभ्यां हुम्। ॐ ऐं ह्लौं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्। ॐ उं ह्लः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

हृदयादिन्यासः—

ॐ ॐ ह्लां हृदयाय नमः। ॐ ऐं ह्लीं शिरसे स्वाहा। ॐ ह्लं ह्लूं शिखायै वषट्। ॐ आं ह्लैं कवचाय हुम्। ॐ ऐं ह्लौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ ॐ ह्लः अस्त्राय फट्।

ध्यानम्—

मुक्तापीनपयोदमौक्तिकजपावर्णैर्मुखैः पञ्चभिः
त्र्यक्षैराजितमीशमिन्दुमुकुटं पूर्णेन्दुकोटिप्रभम् ।
शूलं टङ्क-कृपाण-वज्रदहनान्नागेन्द्र-घण्टाशुकम्
हस्ताब्जेष्वभयं वराश्चदधतं तेजोज्ज्वलं चिन्तये।

मन्त्राः—

१. ॐ ह्लीं नमः (शिवमहापुराणम् : विद्येश्वरसंहिता)
२. ॐ ॐ दृशं नमः (मन्त्रमहार्णव) + (पद्मपुराणम्)

३. ॐ रुद्र (पद्मपुराणम्)
४. ॐ एं नमः (स्कन्दपुराणम्)
५. ॐ एं हं औं ऐं ॐ (परम्परागत)
६. ॐ नमः शिवाय (बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट षडक्षर-मन्त्र)
७. ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्,
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।
(बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट महामृत्युञ्जय-मन्त्र)

द्विवक्त्ररुद्राक्षधारणविधिः

विनियोगः—

अस्य श्रीदेवदेवेशमन्त्रस्य अत्रिऋषिः, गायत्री छन्दः, देवदेवेशो देवता, क्ष्रीं बीजं, क्ष्रौं शक्तिः मम चतुर्वर्गसिद्ध्यर्थे रुद्राक्षधारणार्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः—

अत्रिऋषये नमः शिरसि। गायत्री-छन्दसे नमो मुखे। देवदेवेशाय नमो हृदि। क्ष्रीं बीजाय नमो गुह्ये। क्ष्रीं शक्तये नमः पादयोः ।

करादिन्यासः—

ॐ ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ क्ष्रौं तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ ह्रीं मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ क्ष्रां अनमिकाभ्यां हुम्। ॐ क्ष्रीं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । ॐ ॐ करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।

हृदयादिन्यासः—

ॐ ॐ हृदयाय नमः । ॐ क्ष्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ शिखायै वषट् । ॐ क्ष्रौं कवचाय हुम् । ॐ क्ष्रीं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ ॐ अस्त्राय फट् ।

ध्यानम्—

तपनसोमहुताशनलोचनं घनसमानगलं शशिसुप्रभम् ।
अभय-चक्रपिनाकवरान्करैर्दधतमिन्दुधरं गिरिशं भजेत् ॥

मन्त्राः—

१. ॐ नमः (शिवमहापुराणम् : विद्येश्वरसंहिता)
२. ॐ ॐ नमः (मन्त्रमहार्णव) + (पद्मपुराणम्)
३. ॐ खम् (पद्मपुराणम्)
४. ॐ श्रीं नमः (स्कन्दपुराणम्)
५. ॐ क्षीं ह्रीं क्ष्रौं वीं ॐ (परम्परागत)

६. ॐ नमः शिवाय (बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट षडक्षर-मन्त्र)
७. ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्,
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।
(बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट महामृत्युञ्जय-मन्त्र)

त्रिवक्त्ररुद्राक्षधारणविधिः

विनियोगः—

अस्य श्री अग्निमन्त्रस्य वसिष्ठज ऋषिः, गायत्री छन्दः, अग्निर्देवता, ह्रीं बीजं, ह्रूं शक्तिः चतुर्वर्ग-सिद्ध्यर्थे रुद्राक्षधारणार्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः—

वसिष्ठज ऋषये नमः शिरसि। गायत्री छन्दसे नमो मुखे। अग्नि-देवतायै नमो हृदि। ह्रीं बीजाय नमो गुह्ये। हूं शक्तये नमः पादयोः।

करादिन्यासः—

ॐ ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ रं तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ इं मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ ह्रीं अनामिकाभ्यां हुम्। ॐ हूं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्। ॐ ॐ करतलकरपृष्ठभ्यां फट्।

हृदयादिन्यासः—

ॐ ॐ हृदयाय नमः । ॐ रं शिरसे स्वाहा। ॐ ह्रैं शिखायै वषट् । ॐ ह्रीं कवचाय हुम् । ॐ हूं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ ॐ अस्त्राय फट् ।

ध्यानम्—

अष्टशक्तिं स्वस्तिकामातिमुच्चैर्दीर्घैरेभिर्धारयन्तं जपाभम् ।
हेमाकल्पं पद्मसंस्थं त्रिनेत्रं ध्यायेद्वह्निं बद्धमौलिं जराभिः ।

मन्त्राः—

१. ॐ क्लीं नमः (शिवमहापुराणम् : विद्येश्वरसंहिता)
२. ॐ ॐ नमः (मन्त्रमहार्णव) + (पद्मपुराणम्)
३. ॐ वुम् (पद्मपुराणम्)
४. ॐ द्युं द्युं नमः (स्कन्दपुराणम्)
५. ॐ रं ह्रैं ह्रीं ह्रूं औं (परम्परागत)
६. ॐ नमः शिवाय (बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट षडक्षर-मन्त्र)
७. ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्,
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।
(बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट महामृत्युञ्जय-मन्त्र)

चतुर्वक्त्ररुद्राक्षधारणविधिः

विनियोगः—

अस्य श्रीब्रह्मामन्त्रस्य भार्गवऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः, ब्रह्मादेवता, वां बीजं, क्रां शक्तिः अभीष्ट-सिद्धयर्थे रुद्राक्षधारणार्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यासः—

भार्गवऋषये नमः शिरसि। अनुष्टुप्छन्दसे नमो मुखे। ब्रह्मदेवतायै नमो हृदि। वां बीजाय नमो गुह्ये। क्रां शक्तये नमः पादयोः ।

करादिन्यासः—

ॐ ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ वां तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ क्रां मध्यामाभ्यां वषट्। ॐ तां अनामिकाभ्यां हुम्। ॐ हौं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । ॐ ईं करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।

हृदयादिन्यासः—

ॐ ॐ हृदयाय नमः। ॐ वां शिरसे स्वाहा। ॐ क्रां शिखायै वषट् । ॐ तां कवचाय हुम् । ॐ ह्रां नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ ईं अस्त्राय फट् ।

ध्यानम्—

प्रणम्य शिरसा शाश्वदष्टनेत्रं चतुर्मुखम् ।
गायत्रीसहितं देवं नमामि विधिमीश्वरम् ॥

मन्त्राः—

१. ॐ ह्रीं नमः (शिवमहापुराणम् : विद्येश्वरसंहिता)
२. ॐ ह्रीं नमः (मन्त्रमहार्णव) + (पद्मपुराणम्)
३. ॐ ह्रीं (पद्मपुराणम्)
४. ॐ ह्रीं हूं नमः (स्कन्दपुराणम्)
५. ॐ वां क्रां तां हां इं (परम्परागत)
६. ॐ नमः शिवाय (बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट षडक्षर-मन्त्र)
७. ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्,
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।
(बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट महामृत्युञ्जय-मन्त्र)

पञ्चवक्त्ररुद्राक्षधारणविधिः

विनियोगः—

अस्य श्री ब्रह्मामन्त्रस्य श्री ब्रह्माऋषिः; गायत्री छन्दः, ब्रह्मादेवता, ह्रां क्रां वां हां अभीष्ट-सिद्धयर्थे रुद्राक्षधारणार्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः—

बह्मऋषये नमः शिरसि। गायत्री छन्दसे नमो मुखे। श्रीसदाशिवकालाग्निरुद्रदेवतायै नमो हृदि। ॐ बीजाय नमो गुह्ये। स्वाहा शक्तये नमः पादयोः।

करादिन्यासः—

ॐ ॐ अगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्लां तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ आं मध्यमाभ्यां वषद्। ॐ क्ष्म्यौं अनामिकाभ्यां हुम्। ॐ स्वाहा कनिष्ठिकाभ्यां वौषद्। ॐ ह्लां आं क्ष्म्यौं स्वाहा करतलष्पृष्ठाभ्यां फद्।

हृदयादिन्यासः—

ॐ ॐ हृदयाय नमः। ॐ ह्लां शिरसे स्वाहा। ॐ आं शिखायै वषद्। ॐ क्ष्म्यौं कवचाय हुम्। ॐ स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषद्। ॐ ह्लां आं क्ष्म्यौं स्वाहा अस्त्राय फद्।

ध्यानम्—

हावभावविलासार्द्धनारिकं भीषणार्धमथवा महेश्वरम्
दाशसोत्पलकपालशूलिनं चिन्तये जपविद्यौ विभूतये।

मन्त्राः—

१. ॐ ह्लीं नमः (शिवमहापुराणम् : विद्येश्वरसंहिता)
२. ॐ हूं नमः (मन्त्रमहार्णव) + (पद्मपुराणम्)
३. ॐ ह्राम् (पद्मपुराणम्)
४. ॐ श्रीं नमः (स्कन्दपुराणम्)
५. ॐ ह्लां आं क्ष्म्यौं स्वाहा (परम्परागत)
६. ॐ नमः शिवाय (बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट षडक्षर-मन्त्र)
७. ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्,
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।
(बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट महामृत्युञ्जय-मन्त्र)

षद्वक्त्ररुद्राक्षधारणविधिः

विनियोगः—

अस्य श्रीमन्त्रस्य दक्षिणामूर्ति ऋषिः, पंक्तिःछन्दः, कार्तिकियदेवताः ऐं बीजं, सौं शक्तिः, क्लीं कीलकं अभीष्ट-सिद्धचर्थे, रुद्राक्षधारणार्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः—

दक्षिणामूर्तिऋषये नमः शिरसि। पंक्तिश्छन्दसे नमो मुखे। कार्तिकियदेवतायै नमो हृदि। ऐं बीजाय नमो गुह्ये। सौं शक्तये नमः पादयोः।

करादिन्यासः—

ॐ ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ श्रीं मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ क्लीं अनामिकाभ्यां हुम्। ॐ सौं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्। ॐ ऐं करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।

हृदयादिन्यासः—

ॐ ॐ हृदयाय नमः । ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ श्रीं शिखायै वषट् । ॐ क्लीं कवचाय हुम् । ॐ सौं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ ऐं अस्त्राय फट् ।

ध्यानम्—

क्रौञ्चपर्नतविदारणलोलो दानवेन्द्रवनिताकृतलण्डः ।
चूतपल्लवशिरोमणिचोदी भोष्वडानन जगत्परिपाहि ॥

मन्त्राः—

१. ॐ ह्रीं हुं नमः (शिवमहापुराणम् : विद्येश्वरसंहिता)
२. ॐ हूं नमः (मन्त्रमहार्णव) + (पद्मपुराणम्)
३. ॐ ह्रूम् (पद्मपुराणम्)
४. ॐ ह्रीं नमः (स्कन्दपुराणम्)
५. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सौं ऐं (परम्परागत)
६. ॐ नमः शिवाय (बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट षडक्षर-मन्त्र)
७. ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्,
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।
(बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट महामृत्युञ्जय-मन्त्र)

अथ सप्तवक्त्ररुद्राक्षधारणविधिः

विनियोगः—

अस्य श्री अनन्तमन्त्रस्य भगवान् ऋषिः, गायत्रीछन्दः, अनन्तो देवता, क्रीं बीजं, ह्रीं शक्तिः। अभीष्ट-सिद्धयर्थे रुद्राक्षधारणार्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः—

भगवान् ऋषये नमः शिरसि। गायत्री छन्दसे नमो मुखे। अनन्त-देवतायै नमो हृदि। क्रीं बीजाय नमो गुह्ये। ह्रीं शक्तये नमः पादयोः।

करादिन्यासः—

ॐ ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः स्वाहा। ॐ क्रीं मध्यमाभ्यां वषट् । ॐ ग्लौं अनामिकाभ्यां हुम् । ॐ ह्रीं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । ॐ सौं करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।

हृदयादिन्यास—

ॐ ॐ हृदयाय नमः । ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ क्रीं शिखायै वषट् । ॐ ग्लौं कवचाय हुम् । ॐ ह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ सौं अस्त्राय फट् ।

ध्यानम्—

अनन्तं पुण्डरीकाक्षं फणाशतविभूषित्तम् ।
विष्वक्बन्धूक-आकारं कूर्मारूढं प्रपूजयेत् ॥

मन्त्राः—

१. ॐ हुं नमः (शिवमहापुराणम् : विद्येश्वरसंहिता)
२. ॐ हुं नमः (मन्त्रमहार्णव) + (पद्मपुराणम्)
३. ॐ ह्रः (पद्मपुराणम्)
४. ॐ ह्रीं नमः (स्कन्दपुराणम्)
५. ॐ ह्रीं क्रीं ह्रीं सौम् (परम्परागत)
६. ॐ नमः शिवाय (बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट षडक्षर-मन्त्र)
७. ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्,
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।
(बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट महामृत्युञ्जय-मन्त्र)

अथ अष्टवक्त्ररुद्राक्षधारणविधिः

विनियोगः—

अस्य श्री गणेशमन्त्रस्य भार्गवऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, विनायको देवता, ग्रीं बीजम्, आं शक्तिः चतुर्वर्गसिद्ध्यर्थे रुद्राक्षधारणार्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः—

भार्गवः ऋषये नमः शिरसि । अनुष्टुप् छन्दसे नमो मुखे । विनायक-देवतायै नमो हृदि। ग्रीं बीजाय नमो गुह्ये। आं शक्तये नमः पादयोः ।

करादिन्यासः—

ॐ ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ह्रां तर्जनीभ्यां स्वाहा । ॐ ग्रीं मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ लं अनामिकाभ्यां हुम्। ॐ आं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् हुम्। ॐ श्रीं अस्त्राय फट् ।

हृदयादिन्यासः—

ॐ ॐ हृदयाय नमः । ॐ ह्रां शिरसे स्वाहा। ॐ ग्रीं शिखायै वषट् । ॐ लं कवचाय हुम । ॐ आं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ श्रीं अस्त्राय फट् ।

ध्यानम्—

हरतु कुलगणेशो विघ्नसन्धानशेषान् ।
जयतु च सकलं सम्पूर्णतां साधकानाम् ।
पिबतु बटुकनाथः शोणितं निन्दकानां
दिशतु सकल-कामान् कौलिकानां गणेशः ॥

मन्त्राः—

१. ॐ हुं नमः (शिवमहापुराणम् : विद्येश्वरसंहिता)
२. ॐ सः हूं नमः (मन्त्रमहार्णव) + (पद्मपुराणम्)
३. ॐ कम् (पद्मपुराणम्)
४. ॐ कं वं नमः (स्कन्दपुराणम्)
५. ॐ ह्रां ग्रीं लं आं श्रीम् (परम्परागत)
६. ॐ नमः शिवाय (बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट षडक्षर-मन्त्र)
७. ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्,
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।
(बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट महामृत्युञ्जय-मन्त्र)

अथ नववक्त्ररुद्राक्षधारणविधिः

विनियोगः—

अस्य श्री भैरवमन्त्रस्य नारद ऋषिः, गायत्री छन्दः, भैरवो देवता, वं बीजं, ह्रीं शक्तिः, अभीष्ट-सिद्धयर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः—

नारदऋषये नमः शिरसि । गायत्री छन्दसे नमो मुखे । भैरवदेवतायै नमो हृदि, वैं बीजाय नमो गुह्ये । ह्रीं शक्तये नमः पादयोः ।

करादिन्यासः—

ॐ ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा । ॐ वैं मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ यैं अनामिकाभ्यां हुम् । ॐ रैं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । ॐ लैं करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।

हृदयादिन्यासः—

ॐ ॐ हृदयाय नमः । ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ वैं शिखायै वषट् । ॐ यैं कवचाय हुम् । ॐ रैं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ लैं अस्त्राय फट् ।

ध्यानम्—

कपालहस्तं धुलगोपवीतं कृष्णच्छविं दण्डधरं त्रिनेत्रम् ।
अचिन्त्यमाद्यमनुपानमत्तं हृदि स्मरेद्भैरवमिष्टदं नृणाम् ॥

मन्त्राः—

१. ॐ ह्रीं नमः (शिवमहापुराणम् : विद्येश्वरसंहिता)
२. ॐ हं नमः (मन्त्रमहार्णव) + (पद्मपुराणम्)
३. ॐ जूम् (पद्मपुराणम्)
४. ॐ ह्रीं नमः (स्कन्दपुराणम्)
५. ॐ ह्रीं वँ यँ रँ लँ (परम्परागत)
६. ॐ नमः शिवाय (बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट षडक्षर-मन्त्र)
७. ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्,
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।
(बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट महामृत्युञ्जय-मन्त्र)

अथ दशवक्त्ररुद्राक्षधारणविधिः

विनियोगः—

अस्य श्रीजनार्दनमन्त्रस्य नारदऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः, जनार्दनो देवता, श्रीं बीजं, ह्रीं शक्तिः अभीष्ट-सिद्ध्यर्थे रुद्राक्षधारणार्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः—

नारदऋषये नमः शिरसि । अनुष्टुप्छन्दसे नमो मुखे । जनार्दन देवतायै नमो हृदि। श्रीं बीजाय नमो गुह्ये । ह्रीं शक्तये नमः पादयोः।

करादिन्यासः—

ॐ ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ श्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा । ॐ ह्रीं मध्यामाभ्यां वषट्। ॐ क्लीं अनामिकाभ्यां हुम् । ॐ व्रीं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । ॐ ॐ करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।

ध्यानम्—

विष्णु-शारदचन्द्रकोटिसदृशं शङ्खं रथाङ्गं गदा—
मम्भोजं दधतं सिताब्जनिलयं कान्त्यां जगन्मोहनम् ।
आबाद्धाङ्गहार-कुण्डलमहामौलिस्फुरत्कङ्कणं
श्री-वत्साङ्कमुदार-कौस्तुभधरं वन्दे मुनीन्द्रैः स्तुतम् ॥

मन्त्राः—

१. ॐ ह्रीं नमः नमः (शिवमहापुराणम् : विद्येश्वरसंहिता)
२. ॐ ह्रीं नमः (मन्त्रमहार्णव) + (पद्मपुराणम्)
३. ॐ क्षम् (पद्मपुराणम्)
४. ॐ ह्रीं नमः (स्कन्दपुराणम्)
५. ॐ ह्रीं क्लीं व्रीं ओम् (परम्परागत)
६. ॐ नमः शिवाय (बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट षडक्षर-मन्त्र)
७. ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्,
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।
(बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट महामृत्युञ्जय-मन्त्र)

अथ एकादशवक्त्ररुद्राक्षधारणविधिः

विनियोगः—

अस्य श्रीरुद्रमन्त्रस्य काश्यपऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः, रुद्रोदेवता, रूं बीजं, क्षुं शक्तिः अभीष्ट-सिद्धयर्थे रुद्राक्षधारणार्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः—

काश्यपऋषये नमः शिरसि । अनुष्टुप् छन्दसे नमो मुखे । रुद्रदेवतायै नमो हृदि। रूँ बीजाय नमो गुह्ये। क्षूं शक्तये नमः पादयोः ।

करादिन्यासः—

ॐ ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ रूं तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ क्षूं मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ मूं अनामिकाभ्यां हुम् । ॐ यूं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । ॐ करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

हृदयादिन्यासः—

ॐ ॐ हृदयाय नमः । ॐ रूँ शिरसे स्वाहा । ॐ क्षूं शिखायै वषट् । ॐ मूं कवचाय हुम् । ॐ यूं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ औं अस्त्राय फट् ।

ध्यानम्—

बालार्कायुततेजसं धृतजटाजूटेन्जरवण्डोज्ज्वलं ।
नागेन्द्रैः कृतशेखरं जपवटीं शूलं कपालं करैः ॥
खट्वाङ्गं दधतं त्रिनेत्रविलसत्पञ्चाननं सुन्दरं ।
व्याघ्रत्वक्परिधानमब्जनिलयं श्रीनीलकण्ठं भजेत् ॥

मन्त्राः—

१. ॐ ह्रीं हुं नमः (शिवमहापुराणम् : विद्येश्वरसंहिता)
२. ॐ श्रीं नमः (मन्त्रमहार्णव) + (पद्मपुराणम्)

३. ॐ श्रीम् (पद्मपुराणम्)
४. ॐ श्रीं नमः (स्कन्दपुराणम्)
५. ॐ रूं मूं यूं औम् (परम्परागत)
६. ॐ नमः शिवाय (बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट षडक्षर-मन्त्र)
७. ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्,
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।
(बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट महामृत्युञ्जय-मन्त्र)

अथ द्वादशवक्त्ररुद्राक्षधारणविधिः

विनियोगः—

अस्य श्रीसूर्यमन्त्रस्य भार्गवऋषिः, गायत्रीछन्दः, विश्वेश्वरो देवता, ह्रीं बीजं, श्रीं शक्तिः, घृणिः कीलकं रुद्राक्षधारणार्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः—

भार्गवऋषये नमः शिरसि । गायत्रीछन्दसे नमो मुखे । विश्वेश्वरो देवतायै नमो हृदि । ह्रीं बीजाय नमो गुह्ये । श्रीं शक्तये नमः पादयोः ।

करादिन्यासः—

ॐ ॐ श्रीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ नमः ह्रीं श्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ क्षौं श्रीं मध्यमाभ्यां वषट् । ॐ ह्रीं श्रीं अनामिकाभ्यां हुम् । ॐ णिः श्रीं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । ॐ ह्रीं क्षौं घृणिः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।

हृदयादिन्यासः—

ॐ ॐ श्रीं हृदयाय नमः । ॐ ह्रीं श्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ क्षौं श्रीं शिखायै वषट्। ॐ ह्रीं श्रीं कवचाय हुम् । ॐ णिः श्रीं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ ह्रीं क्षौं घृणिः श्रीं अस्त्राय फट् ।

ध्यानम्—

शोणाम्भोरुहसंस्थित-त्रिनयनं वेदत्रयी-विग्रहं ।
दानाम्भोजयुगाभयानि दधत हस्तैः प्रवालप्रभम् ॥
केयूराङ्गदकङ्कणद्वयधरं कर्णेर्लसत्कुण्डलं ।
लोकोत्पत्ति-विनाशपालनकरं सूर्यगुणाघ्रिं भजेत् ॥

मन्त्राः—

१. ॐ क्रों क्षौं रौं नमः (शिवमहापुराणम् : विद्येश्वरसंहिता)
२. ॐ हूं ह्रीं नमः (मन्त्रमहार्णव) + (पद्मपुराणम्)

३. ॐ ह्रां (पद्मपुराणम्)
४. ॐ ह्रां ह्रीं नमः (स्कन्दपुराणम्)
५. ॐ ह्रीं क्षौं घृणिः श्रीम् (परम्परागत)
६. ॐ नमः शिवाय (बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट षडक्षर-मन्त्र)
७. ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्,
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।
(बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट महामृत्युञ्जय-मन्त्र)

अथ त्रयोदशवक्त्ररुद्राक्षधारणविधिः

विनियोगः—

अस्य श्रीइन्द्रमन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः, पंक्तिः छन्दः, इन्द्रो देवता, ई बीजम्, आपः इति शक्तिः रुद्राक्षधारणार्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः—

ब्रह्माऋषये नमः शिरसि । पंक्तिः छन्दसे नमो मुखे । इन्द्रो देवतायै नमो हृदि। ई बीजाय नमो गुह्ये । आपः इति शक्तये नमः पादयोः ।

करादिन्यासः—

ॐ ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ई तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ यां मध्यमाभ्यां वषद्। ॐ आपः अनामिकाभ्यां हुम् । ॐ ॐ कनिष्ठिकाभ्यां वौषद् । ॐ ई यां आपः ओं करतलकरपृष्ठाभ्यां फद् ।

हृदयादिन्यासः—

ॐ ॐ हृदयाय नमः । ॐ ई शिरसे स्वाहा। ॐ यां शिखायै वषद् । ॐ आपः कवचाय हुम् । ॐ ॐ नेत्रत्रयाय वौषद्- । ॐ ई यां आपः ओं अस्त्राय फद् ।

ध्यानम्—

पीतवर्णसहस्राक्षं वज्रपद्मधरं विभुम् ।
सर्वालङ्कारसंयुक्तं नौमीन्द्रादिकमीश्वरम् ॥

मन्त्राः—

१. ॐ ह्रीं नमः नमः (शिवमहापुराणम् : विद्येश्वरसंहिता)
२. ॐ क्षां चौं नमः (मन्त्रमहार्णव) + (पद्मपुराणम्)
३. ॐ क्षौम् (पद्मपुराणम्)
४. ॐ क्ष्यैं स्तौं नमः (स्कन्दपुराणम्)

५. ॐ ईं यां आप ओम् (परम्परागत)
६. ॐ नमः शिवाय (बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट षडक्षर-मन्त्र)
७. ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्,
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।
(बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट महामृत्युञ्जय-मन्त्र)

अथ चतुर्दशवक्त्ररुद्राक्षधारणविधिः

विनियोगः—

अस्य श्रीहनुमन्मन्त्रस्य रामचन्द्रऋषिः, जगतीछन्दः, श्रीहनुमद्देवता, औं बीजं, हस्क्रैं शक्तिः अभीष्ट-सिद्धयर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः—

रामचन्द्रऋषये नमः शिरसि । जगती छन्दसे नमो मुखे । हनुमद्देवतायै नमो हृदि। औं बीजाय नमो गुह्ये । हस्क्रैं शक्तये नमः पादयोः ।

करादिन्यासः—

ॐ ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ औं तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ हस्क्रैं मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ खक्रैं अनामिकाभ्यां हुम् । ॐ हस्रौं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । ॐ हसंक्रैं करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।

हृदयादिन्यासः—

ॐ ॐ हृदयाय नमः । ॐ औं शिरसे स्वाहा। ॐ हस्क्रैं शिखायै वषट् । ॐ खक्रैं कवचाय हुम्। ॐ हस्रों नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ हृसक्रैं अस्त्राय फट् ।

ध्यानम्—

उद्यन्मार्तण्डकोटिप्रकटरुचियुतं चारुवीरासनस्थं ।
मौञ्जीयज्ञोपवीताभरणरुचिशिखाशोभितं कुण्डलाभ्याम् ॥
भक्तानामिष्टदानप्रवणमनुदिनं वेदनादप्रमोदं ।
ध्यायेद्देवं विधेयं प्लवगकुलपतिं गोष्पदीभूतवादिम् ॥

मन्त्राः—

१. ॐ नमः (शिवमहापुराणम् : विद्येश्वरसंहिता)
२. ॐ नमो नमः (मन्त्रमहार्णव) + (पद्मपुराणम्)
३. ॐ त्राम् (पद्मपुराणम्)
४. ॐ ङं मां नमः (स्कन्दपुराणम्)

५. ॐ औं हस्क्रें खक्रैं हस्रौं हसक्रैम् (परम्परागत)
६. ॐ नमः शिवाय (बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट षडक्षर-मन्त्र)
७. ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्,
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।
(बृहज्जाबालोपनिषद् द्वारा निर्दिष्ट महामृत्युञ्जय-मन्त्र)

बिंदु और रेखा : रुद्राक्ष और रुद्राक्षमाला

तंत्र में बिंदु को शिव और रेखा को शिवा कहा गया है। बिंदु ही तनता हुआ (तनोति इति तन्त्रः), बढ़ता हुआ (बृंहणशील) रेखा बन जाता है। ऊर्णनाभ (मकड़ा) अपनी नाभि से तंतु की रेखाएँ फैलाकर जाल बुनता है। फिर जब चाहे, वह तंतुओं को अपने भीतर समेट लेता है। सूर्य अपने केंद्रत्व से किरणों का जाल बुनकर उसके बीच बैठा होता है। शिव बिंदु और शिवा रेखा हैं। शिव की बिंदुभूत सत्ता को शिवा प्रकृति-रूप में फैला देती है। पुरुष और प्रकृति, यह परस्पराश्रयण एक अनादि-क्रीड़ा है।

रुद्राक्ष बिंदु और रुद्राक्षमाला रेखा है। मालाकृति (सूत्रित अक्षमाला) एक प्रकृति-गर्भ है, जिसके भीतर रुद्राक्ष का हिरण्यमय अस्तित्व स्थिर होता है।

अक्षमाला सृष्टि-प्रकृति है, रुद्राक्ष गर्भित बीजाक्षर। सृष्टि स्वयं एक गर्भ है। उसमें स्रष्टा विश्राम करता है। बच्चा गर्भ में निश्चिंत होता है। गर्भ से निकलने के बाद भी वह अपने परिवेश का अनुकूलित-अभीप्सित गर्भ बनाता है और इस प्रकार संपूर्ण जीवन ही एक गर्भ-निर्माण-प्रक्रिया है। अपनी इच्छा-आकांक्षा की अनुकूलता में जो वस्तु-विन्यास और विचार-विनियोग होता है, वही गर्भनिर्माण है।

बच्चा दौड़-दौड़कर मा के पास जाता और आँचल से चिपक जाता है। जन्म के बाद भी मा और बच्चे मा के गर्भतंतु से जुड़े होते हैं। उसे काट दिया जाता है। पर बच्चा अपने संपूर्ण जीवन में केवल गर्भ-निर्माण ही करता है। मंदिर का गर्भगृह होता है।

मुंडमाला, खड्गमाला, अक्षमाला ये सभी भिन्न गर्भ हैं, जिसमें देवाधिवास का विश्रांतिस्थल निर्मित होता है। अक्षमाला रुद्राक्ष का गर्भस्थान है।

यह सृष्टि आक्षरिक अस्तित्व और स्फोट पर टिकी है। इसलिए स्फोटाक्षर के अनाहत नाद को सर्वश्रेष्ठ गर्भ कहा गया है, यहाँ सच्चिदानंद परमविश्राम और निस्पंद की अवस्था में होता है। अक्षमाला गर्भ है। सृष्टिगर्भ। यह रहस्य बीजाक्षरभूत रुद्राक्ष और गर्भभूत अक्षमाला के निर्माण और उसमें अनुप्रवेश से ही स्पष्ट हो सकता है।

द्वितीय अध्याय

प्रयोग-प्रकरण

महामृत्युंजय मंत्र-प्रयोग

महामृत्युंजय मंत्र को मंत्रराज कहा गया है। 'महामृत्युंजय' शिव का पर्याय और विशेषण दोनों है। इस मंत्र के बीस से अधिक मंत्र-रूप हैं। इसका बीजाक्षर-मंत्ररूप है, 'ॐ जूँ सः ।' यह त्र्यक्षर मंत्र अमोघ कहा गया है। वेदों में जिस महामृत्युंजय मंत्र का उल्लेख है, वह इस प्रकार है,—

"त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ।"

जपादि-काल में इसके आदि में 'ॐ' लगा दिया जाता है। यदि इस मंत्र को संपुटित कर जप किया जाए तो यह सर्वोपरि फलदायक सिद्ध हो जाता है। संपुटित महामृत्युंजय मन्त्र-रूपों में जो श्रेष्ठ, सर्वफलदायक और अनुभूत मंत्र है, वह इस प्रकार है,—

"ॐ हौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वः
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्
भूर्भुवः स्वरों जूँ सः हौं ॐ ।"

इससे बड़ा कोई मंत्र नहीं। भगवान् विष्णु भी जब संकटापन्न और नान्यथोपाय हुए थे तो भगवान् शंकर ने उन्हें यह मंत्र दिया था। इस मंत्र से रोगनिवारण, ग्रहशांति, आयुर्वृद्धि तो होती ही है, इसके जप, अनुष्ठान, पुरश्चरण से त्रिलोक-त्रिकाल-सिद्धि संभव है। इस प्रयोग-प्रकरण में इस संपुटित मंत्र के जप और यंत्रपूजन का विधान शास्त्रसम्मत-रूप में उपस्थित किया जा रहा है।

यह मंत्र मृत्यु से मोक्ष (मृत्योर्मुक्षीय) और अमृत से तादूप्य (माऽमृतात्) का सोपान है। इसमें त्र्यंबक (त्रिकाल, त्रिलोक, त्रिनेत्र, त्रित्व-ओंकारेश्वर, त्रि-अंबा के प्रिय तथा त्रि-अंबा के संपोषक शिव) की उपासना (यजामहे) है। वह सुगंधि-युक्त है। वही पुष्टि का वर्धन करनेवाला है। इसमें उन परम पिता परमेश्वर त्र्यंबक शिव से प्रार्थना की गई है कि वे हमें उर्वारुक (पृथुल फूँट या ककडी) की तरह मृत्यु-लता-विच्छिन्न कर अमृतत्व से जोड़ दें।

मन्त्रः—

"ॐ हौं ॐ जू सः भूर्भुवः स्वः
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्,
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्,
भूर्भुवः स्वरों जू सः हौं ॐ ।"

मन्त्रोद्धारः—

तारः खंव्यपिनीचन्द्रयुक्तारश्चतुराननः
अर्धीशबिन्दुसंयुक्तो हंसः सर्गी च भूर्भुवः ।
सकारो बालसर्गाद्यस्त्र्यम्बकं वैदिको मनुः,
भूर्भुवः स्वर्भुजङ्गेशस्तारी जू सर्गवान्भृगुः ।
आकाशो मनु बिन्द्वाद्यः प्रणवान्तोमनूत्तमः,
महामृत्युञ्ञयारव्येयं पञ्चाशद्वर्णनिर्मितः ।

(तार (ॐ) व्यापिनी चन्द्रयुत खं (हौं) एवं तार (ॐ) फिर अर्धीश बिन्दुसहित चतुरानन (जूं) सर्गी हंसः (सः) भूर्भुव तथा बाल विसर्ग-सहित सकार (स्वः) फिर 'त्र्यंबकं यजामहे' वैदिक मंत्र फिर 'भूर्भुवः स्वः' तार-युत भुजंगेश (रों) जूं सर्गवान् भृगु (सः) मनु एवं बिन्दुसहित आकाश (हौं) तथा अंत में प्रणव लगाने से ५0 अक्षरों से निर्मित महामृत्युंजय-संज्ञक यह सर्वश्रेष्ठ मंत्र निर्मित होता है।)

(महामृत्युञ्जयमन्त्रमाह। तार इति। तारः ॐ । व्यापिनी चन्द्रयुक् औबिन्दुयुतं खं हः हौं। तारः ॐ। अर्धीशबिन्दुयुक्तश्चतुराननः ॐ बिन्दुयुतोजः जूं। सर्गी हंसः सः। भूर्भुवः स्वरूपम् । सकारो बाल-विसर्गाद्योवविसर्गयुतः सकारः स्वः। त्र्यम्बकं वैदिको मन्त्रः। यथा—त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्। इति। भूर्भुवः स्वः स्वरूपम्। तारयुतोभुजङ्गेशोरः रों। जू स्वरूपम्। सर्गवान्भृगुः सः। मनुबिन्द्वाद्यः आकाशः औबिन्दुयुतोहः हौं। प्रणवान्तश्चायं मन्त्रः। यथा—'ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्, उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् भूर्भुवः स्वरों जूं सः हौं ॐ ।')

सङ्कल्पः—

देशकालौ संकीर्त्य

मम शरीरे जराद्यमुकरोगनिरासद्वारा सद्यः आरोग्यार्थममुककामनासिद्ध्यर्थं वा श्रीमहामृत्युञ्जयदेवता-प्रीत्यर्थममुकसंख्यापरिमित-श्रीमहामृत्युंञ्जय-जपं करिष्ये।

गुरुदेवादिस्मरणम्—

ॐ गुरवे नमः ।

ॐ गणपतये नमः ।

ॐ स्वेष्टदेवतायै नमः ।

(इति नत्वा न्यासादिकं, कुर्यात्, तद्यथा—)

विनियोगः—

ॐ अस्य श्रीमहामृत्युञ्जयमन्त्रस्य वामदेवकहोलवसिष्ठा ऋषयः। पङ्क्तिगायत्र्यनुष्टुभश्छन्दांसि। सदाशिवमहामृत्युञ्जय रुद्रा देवताः। श्रीं बीजम्। ह्रीं शक्तिः। महामृत्युञ्जय-प्रीतये जपे विनियोगः।

(इस (महामृत्युंजय) मंत्र के वामदेव, कहोल एवं वसिष्ठ ऋषि हैं। भगवान् रुद्र ने पंक्ति, गायत्री एवं अनुष्टुप् छंद बतलाए हैं। सदा-शिव महामृत्युंजय एवं रुद्र इसके देवता हैं। श्रीम् (रमा) बीज तथा ह्रीं (माया) इसकी शक्ति हैं। महामृत्युंजय (भगवान् शंकर) की प्रसन्नता के लिए इसका विनियोग होता है।)

न्यासः

ऋष्यादिन्यासः—

१. ॐ वामदेवकहोलवसिष्ठऋषिभ्यो नमः शिरसि ।
२. पङ्क्तिगायत्र्यनुष्टुप्छन्दोभ्यो नमः मुखे ।
३. सदाशिवमहामृत्युञ्जयरुद्रदेवताभ्यो नमः हृदि ।
४. श्रीं बीजाय नमः गुह्ये ।
५. ह्रीं शक्तये नमः पादयोः ।
६. विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

करन्यासः—

१. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं ॐ नमो भगवते रुद्राय शूलपाणये स्वाहा—अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।
२. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः यजामहे ॐ नमो भगवते रुद्राय अमृतमूर्त्तये मां जीवय तर्जनीभ्यां नमः।
३. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं ॐ नमो भगवते रुद्राय चन्द्रशिरसे जटिने स्वाहा—मध्यमाभ्यां नमः ।
४. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः उर्वारुकमिव बन्धनात् ॐ नमो भगवते रुद्राय त्रिपुरान्तकाय हां हीं—अनामिकाभ्यां नमः ।

५. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मृत्योर्मुक्षीय ॐ नमो भगवते रुद्राय त्रिलोचनाय ऋग्यजुःसाममन्त्राय—कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।

६. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः माऽमृतात् ॐ नमो भगवते रुद्राय ॐ अग्नित्रयाय ज्वल ज्वल मां रक्ष रक्ष अघोरास्त्राय—करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

हृदयादिषडङ्गन्यासः—

१. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं ॐ नमो भगवते रुद्राय शूलपाणये—हृदयाय नमः।

२. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः यजामहे ॐ नमो भगवते रुद्राय अमृतमूर्त्तये मां जीवय-शिरसे स्वाहा ।

३. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं ॐ नमो भगवते रुद्राय चन्द्रशिरसे जटिने स्वाहा—शिखायै वषट् ।

४. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः उर्वारुकमिव बन्धनात् ॐ नमो भगवते रुद्राय त्रिपुरान्तकाय हां हीं—कवचाय हुम् ।

५. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मृत्योर्मुक्षीय ॐ नमो भगवते रुद्राय त्रिलोचनाय ऋग्यजुःसाममन्त्राय—नेत्रत्रयाय वौषट्।

६. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः माऽमृतात् ॐ नमो भगवते रुद्राय ॐ अग्नित्रयाय ज्वल ज्वल मां रक्ष रक्ष अघोरास्त्राय—फट् ।

मन्त्रवर्णन्यासः—

१. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यं नमः (पूर्वमुखे)।
२. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः बं नमः (पश्चिममुखे)।
३. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः कं नमः (दक्षिणमुखे)।
४. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः यं नमः (उत्तरमुखे)।
५. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः जां नमः उरसि ।
६. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मं नमः कण्ठे ।
७. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः हें नमः मुखे ।
८. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः सुं नमः नाभौ ।
९. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः गं नमः हृदि ।
१०. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः धिं नमः पृष्ठे ।
११. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः पुं नमः कुक्षौ ।
१२. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः ष्टिं नमः लिङ्गे ।
१३. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः वं नमः गुदे ।
१४. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः र्धं नमः दक्षिणोरुमूले ।
१५. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः नं नमः वामोरुमूले ।
१६. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः उं नमः दक्षिणोरुमध्ये ।

१७. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः वां नमः वामोरुमध्ये ।
१८. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः रुं नमः दक्षिणजानुनि ।
१९. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः कं नमः वामजानुनि ।
२०. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मिं नमः दक्षिणजानुवृत्ते ।
२१. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः वं नमः वामजानुवृत्ते ।
२२. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः बं नमः दक्षिणस्तने ।
२३. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः धं नमः वामस्तने ।
२४. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः नान्नमः दक्षिणपार्श्वे ।
२५. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मृं नमः वामपार्श्वे ।
२६. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्यों नमः दक्षिणापादे ।
२७. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः र्मुं नमः वामपादे ।
२८. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः क्षीं नमः दक्षकरे ।
२९. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः यं नमः वामकरे ।
३०. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मां नमः दक्षनासायाम् ।
३१. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मृं नमः वामनासायाम् ।
३२. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः तान्नमः मूर्ध्नि ।

पदन्यासः—

१. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यंबकं नमः शिरसि ।
२. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः यजामहे भ्रुवोः ।
३. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः सुगन्धिं नेत्रयोः ।
४. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः पुष्टिवर्धनं मुखे ।
५. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः उर्वारुकम् गण्डयोः ।
६. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः इव हृदये ।
७. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः बन्धनात् जठरे ।
८. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मृत्योः लिङ्गे ।
९. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मुक्षीय ऊर्वोः ।
१०. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मा जान्वोः ।
११. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः अमृतात् पादयोः ।

ध्यानम्—

हस्ताम्भोजयुगस्थकुम्भयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरः ।
सिञ्चन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्के सकुम्भौ करौ ।
अक्षस्रङ्मृगहस्तमम्बुजगतं मूर्द्धस्थचन्द्रस्रवत्पीयूषोन्नतनुं
भजे सगिरिजं मृत्युञ्जयं त्र्यम्बकम् ।

(अपनी गोद में दोनों हाथों में स्थित कुंभ लिए हुए, उसके ऊपर के दोनों हाथों के कुंभों से जल लेकर, उसके भी ऊपर के दोनों हाथों से अपने सर पर अभिसिंचन करते हुए, शेष दोनों हाथों में अक्षमाला और मृग (मुद्रा) धारण किए हुए, मस्तक पर चंद्रमा से छलकते अमृत से आप्लावित शरीरवाले, पार्वती साथ स्थित, तीन नेत्रवाले मृत्युंजय (भगवान् शंकर) का ध्यान करता हूँ ।)

मुद्राप्रदर्शनम्

१. मुष्टिमुद्रा—

मुष्टिं दक्षिणहस्तेन विधायोर्ध्वं समुन्नयेत् मुद्रामुष्ट्यभिधाख्याता सर्वविघ्न-विनाशिनी।

२. मृगमुद्रा—

दक्षस्यानामिकाङ्गुष्ठमध्यग्राणि योजयेत् शिष्टे द्वे उच्छ्रिते कुर्यान्मृगमुद्रेयमीरिता।

३. शक्तिमुद्रा—

मुष्टौ करौ विधाय द्वौ वामस्यापरिदक्षिणम् कृत्वा शिरसि युञ्जीत शक्तिमुद्रेयमीरिता ।

४. लिङ्गमुद्रा—

उच्छ्रितं दक्षिणाङ्गुष्ठं वामाङ्गुष्ठेन बन्धयेत् वामाङ्गुलीदक्षिणाभिरङ्गुलीभिश्च बन्धयेत् ।

५. पञ्चमुखमुद्रा—

मणिबन्धकरौ युक्तवङ्गुल्यग्राणि मेलयेत् मुद्रापञ्चमुखाख्येयं दर्शिना शिवतोषिणी।

पीठपूजनम्—

पीठादौ रचिते सर्वतोभद्रमण्डले लिङ्गतोभद्रमण्डले वा (प्राणप्रतिष्ठिते यन्त्रे) पीठदेवस्य पूजनं कुर्यात् पञ्चोपचारैः षोडशोपचारैः वा ।

मन्त्रः—

"ॐ मं मण्डूकादि परतत्त्वान्तपीठदेवताभ्यो नमः।"
इति मन्त्रेण पूजयेत्
पीठदेवताः सम्पूज्य पीठशक्तीः पूजयेत् ।

पीठमध्ये

१. ॐ आधारशक्तये नमः	ॐ आधारशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
२. ॐ प्रकृतये नमः	ॐ प्रकृति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

३. ॐ कूर्माय नमः ॐ कूर्म श्रीपादुकां
पूजयामि तर्पयामि नमः ।
४. ॐ शेषाय नमः ॐ शेष श्रीपादुकां
पूजयामि तर्पयामि नमः ।
५. ॐ पृथिव्यै नमः ॐ पृथिवी श्रीपादुकां
पूजयामि तर्पयामि नमः ।
६. ॐ क्षीरसमुद्राय नमः ॐ क्षीरसमुद्र श्रीपादुकां
पूजयामि तर्पयामि नमः ।
७. ॐ श्वेतद्वीपाय नमः ॐ श्वेतद्वीप श्रीपादुकां
पूजयामि तर्पयामि नमः ।
८. ॐ मणिमण्डपाय नमः ॐ मणिमण्डप श्रीपादुकां
पूजयामि तर्पयामि नमः ।
९. ॐ कल्पवृक्षाय नमः ॐ कल्पवृक्ष श्रीपादुकां
पूजयामि तर्पयामि नमः ।
१०. ॐ मणिवेदिकाय नमः ॐ मणिवेदी श्रीपादुकां
पूजयामि तर्पयामि नमः ।
११. ॐ रत्नसिंहासनाय नमः ॐ रत्नसिंहासन श्रीपादुकां
पूजयामि तर्पयामि नमः ।

पीठ-दिक्कोणे

१. (आग्नेये) ॐ धर्माय नमः ॐ धर्म श्रीपादुकां
पूजयामि तर्पयामि नमः ।
२. (नैर्ऋत्ये) ॐ ज्ञानाय नमः ॐ ज्ञान श्रीपादुकां
पूजयामि तर्पयामि नमः ।
३. (वायव्ये) ॐ वैराग्याय नमः ॐ वैराग्य श्रीपादुकां
पूजयामि तर्पयामि नमः ।
४. (ऐशान्ये) ॐ ऐश्वर्याय नमः ॐ ऐश्वर्य श्रीपादुकां
पूजयामि तर्पयामि नमः ।
५. (पूर्वे) ॐ अधर्माय नमः ॐ अधर्म श्रीपादुकां
पूजयामि तर्पयामि नमः ।
६. (दक्षिणे) ॐ अज्ञानाय नमः ॐ अज्ञान श्रीपादुकां
पूजयामि तर्पयामि नमः ।
७. (पश्चिमे) ॐ अवैराग्याय नमः ॐ अवैराग्य श्रीपादुकां
पूजयामि तर्पयामि नमः ।
८. (उत्तरे) ॐ अनैश्वर्याय नमः ॐ अनैश्वर्य श्रीपादुकां
पूजयामि तर्पयामि नमः ।

पुनः पीठमध्ये

१. ॐ अनन्ताय नमः	ॐ अनन्त श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
२. ॐ पद्माय नमः	ॐ पद्म श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
३. ॐ अं द्वादशकलात्मने सूर्यमण्डलाय नमः	ॐ सूर्यमण्डल श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
४. ॐ उं षोडशकलात्मने सोममण्डलाय नमः	ॐ सोममण्डल श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
५. ॐ रं दशकलात्मने वह्निमण्डलाय नमः	ॐ वह्निमण्डल श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
६. ॐ सं सत्त्वाय नमः	ॐ सत्त्व श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
७. ॐ रं रजसे नमः	ॐ रजस् श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
८. ॐ तं तमसे नमः	ॐ तमस् श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
९. ॐ आं आत्मने नमः	ॐ आत्मन् श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
10. ॐ अं अन्तरात्मने नमः	ॐ अन्तरात्मन् श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
११. ॐ पं परमात्मने नमः	ॐ परमात्मन् श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
१२. ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः	ॐ ज्ञानात्मन् श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

पीठदिक्षु पूर्वादिक्रमेण

१. (पूर्वे)	ॐ वामायै नमः	ॐ वामा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
२. (आग्नेये)	ॐ ज्येष्ठायै नमः	ॐ ज्येष्ठा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
३. (दक्षिणे)	ॐ रौद्रयै नमः	ॐ रौद्री श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
४. (नैर्ऋत्ये)	ॐ काल्यै नमः	ॐ काली श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
५. (पश्चिमे)	ॐ कलविकरण्यै नमः	ॐ कलविकरणी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

६. (वायव्ये) ॐ बलविकरण्यै नमः ॐ बलविकरणी श्रीपादुकां
पूजयामि तर्पयामि नमः ।
७. (उत्तरे) ॐ बलप्रमथिन्यै नमः ॐ बलप्रमथिनी श्रीपादुकां
पूजयामि तर्पयामि नमः ।
८. (ऐशान्ये) ॐ सर्वभूतदमन्यै नमः ॐ सर्वभूतदमनी श्रीपादुकां
पूजयामि तर्पयामि नमः ।
९. (मध्ये) ॐ मनोन्मन्यै नमः ॐ मनोन्मनी श्रीपादुकां
पूजयामि तर्पयामि नमः ।

पुष्पाद्यासनम्

पीठपूजान्ते

ॐ मं मण्डूकादि परतत्त्वान्त-पीठ-देवताभ्यो नमः ॐ पीठदेवता श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

पुष्पाद्यासनम्

ॐ नमो भगवते सकलगुणात्मशक्तियुताय अनन्ताय योगपीठात्मने नमः।
ॐ योगपीठात्मन् श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

यन्त्रस्थापनम्

[(प्राणप्रतिष्ठिते सम्पूजिते च) पीठमण्डलोपरि स्वर्ण-(रजत, ताम्र वा) आदिनिर्मितं पूर्वतः प्राण-प्रतिष्ठितं यन्त्रं मूर्तिं वा निधाय घृतेनाभ्यज्य तदुपरि दुग्धारां जलधारां च दत्त्वा स्वच्छवस्त्रेणाशोष्य पीठमध्ये संस्थाप्य पुनर्ध्यात्वा मूलेन (मन्त्रेण) यन्त्रं मूर्तिं वा प्रकल्प्य पञ्चोपचारैः षोडशोपचारैः वा सम्पूजयेत्।]

आवरणपूजाज्ञा-ग्रहणम् (पुष्पाञ्जलि-पूर्वकम्)

संविन्मयः परोदेवः परामृत-रसप्रिय ।
अनुज्ञां शिव मे देहि परिवारार्चनाय मे ।

परिवारार्चनम् (चक्रार्चनम्)

प्रथमावरणम्

१. (ऐशान्ये)—'ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्त सदाशिवोम्।' ॐ ईशानाय नमः[*]। ॐ ईशान श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

[*] महा मृत्युंजय-मंत्र-प्रयोग में चक्रार्चन (यंत्रपूजन) के ९४ 'नमः' मंत्र हैं। चक्रार्चन के समय सामने जो मंत्र होता है, उस पर ९४ अंकों का निर्देश होता है। प्रथम संख्यांकित 'नमः'— युक्त मंत्र पढकर यंत्र पर उत्कीर्ण प्रथम संख्यांकित स्थल पर अक्षत-पुष्प-जल समर्पित करना होता है। इसी तरह २0वें मंत्र से २0 लिखे यंत्र-स्थल पर पुष्पांजलि देनी है। इसी प्रकार ९४ मंत्रों के साथ यंत्र पर ९४ पूजन-स्थल होते हैं। "श्री पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः" कहने का तात्पर्य है, यंत्र पर उत्कीर्ण अंक-स्थल पर तत् तत् देवता की पूजा करता हूं, तर्पण करता हूं, अक्षत-पुष्पांजलि चढाता हूं।

२. (पूर्वे)—'ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोद्यात्।' ॐ तत्पुरुषाय नभः[२]। ॐ तत्पुरुष श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

३. (दक्षिणे)—'ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः । सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः।' ॐ अघोराय नमः[३]। ॐ अघोर श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

४. (पश्चिमे)—'ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरंणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः।' ॐ वामदेवाय नमः[४]। ॐ वामदेव श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

५. (उत्तरे)—'ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः।' ॐ सद्योजाताय नमः[५]। ॐ सद्योजात श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

(ततः पुष्पाञ्जलिमादाय मन्त्रद्वयं पठितव्यम्) ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् भूर्भुवः स्वरों जूं सः हौं ॐ । (मूलमन्त्रः)

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल, भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्।
(इति पठित्वा पुष्पाञ्जलिं च दत्वा विशेषार्घादिबन्दुं निक्षिप्य इत्थं वदेत्—)
पूजितास्तर्पिताः सन्तु ।

द्वितीयावरणम् (पञ्चकोणाग्रपूजनम्)

(पञ्चकोणाग्रेषु ऐशान्यादिक्रमेण)

१. ॐ निवृत्यै नमः[६] । ॐ निवृत्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
२. ॐ प्रतिष्ठायै नमः[७] । ॐ प्रतिष्ठा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
३. ॐ विद्यायै नमः[८] । ॐ विद्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
४. ॐ शान्त्यै नमः[९] । ॐ शान्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
५. ॐ शान्त्यतीतायै नमः[१०] । ॐ शान्त्यतीता श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्
भूर्भुवः स्वरों जूं सः हौं ॐ ।

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल
भक्त्या समर्पये तुभ्यं द्वितीयावरणार्चनम् ।
पूजितास्तर्पिताः सन्तु
(बिन्दुपुष्पादिकं दद्यात्)

तृतीयावरणम् (अष्टमूर्त्तिपूजनम्)

(ततो अष्टदले पूज्यपूजकयोरन्तरालं 'प्राची' तदनुसारेण अन्या दिशः प्रकल्प्य प्राचीक्रमेण पूजयेत्)

१. ॐ सूर्यमूर्त्तये नमः[११]। ॐ सूर्यमूर्त्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
२. ॐ इन्द्रमूर्त्तये नमः[१२]। ॐ इन्द्रमूर्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
३. ॐ क्षितिमूर्त्तये नमः[१३]। ॐ क्षितिमूर्त्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
४. ॐ तोयमूर्त्तये नमः[१४]। ॐ तोयमूर्त्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नभः ।
५. ॐ अग्निमूर्त्तये नमः[१५]। ॐ अग्निमूर्त्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
६. ॐ पवनमूर्त्तये नमः[१६]। ॐ पवनमूर्त्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
७. ॐ आकाशमूर्त्तये नमः[१७]। ॐ आकाशगूर्त्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
८. ॐ यज्ञमूर्त्तये नमः[१८]। ॐ यज्ञमूर्त्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्
भूर्भुवः स्वरों जूं सः हौं ॐ ।

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल भक्त्या समर्पये तुभ्यं तृतीयावरणार्चनम्।
पूजितास्तर्पिताः सन्तु
(बिन्दुपुष्पाञ्जलिं दद्यात्)

चतुर्थावरणम् (बहिरष्टदलपूजनम्)

१. ॐ रमायै नमः[१९] । ॐ रमा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
२. ॐ राकायै नमः[२०] । ॐ राका श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
३. ॐ प्रभायै नमः[२१] । ॐ प्रभा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
४. ॐ ज्योत्स्नायै नमः[२२] । ॐ ज्योत्स्ना श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
५. ॐ पूर्णायै नमः[२३] । ॐ पूर्णा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
६. ॐ पूषायै नमः[२४] । ॐ पूषा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
७. ॐ पूर्ण्यै नमः[२५] । ॐ पूर्णी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
८. ॐ सुधायै नमः[२६] । ॐ सुधा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्
भूर्भुवः स्वरों जूं सः हौं ॐ ।

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल भक्त्या समर्पये तुभ्यं चतुर्थावरणार्चनम्।
पूजितास्तर्पिताः सन्तु
(बिन्दुपुष्पाञ्जलिं दद्यात्)

पञ्चमावरणम् (तद्बहिरष्टदल-पूजनम्)
(प्राचीक्रमेण)

१. ॐ विश्वायै नमः[३७] । ॐ विश्वा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
२. ॐ वन्द्यायै नमः[३८] । ॐ वन्द्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
३. ॐ सितायै नमः[३९] । ॐ सिता श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
४. ॐ प्रह्वायै नमः[४०] । ॐ प्रह्वा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
५. ॐ सारायै नमः[४१] । ॐ सारा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
६. ॐ सन्ध्यायै नमः[४२] । ॐ सन्ध्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
७. ॐ शिवायै नमः[४३] । ॐ शिवा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
८. ॐ निशायै नमः[४४] । ॐ निशा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्
भूर्भुवः स्वरों जूं सः हौं ॐ ।

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल भक्त्या समर्पये तुभ्यं पञ्चमावरणार्चनम्।
पूजितास्तर्पिताः सन्तु
(बिन्दुपुष्पाञ्जलिं दद्यात्)

षष्ठावरणम् (तद्बहिरष्टदले)
(प्राचीक्रमेण)

१. ॐ आर्यायै नमः[४५] । ॐ आर्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
२. ॐ प्रज्ञायै नमः[४६] । ॐ प्रज्ञा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
३. ॐ प्रभायै नमः[४७] । ॐ प्रभा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
४. ॐ मेधायै नमः[४८] । ॐ मेधा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
५. ॐ शान्त्यै नमः[४९] । ॐ शांन्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
६. ॐ कान्त्यै नमः[५०] । ॐ कान्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
७. ॐ धृत्यै नमः[५१] । ॐ धृति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
८. ॐ मत्यै नमः[५२] । ॐ मति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्
भूर्भुवः स्वरों जूं सः हौं ॐ ।

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल भक्त्या समर्पये तुभ्यं षष्ठावरणार्चनम्।
पूजितास्तर्पिताः सन्तु
(बिन्दुपुष्पाञ्जलिं दद्यात्)

सप्तमावरणम् (तद्बहिरष्टदले)
(प्राचीक्रमेण)

१. ॐ धरायै नमः[४३] । ॐ धरा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
२. ॐ उमायै नमः[४४] । ॐ उमा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
३. ॐ पावन्यै नमः[४५] । ॐ पावनी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
४. ॐ पद्मायै नमः[४६] । ॐ पद्मा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
५. ॐ शान्तायै नमः[४७] । ॐ शान्ता श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
६. ॐ अमोघाय नमः[४८] । ॐ अमोघा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
७. ॐ जयायै नमः[४९] । ॐ जया श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
८. ॐ अमलायै नमः[५०] । ॐ अमला श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्
भूर्भुवः स्वरों जूं सः हौं ॐ ।

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल भक्त्या समर्पये तुभ्यं सप्तमावरणार्चनम्।
पूजितास्तर्पिताः सन्तु
(बिन्दुपुष्पाञ्जलिं दद्यात्)

अष्टमावरणम् (तद्बहिरष्टदले)
(प्राचीक्रमेण)

१. ॐ अनन्ताय नमः[५१] । ॐ अनन्त श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
२. ॐ सूक्ष्मसंज्ञाय नमः[५२] । ॐ सूक्ष्मसंज्ञ श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
३. ॐ शिवोत्तमाय नमः[५३] । ॐ शिवोत्तम श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
४. ॐ एकनेत्राय नमः[५४] । ॐ एकनेत्र श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
५. ॐ एकरुद्राय नमः[५५] । ॐ एकरुद्र श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
६. ॐ त्रिमूर्त्तये नमः[५६] । ॐ त्रिमूर्त्ति श्रीपादुकां पूजंयामि तर्पयामि नमः ।
७. ॐ श्रीकण्ठाय नमः[५७] । ॐ श्रीकण्ठ श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
८. ॐ शिखण्डिने नमः[५८] । ॐ शिखण्डि श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्
भूर्भुवः स्वरों जूं सः हौं ॐ ।

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल भक्त्या समर्पये तुभ्यं अष्टमावरणार्चनम्।
पूजितास्तर्पिताः सन्तु
(बिन्दुपुष्पाञ्जलिं दद्यात्)

नवमावरणम् (तद्बहिरष्टदले)

(उत्तरामारभ्य)

१. ॐ उमायै नमः[५९] । ॐ उमा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
२. ॐ चण्डरेश्वराय नमः[६०] । ॐ चण्डेश्वर श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
३. ॐ नन्दिने नमः[६१] । ॐ नन्दि श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
४. ॐ महाकालाय नमः[६२] । ॐ महाकाल श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
५. ॐ गणेशाय नमः[६३] । ॐ गणेश श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
६. ॐ वृषभाय नमः[६४] । ॐ वृषभ श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
७. ॐ भृङ्गिरिटये नमः[६५] । ॐ भृङ्गिरिटि श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
८. ॐ स्कन्दाय नमः[६६] । ॐ स्कन्द श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

वशमावरणम् (तद्बहिरष्टवले)

(प्राचीक्रमेण)

१. ॐ ब्राह्म्यै नमः[६७] । ॐ ब्राह्मी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
२. ॐ माहेश्वर्यै नमः[६८] । ॐ माहेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
३. ॐ कौमार्यै नमः[६९] । ॐ कौमारी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
४. ॐ वैष्णव्यै नमः[७०] । ॐ वैष्णवी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
५. ॐ वाराह्यै नमः[७१] । ॐ वाराही श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
६. ॐ इन्द्राण्यै नमः[७२] । ॐ इन्द्राणी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
७. ॐ चामुण्डायै नमः[७३] । ॐ चामुण्डा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।
८. ॐ महालक्ष्म्यै नमः[७४] । ॐ महालक्ष्मी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

तद्बाह्ये भूपुरे इन्द्रादिदशदिक्पाल-पूजनम् (प्रथमा वीथी)

(पूर्वादिक्रमेण)

१. (पूर्वे) ॐ लं इन्द्राय नमः[७५] । ॐ इन्द्र श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
२. (आग्नेये) ॐ रं अग्नये नमः[७६] । ॐ अग्नि श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
३. (दक्षिणे) ॐ मं यमाय नमः[७७] । ॐ यम श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
४. (नैर्ऋत्ये) ॐ क्षं निर्ऋतये नमः[७८] । ॐ निर्ऋति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
५. (पश्चिमे) ॐ वं वरुणाय नमः[७९] । ॐ वरुणा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
६. उत्तरे ॐ यं वायवे नमः[८०] । ॐ वायु श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
७. (वायव्ये) ॐ कुं कुबेराय नमः[८१]। ॐ कुबेर श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

८. (ऐशान्ये) ॐ हं ईशानाय नमः[८२]। ॐ ईशान श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

९. (पूर्वईशानयोर्मध्ये) ॐ आं ब्रह्मणे नमः[८३] । ॐ ब्रह्म श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

१०. (पश्चिमनिर्ऋत्योर्मध्ये) ॐ ह्रीं अनन्ताय नमः[८४] । ॐ अनन्त श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

तद्बाह्ये भूपुरे वज्राद्यायुधानि-पूजनम् (द्वितीया वीथी)
(पूर्वादिक्रमेण)

१. (पूर्वे) ॐ वं वज्राय नमः[८५]। ॐ वज्र श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

२. (आग्नेये) ॐ शं शक्तये नमः[८६] । ॐ शक्ति श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३. (दक्षिणे) ॐ दं दण्डाय नमः[८७] । ॐ दण्ड श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

४. (नैर्ऋत्ये) ॐ खं खड्गाय नमः[८८] । ॐ खड्गश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

५. (पश्चिमे) ॐ पां पाशाय नमः[८९] । ॐ पाश श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

६. (वायव्ये) ॐ अं अङ्कुशाय नमः[९०] । ॐ अङ्कुश श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

७. उत्तरे ॐ गं गदायै नमः[९१] । ॐ गदा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

८. (ऐशान्ये) ॐ त्रिं त्रिशूलाय नमः[९२] । ॐ त्रिशूल श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

९. (पूर्वईशानयोर्मध्ये) ॐ पं पद्माय नमः[९३] । ॐ पद्म श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

१०. (पश्चिमनिर्ऋत्योर्मध्ये) ॐ चं चक्राय नमः[९४] । ॐ चक्र श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

ततः धूपादिनमस्कारपूर्वकं सम्पूज्य कृताञ्जलिं दद्यात् प्रार्थनामन्त्रसहितम्।

प्रार्थना-मन्त्र

ॐ मृत्युञ्जय महारुद्र त्राहि मां शरणागतम्। जन्ममृत्युजरारोगैः पीडितं कर्मबन्धनैः। तावकस्त्वद्गतप्राणस्त्वच्चित्तोऽहं सदामृड।
(इति विज्ञाप्य देवेशं जपेन्मृत्युञ्जयं परम्) अस्य पुरश्चरणमेकलक्षः ।

जपमन्त्रः

ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्
भूर्भुवः स्वरों जूं सः हौं ॐ।

तृतीय अध्याय

शास्त्र-संदर्भ—मूल और भाषांतर

श्रीमद्देवीभागवतम् (महापुराणम्)

एकादशस्कन्धः, तृतीयोऽध्यायः

नारायण उवाच,—

स्नानाङ्गतर्पणं कृत्वा देवर्षिपितृतोषकम् ।
शुद्धे वस्त्रे परीधाय जलाद्बहिरुपागतः ॥ १५ ॥
विमूतिधारणं कार्यं रुद्राक्षाणां च धारणम् ।
क्रमयोगेन कर्त्तव्यं सर्वदा जपसाधकैः ॥ १६ ॥
रुद्राक्षान् कण्ठदेशे दशनपरिमितान् मस्तके विंशती द्वे
षट्षट् कर्णप्रदेशे करयुगलकृते द्वादश-द्वादशैव ।
बाह्वोरिन्दोः कलाभिर्नयनयुगकृते त्वेकमेकं शिखायां
वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकण्ठः ॥ १७ ॥
बद्ध्वा स्वर्णे रुद्राक्षं रजतेनाऽथवा मुने ।
शिखायां धारयेन्नित्यं कर्णयोर्वा समाहितः ॥ १८ ॥
यज्ञोपवीते हस्ते वा कण्ठे तुन्देऽथवा नरः ।
श्रीमत्पञ्चाक्षरेणैव प्रणवेन तथापि वा ॥ १९ ॥
निर्व्याजमक्त्या मेधावी रुद्राक्षं धारयेन्मुदा ।
रुद्राक्षधारणं साक्षाच्छिवज्ञानस्य साधनम् ॥ २० ॥
रुद्राक्षं यच्छिखायां तत्तारतत्त्वमिति स्मरेत् ।
कर्णयोरुभयोर्ब्रह्मन् देवं देवीं च मावयेत् ॥ २१ ॥
यज्ञोपवीते वेदांश्च तथा हस्ते दिशः स्मरेत् ।
कण्ठे सरस्वतीं देवीं पावकं चाऽपि मावयेत् ॥ २२ ॥
सर्वाश्रमाणां वर्णानां रुद्राक्षाणां च धारणम् ।
कर्तव्यं मन्त्रतः प्रोक्तं द्विजानां नाऽन्यवर्णिनाम् ॥ २३ ॥
रुद्राक्षधारणाद्रुद्रो मवत्येव न संशयः ।
पश्यन्नपि निषिद्धांश्च तथा शृण्वन्नपि स्मरन् ॥ २४ ॥

जिघ्रन्नपि तथा चाऽश्नन् प्रलपन्नपि सन्ततम् ।
कुर्वन्नपि सदा गच्छन् ह्रिसृजन्नपि मानवः ॥ २५ ॥
रुद्राक्षधारणादेव सर्वपापैर्न लिप्यते ।
अनेन भुक्तं देवेन भुक्तं यत्तु तथा भवेत् ॥ २६ ॥
पीतं रुद्रेण तत्पीतं घ्रातं-घ्रातं शिवेन तत् ।
रुद्राक्षधारणे लज्जा येषामस्ति महामुने ॥ २७ ॥
तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्म कोटिभिः ।
रुद्राक्षधारिणं दृष्ट्वा परिवादं करोति यः ॥ २८ ॥
उत्पत्तौ तस्य सांकर्यमस्त्येवेति विनिश्चयः ।
रुद्राक्षधारणादेव रुद्रो रुद्रत्वमाप्नुयात् ॥ २९ ॥
मुनयः सत्यसङ्कल्पा ब्रह्मा ब्रह्मत्वमागतः ।
रुद्राक्षधारणाच्छ्रेष्ठं न किञ्चिदपि विद्यते ॥ ३० ॥
रुद्राक्षधारिणे भक्त्या वस्त्रं धान्यं ददाति यः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति ॥ ३१ ॥
रुद्रक्षधारिणे श्राद्धे भोजयेत् विमोदतः ।
पितृलोकमवाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ३२ ॥
रुद्राक्षधारिणः पादौ प्रक्षाल्याद्भिः पिबेन्नरः ।
सर्वपाप-विनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥ ३३ ॥
हारं वा कटकं वापि सुवर्णं वा द्विजोत्तमः ।
रुद्राक्षसहितं भक्त्या धारयन्नुदतामियात् ॥ ३४ ॥
रुद्राक्षं केवलं वापि यत्र कुत्र महामते ।
समन्त्रकं वा मन्त्रेण रहितं भाववर्जितम् ॥ ३५ ॥
यो वा को वा नरो भक्त्या धारयेल्लज्जयाऽपि वा ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सम्यग्ज्ञानमवाप्नुयात् ॥ ३६
अहो रुद्राक्षमाहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कुर्याद्रुद्राक्षधारणम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सदाचारवर्णने तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

नारद उवाच,—

एवं भूतानुभावोऽयं रुद्राक्षो भवताऽनघ ।
वर्णितो महतां पूज्यः कारणं तत्र किं वद ॥ १ ॥

नारायण उवाच—

एवमेव पुरा पृष्टो भगवान् गिरिशः प्रभुः ।
षण्मुखेन च रुद्रस्तं यदुवाच शृणुष्व तत् ॥ २ ॥

ईश्वर उवाच,—

शृणु षण्मुख तत्त्वेन कथयामि समासतः ।
त्रिपुरो नाम दैत्यस्तु पुराऽसीत् सर्वदुर्जयः ॥ ३ ॥
हतास्तेन सुराः सर्वे ब्रह्म-विष्ण्वादिदेवताः ।
सर्वैस्तु कथिते तस्मिंस्तदाऽहं त्रिपुरं प्रति ॥ ४ ॥
अचिन्तयं महाशस्त्रमधोराख्यं मनोहरम् ।
सर्वदिवमयं दिव्यं ज्वलन्तं घोररूपि यत् ॥ ५ ॥
त्रिपुरस्य वधार्थाय देवानां तारणाय च ।
सर्वविघ्नोपशमनमधोरास्त्रमचिन्तयम् ॥ ६ ॥
दिव्यवर्षसहस्रं तु चक्षुरुन्मीलितं मया ।
पश्चान्ममाकुलाक्षिभ्यः पतिता जलबिन्दवः ॥ ७ ॥
तत्राश्रुर्बिन्दुतो जाता महारुद्राक्षवृक्षकाः ।
ममाऽऽज्ञया महासेन! सर्वेषां हितकाम्यया ॥ ८ ॥
बभूवुस्ते च रुद्राक्षा अष्टत्रिंशत्प्रभेदतः ।
सूर्यनेत्रसमुद्भूताः कपिला द्वादश स्मृताः ॥ ९ ॥
सोमनेत्रोत्थिताः श्वेतास्ते षोडशविधाः क्रमात् ।
वह्निनेत्रोद्भवाः कृष्णा दशभेदा भवन्ति हि ॥ १० ॥
श्वेतवर्णश्च रुद्राक्षो जातितो ब्राह्म उच्यते ।
क्षात्रो रक्तस्तथा मिश्रो वैश्यः कृष्णस्तु शूद्रकः ॥ ११ ॥
एकवक्त्रः शिवः साक्षाद् ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
द्विवक्त्रो देवदेव्यौ स्याद्विविधं नाशयेदघम् ॥ १२ ॥
त्रिवक्त्रस्त्वनलः साक्षात् स्त्रीहत्यां दहति क्षणात् ।
चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा नरहत्यां व्यपोहति ॥ १३ ॥
पञ्चवक्त्रः स्वयं रुद्रः कालाग्निर्नाम नामतः ।
अभक्ष्यभक्षणोद्भूतैरगम्यागमनोद्भवैः ॥ १४ ॥
मुच्यते सर्वपापैस्तु पञ्चवक्त्रस्य धारणात् ।
षड्वक्त्रः कार्त्तिकियस्तु स धार्यो दक्षिणे करे ॥ १५ ॥
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नाऽत्र संशयः ।
सप्तवक्त्रो महाभागो ह्यनङ्गो नाम नामतः ॥ १६ ॥
तद्धारणान्मुच्यते हि स्वर्णस्तेयादिपातकैः ।
अष्टवक्त्रो महासेन! साक्षाद्देवो विनायकः ॥ १७ ॥
अन्नकूटं तूलकूटं स्वर्णकूटं तथैव च ।
दुष्टान्वयस्त्रियं वाऽथ संस्पृशंश्च गुरुस्त्रियम् ॥ १८ ॥
एवमादीनि पापानि हन्ति सर्वाणि धारणात् ।
विघ्नास्तस्य प्रणश्यन्ति याति चान्ते परं पदम् ॥ १९ ॥

भवन्त्येते गुणाः सर्वे ह्यष्टवक्त्रस्य धारणात् ।
नववक्त्रो भैरवस्तु धारयेद्वामबाहुके: ॥ २० ॥
भुक्तिमुक्तिप्रदः प्रोक्तो मम तुल्यबलो भवेत् ।
भ्रूणहत्यासहस्राणि ब्रह्महत्या शतानि च ॥ २१ ॥
सद्यः प्रलयमायान्ति नववक्त्रस्य धारणात् ।
दशवक्त्रस्तु देवेशः साक्षात् देवो जनार्दनः ॥ २२ ॥
ग्रहाश्च पिशाचाश्च वेताला ब्रह्मराक्षसाः ।
पन्नगाश्चोपशाम्यन्ति दशवक्त्रस्य धारणात् ॥ २३ ॥
वक्त्रैकादश रुद्राक्षो रुद्रैकादशकं स्मृतम् ।
शिखायां धारयेद्यो वै तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २४ ॥
अश्वमेध-सहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ।
गवां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् ॥ २५ ॥
तत्फलं लभते शीघ्रं वक्त्रैकादशधारणात् ।
द्वादशाऽऽस्यस्य रुद्राक्षस्यैव कर्णे तु धारणात् ॥ २६ ॥
आदित्यास्तोषिता नित्यं द्वादशास्ये व्यवस्थिताः ।
गोमेधे चाऽश्वमेधे च यत्फलं तदवाप्नुयात् ॥ २७ ॥
शृङ्गिणां शस्त्रिणां चैन व्याघ्रादीनां भयं नहि ।
न च व्याधिंभयं तस्य नैव चाऽऽधिः प्रकीर्तितः ॥ २८ ॥
न च किञ्चिद्भयं तस्य न च व्याधिः प्रवर्तते ।
न कुतश्चिद्भयं तस्य सुखी चैवेश्वरो भवेत् ॥ २९ ॥
हस्त्यश्व-मृग-मार्जार-सर्प-मूषक-दर्दुरान् ।
खरांश्च श्वगालांश्च हत्वा बहुविधानपि ॥ ३० ॥
मुच्यते नाऽत्र संदेहो वक्त्रद्वादश-धारणात् ।
वक्त्रत्रयोदशो वत्स रुद्राक्षो यदि लभ्यते ॥ ३१ ॥
कार्त्तिकेय समो ज्ञेयः सर्वकामार्थसिद्धिदः ।
रसो रसायनं चैव तस्य सर्वं प्रसिध्यति ॥ ३२ ॥
तस्यैव सर्वभोग्यानि नाऽत्र कार्या विचारणा ।
मातरं पितरं चैव भ्रातरं वा निहन्ति यः ॥ ३३ ॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो धारणात् तस्य षण्मुख ।
चतुर्दशास्यो रुद्राक्षो यदि लभ्येत पुत्रक ॥ ३४ ॥
धारयेत् सततं मूर्ध्नि तस्य पिण्डः शिवस्य तु ।
किं मुने बहुनोक्तेन वर्णनेन पुनः पुनः ॥ ३५ ॥
पूज्यते सततं देवैः प्राप्यते च परागतिः ।
रुद्राक्ष एकः शिरसा धार्यो भक्त्या द्विजोत्तमैः ॥ ३६ ॥
षड्विंशद्भिः शिरोमाला पञ्चाशतहृदयेन तु ।
कलाक्षैर्बाहुवलये अर्काक्षैर्मणि-बन्धनम् ॥ ३७ ॥

अष्टोत्तर-शतेनापि पञ्चाशद्भिः षडानन ।
अथवा सप्तविंशत्या कृत्वा रुद्राक्षमालिकाम् ॥ ३८ ॥
धारणाद्वा जपाद्वाऽपि ह्यनन्तं फलमश्नुते ।
अष्टोत्तरशतैर्माला रुद्रायक्षैर्धार्यते यदि ॥ ३९ ॥
क्षणे क्षणेऽश्वमेघस्य फलं प्राप्नोति षण्मुख ।
त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य शिवलोके महीयते ॥ ४० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादश-स्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

ईश्वर उवाच,—

लक्षण जपमालायाः शृणु वक्ष्यामि षण्मुख ।
रुद्राक्षस्य मुखं ब्रह्मा बिन्दू रुद्र इतीरितः ॥१॥
विष्णुः पुच्छं मवेच्चैव भोगमोक्षफलप्रदम् ।
पञ्चविंशतिभिश्चाऽक्षैः पञ्चवक्त्रैः स-ंकण्टकैः ॥२॥
रक्तवर्णैः सितैर्मिश्रैः कृतरंध्रविदर्मितैः ।
अक्षसूत्रं प्रकर्तव्य गोपुच्छवलयाकृतिः ॥३॥
वक्त्रं वक्त्रेण संयोज्य पुच्छं पुच्छेन योजयेत् ।
मेरुमूर्ध्वमुखं कुर्यात् तदूर्ध्वं नागपाशकम् ॥४॥
एवं संग्रथिता माला मन्त्रसिद्धिप्रदयिनीम् ।
प्रक्षाल्य गन्धतोयेन पञ्चगव्येन चोपरि ॥५॥
ततः शिवाम्भसाऽऽक्षाल्य ततो मन्त्रगणान् न्यसेत् ।
स्पृष्द्वा शिवास्त्रमन्त्रेण कवचेनाऽवगुण्ठयेत् ॥६॥
मूलमन्त्रं न्यसेत् पश्चात् पूर्ववत् कारयेत् तथा ।
सद्योजातादिभिः प्रोक्ष्य यावदष्टोत्तरं शतम् ॥७॥
मूलमन्त्रं समुच्चार्य शुद्धभूमौ निधाय च
तस्योपरि न्यसेत् साम्बं शिवं परमकारणम् ॥८॥
प्रतिष्ठिता भवेन्माला सर्वकामफलप्रदा ।
यस्य देवस्य यो मन्त्रस्ता तेनैवाभिपूजयेत् ॥९॥
मूर्ध्नि कण्ठेऽथवा कर्णे न्यसेद्वा जपमालिकाम् ।
रुद्राक्षमालया चैव जप्तव्यं नियतात्मना ॥१०॥
कण्ठे मूर्ध्नि हृदि प्रान्ते कर्णे बाहुयुगेऽथवा ।
रुद्राक्षधारणं नित्यं भक्त्या परमयायुतः ॥११॥
किमत्र बहुनोक्तेन वर्णनेन पुनः पुनः ।
रुद्राक्षधारणं नित्यं तस्मादेतत् प्रशस्यते ॥१२॥

स्नाने दाने जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने ।
प्रायश्चित्ते तथा श्राद्धे दीक्षाकाले विशेषतः ॥१३॥
अरुद्राक्षधरो भूत्वा यत्किञ्चित् कर्म वैदिकम् ।
कुर्वन् विप्रस्तु मोहेन नरके पतति ध्रुवम् ॥१४॥
रुद्राक्षं धारयेन्मूर्ध्नि कण्ठे सूत्रे करेऽथवा ।
सुवर्णमणिसम्भिन्नं शुद्धं नान्यैर्धृतं शिवम् ॥१५॥
नाशुचिर्धारयेदक्षं सदा भक्त्यैव धारयेत् ।
रुद्राक्षतरुसम्भूतवातोद्भूत-तृणान्यपि ॥१६॥
पुण्यलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिः दुर्लभम् ।
रुद्राक्षं धारयन् पापं कुर्वन्नपि च मानवः ॥१७॥
सर्वं तरति पाप्मानं जाबालश्रुतिराह हि ।
पशवो हि च रुद्राक्ष-धारणाद्यान्ति रुद्रताम् ॥१८॥
किमु ये धारयन्तिस्म नरा रुद्राक्षमालिकाम् ।
रुद्राक्षः शिंरसा ह्येको धार्यो रुद्रपरैः सदा ॥१९॥
ध्वसनं सर्वदुःखानां सर्वपापविमोचनम् ।
व्याहरन्ति च नामानि ये शम्भोः परमात्मनः ॥२०॥
रुद्राक्षालङ्कृता ये च ते वै भागवतोत्तमाः ।
रुद्राक्षधारणं कार्यं सर्वश्रेयोऽर्थिभिर्नृभिः ॥२१॥
कर्णपाशे शिखायां च कण्ठे हस्ते तथोदरे ।
महादेवश्च विष्णुश्च ब्रह्मा तेषां विभूतयः ॥२२॥
देवाश्चाऽन्ये तथा भक्त्या खलु रुद्राक्षधारिणः ।
गोत्रर्षयश्च सर्वेषां कूटस्था मूलरूपिणः ॥२३॥
तेषां वंशप्रसूताश्च मुनयः सकला अपि ।
श्रौतधर्मपराः शुद्धाः खलु रुद्राक्षधारिणः ॥२४॥
श्रद्धा न जायते साक्षाद्वेदसिद्धे विमुक्तिदे ।
बहूनां जन्मनामन्ते महादेवप्रसादतः ॥२५॥
रुद्राक्षधारणे वाञ्छा स्वभावादेव जायते ।
रुद्रक्षस्य तु माहात्म्यं जाबालैरादरेण तु ॥२६॥
पठ्यते मुनिभिः सर्वैर्मया पुत्र तथैव च ।
रुद्राक्षस्य फल चैव त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥२७॥
फलस्य दर्शने पुण्यं स्पर्शात् कोटिगुणं भवेत् ।
शतकोटिगुणं पुण्यं धारणाल्लभते नरः ॥२८॥
लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च ।
जपाच्च लभते नित्यं नाऽत्र कार्या विचारणा ॥२९॥
हस्ते चोरसि कण्ठे च कर्णयोर्मस्तके तथा ।
रुद्राक्षं धारयेद्यस्तु स रुद्रो नाऽत्र संशयः ॥३०॥

अवध्यः सर्वभूतानां रुद्रवद्धि चरेद् भुवि ।
सुराणामसुराणां च वन्दनीयो यथा शिवः ॥३१॥
रुद्राक्षधारी सततं वन्दमीयस्तथा नरैः ।
उच्छिष्टो वा विकर्मस्थो युक्तो वा सर्वपातकैः ॥३२॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्राक्षस्य तु धारणात् ।
कण्ठे रुद्राक्षमाबध्य श्वाऽपि वा म्रियते यदि ॥३३॥
सोऽपि मुक्तिमवाप्नोति किं पुनर्मानुषोऽपि सः ।
जप-ध्यानविहीनोऽपि रुद्राक्षं यदि धारयेत् ॥३४॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ।
एकं वाऽपि हि रुद्राक्षं कृत्वा यत्नेन धारयेत् ॥३५॥
एकविंशतिमुद्धृत्य रुद्रलोके महीयते ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि रुद्राक्षस्य पुनर्विधिम् ॥३६॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

ईश्वर उवाच,—

महासेन कुशग्रन्थि-पुत्रा जीवादयाः परे ।
रुद्राक्षस्य तु नैकोऽपि कलामर्हति षोडशीम् ॥१॥
पुरुषाणां यथा विष्णुर्ग्रहाणां च यथा रविः ।
नदीनां तु यथा गङ्गा मुनीनां काश्यपो यथा ॥२॥
उच्चैःश्रवा यथाऽश्वानां देवानामीश्वरो यथा ।
देवीनां तु यथा गौरी तद्वच्छ्रेष्ठमिदं भवेत् ॥३॥
नाऽतः परतरं स्तोत्रं नाऽतः परतरं व्रतम् ।
अक्षय्येषु च दानेषु रुद्राक्षस्तु विशिष्यते ॥४॥
विशभक्ताय शान्ताय दद्याद्रुद्राक्षमुत्तमम् ।
तस्य पुण्यफलस्याऽन्तं न चाहं वक्तुमुत्सहे ॥५॥
धृतरुद्राक्षकण्ठाय यस्त्वन्नं सम्प्रयच्छति ।
त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य रुद्रलोकं स गच्छति ॥६॥
यस्य भाले विभूतिर्न नाऽङ्गे रुद्राक्षधारणम् ।
न शम्भोर्भवने पूजा स विप्रः श्वपचाधमः ॥७॥
खादन् मांसं पिबन् मद्यं संगच्छन्नन्त्यजानपि ।
पातकेभ्यो विमुच्येत रुद्राक्षे शिरसि स्थिते ॥८॥

सर्वयज्ञतपोदानवेदाभ्यासैश्च यत्फलम् ।
तत्फलं लभते सद्यो रुद्राक्षस्य तु धारणात् ॥९॥
वेदैश्चतुर्भिर्यत्पुण्यं पुराण-पठनेन च ।
यत्तीर्थसेवनेनैव सर्वविद्यादिभिस्तथा ॥१०॥
तत्पुण्यं लभते सद्यो रुद्राक्षस्य तु धारणात् ।
प्रयाणकाले रुद्राक्षं बन्धयित्वा म्रियेद्यदि ॥११॥
स रुद्रत्वमवाप्नोति पुनर्जन्म न विद्यते ।
रुद्राक्षं धारयेत् कण्ठे बाह्वोर्वा म्रियते यदि ॥१२॥
कुलैकविंशमुत्तार्य रुद्रलोके वसेन्नरः ।
ब्राह्मणो वाऽपि चाण्डालो निर्गुणः सगुणोऽपि च ॥१३॥
भस्मरुद्राक्षधारी यः स देवत्वं शिवं व्रजेत् ।
शुचिर्वाऽप्यशुचिर्वाऽपि तथाऽभक्ष्यस्य भक्षकः ॥१४॥
म्लेच्छोवाऽप्यथ चाण्डालो युतो वा सर्वपातकैः ।
रुद्राक्षधारणादेव स रुद्रो नाऽत्र संशयः ॥१५॥
शिरसा धार्यते कोटिः कर्णयोर्दश-कोटयः ।
शतकोटिर्गले बद्धो मूर्ध्नि कोटिसहस्रकम् ॥१६॥
अयुतं चोपवीते तु लक्षकोटिर्भुजे स्थिते ।
मणिबन्धे तु रुद्राक्षो मोक्षसाधनकः परः ॥१७॥
रुद्राक्षधारको भूत्वा यत्किञ्चित् कर्म वैदिकम् ।
कुर्वन् विप्रः सदा भक्त्या महादाप्नोति तत्फलम् ॥१८॥
रुद्राक्षमालिकां कण्ठे धारयेद्भक्तिवर्जितः ।
पापकर्मा तु यो नित्यं स मुक्तः सर्वबन्धनात् ॥१९॥
रुद्राक्षार्पितचेता यो रुद्राक्षस्तु न वै धृतः ।
असौ माहेश्वरो लोके नमस्यः स तु लिङ्गवत् ॥२०॥
अ-विद्यो वा स-विद्यो वा रुद्राक्षस्य तु धारणात् ।
शिवलोकं प्रपद्येत कीकटे गर्दभो यथा ॥२१॥

स्कन्द उवाच,—

रुद्राक्षान् सन्दधे देव गर्दभः केन हेतुना ।
कीकटे केन वा दत्तस्तद् ब्रूहि परमेश्वर ॥२२॥

श्रीभगवानुवाच,—

शृणु पुत्र पुरावृत्तं गर्दभो विन्ध्यपर्वते ।
धत्ते रुद्राक्षभारं तु वाहितः पथिकेन तु ॥२३॥
श्रान्तोऽसमर्थस्तद्भारं वोढुं पतितवान् भुवि ।
प्राणैस्त्यक्तस्त्रिनेत्रस्तु शूलपाणिर्महेश्वरः ॥२४॥
मत्प्रसादान्महासेन मदन्तिकमुपागतः ।
यावद्वक्त्रस्य सङ्ख्यानं रुद्राक्षाणां सुदुर्लभम् ॥२५॥

तावत् युगसहस्राणि शिवलोके महीयते ।
स्वशिष्येभ्यस्तु वक्तव्यं नाऽशिष्येभ्यः कदाचन ॥२६॥
अभक्तेभ्योऽपि मूर्खेभ्यः कदाचिन्न प्रकाशयेत् ॥
अभक्तो वाऽस्तु भक्तो वा नीचो नीचतरोऽपि वा ॥२७॥
रुद्राक्षान् धारयेद्यस्तु मुच्यते सर्वपातकैः ।
रुद्राक्षधारणं पुण्यं केन वा सदृशं भवेत् ॥२८॥
महाव्रतमिदं प्राहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ।
सहस्रं धारयेद्यस्तु रुद्राक्षाणां धृतव्रतः ॥२९॥
तं नमन्ति सुराः सर्वे यथा रुद्रस्तथैव सः ।
अभावे तु सहस्रस्य बाह्वोः षोडश षोडश ॥३०॥
एकं शिखायां करयोर्द्वादशद्वादशैव तु ।
द्वात्रिंशत् कण्ठदेशे तु चत्वारिंशच्च मस्तके ॥३१॥
एकैकं कर्णयोः षट् षट् वक्षस्यष्टोत्तरं शतम् ।
यो धारयति रुद्राक्षान् रुद्रवत् स तु पूज्यते ॥३२॥
मुक्ता-प्रवाल-स्फटिक-रौप्य-वैडूर्य-काञ्चनैः ।
समेतान् धारयेद्यस्तु रुद्राक्षान् स शिवो भवेत् ॥३३॥
केवलानपि रुद्राक्षान् यद्यालस्याद्बिभर्ति यः ।
तं न स्पृशन्ति पापानि तमांसीव विभावसुम् ॥३४॥
रुद्राक्षमालया मन्त्रो जप्तोऽनन्तफलप्रदः ।
यस्याङ्गे नास्ति रुद्राक्ष एकोऽपि बहुपुण्यदः ॥३५॥
तस्य जन्म निरर्थं स्यात् त्रिपुण्डरहितं यथा ।
रुद्राक्षं मस्तके धृत्वा शिरः स्नानं करोति यः ॥३६॥
गङ्गास्नानफलं तस्य जायते नाऽत्र संशयः ।
एकवक्त्रः पञ्चवक्त्र एकादशमुखाः परे ॥३७॥
चतुर्दशमुखाः केचिद्रुद्राक्षा लोकपूजिताः ।
भक्त्या सम्पूज्यते नित्यं रुद्राक्षः शङ्करात्मकः ॥३८॥
दरिद्रं वापि पुरुषं राजानं कुरुते भुवि ।
अत्र ते कथयिष्यामि पुराणं मतमुत्तमम् ॥३९॥
कोसलेषु द्विजः कश्चिद्गिरिनाथ इति श्रुतः
महाधनी च धर्मात्मा वेदवेदाङ्गपारगः ॥४०॥
यज्ञकृद्दीक्षितस्तस्य तनयः सुन्दराकृतिः ।
नाम्ना गुणनिधिः ख्यातस्तरुणः कामसुन्दरः ॥४१॥
गुरोः सुधिषणस्याऽथ पत्नीं मुक्तावलीमथ ।
मोहयामास रूपेण यौवनेन मदेन च ॥४२॥
सङ्गतस्तु तया सार्धं कञ्चित् कालं तो भिया ।
विषं ददौ च गुरवे येमे पश्चात्तु निर्भयः ॥४३॥

यदा माता पिता कर्म किञ्चिज्जानाति यत्क्षणे ।
मातरं पितरं चापि मारयामास तद्विषात् ॥४४॥
नानाविलास-भोगैश्च जाते द्रव्यव्यये ततः ।
ब्राह्मणानां गृहे चौर्यं चकार स तदा खलः ४५॥
सुरापानमदोन्मत्तस्तदा ज्ञातिबहिष्कृतः ।
ग्रामान्निष्कासितः सर्वैस्तदा सोऽभूद्वनेचरः ॥४६॥
मुक्तावल्या तया साध जगाम गहनं वनम् ।
मार्गे स्थितो द्रव्यलोभाज्जघान ब्राह्मणान् बहून् ॥४७॥
एवं बहुगते काले ममार स तदाऽधमः ।
नेतुं तं यमदूताश्च समाजग्मुः सहस्रशः ॥४८॥
शिवलोकाच्छिवगणास्तथैव च समागताः ।
तयोः परस्परं वादो वभूव गिरिजासुत ॥४९॥
यमदूतास्तदा प्रोचुः पुण्यमस्य किमस्ति हि ।
ब्रुवन्तु सेवकाः शम्भोर्यद्येनं नेतुमिच्छथ ॥५०॥
शिवदूतास्तदा प्रोचुरयं यस्मिन् स्थले मृतः ।
दशहस्तादधो भूमे रुद्राक्षस्तत्र चाऽस्ति हि ॥५१॥
तत्प्रभावेण हे दूता नेष्यामः शिवसन्निधिम् ।
ततो विमानमारुह्य दिव्यरूपधरो द्विजः ॥५२॥
गतो गुणनिधिर्दूतैः सहितः शङ्करालयम् ।
इति रुद्राक्ष-माहात्म्यं कथितं तव सुव्रत ॥५३॥
एवं रुद्राक्षमहिमा समासात् कथितो मया ।
सर्वपापक्षयकरो महापुण्यफलप्रदः ॥५४॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

श्री नारायण उवाच,—

एवं नारद । षड्वक्त्रो गिरिशेन विबोधितः ।
रुद्राक्षमहिमानं च ज्ञात्वाऽऽसीत् सकृतार्थकः ॥१॥
इत्थंभूतानुभावोऽयं रुद्राक्षो वर्तितो मया ।
सदाचारप्रसङ्गेन शृणु चाऽन्यत् समाहितः ॥२॥
यथा रुद्राक्षमहिमा वर्णितोऽनन्तपुण्यदः ।
लक्षणं मन्त्रविन्यासं तथाऽहं वर्णयामि ते ॥३॥
लक्षं तु दर्शनात् पुण्यं कोटिस्तत्स्पर्शनाद्भवेत् ।
तस्य कोटिगुणं पुण्यं लभते धारणान्नरः ॥४॥

लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च ।
तज्जपाल्लभते पुण्यं नरो रुद्राक्षधारणम् ॥५॥
रुद्राक्षाणां तु भद्राक्षधारणात् स्यान्महाफलम् ।
धात्रीफलप्रमाणं यच्छ्रेष्ठमेतदुदाहृतम् ॥६॥
बदरीफलमात्रं तु प्रोच्यसे मध्यमं बुधैः
अधमं चणमात्रं स्यात् प्रतिज्ञैषा मयोदिता ॥७॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चेति शिवाज्ञया
वृक्षाज्जाताः वृथिव्यां तु तज्जातीयाः शुभाक्षकाः ॥८॥
श्वेतास्तु ब्राह्मणा ज्ञेयाः क्षत्रिया रक्तवर्णकाः
पीता वैश्यास्तु विज्ञेयाः कृष्णाः शूद्राः प्रकीर्तिताः॥९॥
ब्राह्मणो विभृयाच्छ्वेतान् रक्तान् राजा तु धारयेत् ।
पीतान् वैश्यस्तु विभृयात् कृष्णाञ्छूद्रस्तु धारयेत् ॥१०॥
समाः स्निग्धा दृढास्तद्वत् कण्टकैः संयुता शुभाः ।
कृमिदष्टाञ्छिन्नान् कण्टकै रहितास्तथा ॥११॥
व्रणयुक्तानावृत्तांश्च षड्रुद्राक्षास्तु वर्जयेत् ।
स्वयमेव कृतद्वारो रुद्राक्षः स्यादिहोत्तमः ॥१२॥
यत्तु पौरुषयत्नेन कृतं तन्मध्यमं भवेत् ।
समान् स्निग्धान् दृढान् वृत्तान् क्षौमसूत्रेण धारयेत् ॥१३॥
सर्वगात्रेषु साम्येन समानाऽतिविलक्षणा ।
निघर्षे हेमलेखाभा यत्र लेखा प्रदृश्यते ॥१४॥
तदक्षमुत्तमं विद्यात् स धार्यः शिवपूजकैः ।
शिखायामेकरुद्राक्षं त्रिंशद्वै शिरसा वहेत् ॥१५॥
षट्त्रिंशच्च गले धार्या बाह्वोः षोडश षोडश ।
मणिबन्धे द्वादशाक्षान् स्कन्धे पञ्चशतं भवेत् ॥१६॥
अष्टोत्तरशतैर्मालोपवीतं च प्रकल्पयेत् ।
द्विसरं त्रिसरं वापि विभृयात् कण्ठदेशतः ॥१७॥
कुण्डले मुकुटे चैव कर्णिकाहारकेषु च ।
केयूरे कटके चैव कुक्षिवंशे तथव च ॥१८॥
सुप्ते पीते सर्वकालं रुद्राक्षं धारयेन्नरः ।
त्रिशतं त्वधमं पञ्चशतं मध्यममुच्यते ॥१९॥
सहस्रमुत्तमं प्रोक्तं चैवं भेदेन धारयेत् ।
शिरसीशानमन्त्रेण कर्णे तत्पुरुषेण च ॥२०॥
अघोरेण ललाटे तु तेनैव हृदयेऽपि च
अघोरबीजमन्त्रेण करे यो धारयेत् पुनः ॥२१॥
पञ्चाशदक्षग्रथितां वामदेवेन चोदरे ।
पञ्चब्रह्मभिरङ्गैश्चाऽप्येवं रुद्राक्षधारणम् ॥२२॥

ग्रथितान्मूलमन्त्रेण सर्वानक्षांस्तु धारयेत् ।
एकवक्त्रस्तु रुद्राक्षः परतत्त्वप्रकाशकः ॥२३॥
परतत्त्वधारणाच्च जायते तत्प्रकाशनम् ।
द्विवक्त्रस्तु मुनिश्रेष्ठ अर्धनारीश्वरो भवेत् ॥२४॥
धारणादर्धनारीशः प्रीयते तस्य नित्यशः ।
त्रिवक्त्रस्त्वनलः साक्षात् स्त्रीहत्यां दहति क्षणात् ॥२५॥
त्रिमुखश्चैव रुद्राक्षोऽप्यग्नित्रयस्वरूपकः ।
तद्धारणाच्च हुतभुक् तस्य तुष्यति नित्यशः ॥२६॥
चतुर्मुखस्तु रुद्राक्षः पितामहस्वरूपकः ।
तद्धारणान्महा-श्रीमान् महदारोग्यमुत्तमम् ॥२७॥
महती ज्ञानसम्पत्तिः शुद्धये धारयेन्नरः ।
पञ्चमुखस्तु रुद्राक्षः पञ्चब्रह्मस्वरूपकः ॥२८॥
तस्य धारणमात्रे वा सन्तुष्यति महेश्वरः
षड्वक्त्रश्चैव रुद्राक्षः कार्त्तिकियाधिदैवतः ॥२९॥
विनायकं चापि देवं प्रवदन्ति मनीषिणः
सप्तवक्त्रस्तु रुद्राक्षः सप्तमात्राधि-दैवतः ॥३०॥
सप्ताश्वदैवतश्चैव मुनिसप्तकदैवतः ।
तद्धारणान्महाश्रीः स्यान्महदारोग्यमुत्तमम् ॥३१॥
महती ज्ञानसम्पत्तिः शुचिर्वै धारयेन्नरः ।
अष्टवक्त्रस्तु रुद्राक्षोऽप्यष्टमात्राधिदैवतः ॥३२॥
वस्वष्टकप्रीतिकरो गङ्गाप्रीतिकरः शुभः ।
तद्धारणादिमे प्रीता भवेयुः सत्यवादिनः ॥३३॥
नववक्त्रस्तु रुद्राक्षो यमदेव उदाहृतः ।
तद्धारणाद्यमभयं न भवत्येव सर्वथा ॥३४॥
दशवक्त्रस्तु रुद्राक्षो दशाशादैवतः स्मृतः ।
दशाशा-प्रीतिजनको धारणे नाऽत्र संशयः ॥३५॥
एकादशमुखस्त्वक्षो रुद्रैकादशदैवतः ।
तमिन्द्रदैवतं चाहुः सदा सौख्यविवर्धनम् ॥३६॥
रुद्राक्षो द्वादशमुखो महाविष्णु-स्वरूपकः ।
द्वादशादित्यदैवश्च विभर्त्यैव हि तत्परः ॥३७॥
त्रयोदशमुखश्चाक्षः कामदः सिद्धिदः शुभः ।
तस्य धारणमात्रेण कामदेवः प्रसीदति ॥३८॥
चतुर्दशमुखश्चाक्षो रुद्रनेत्रसमुद्भवः ।
सर्व-व्याधिहरश्चैव सर्वारोग्यप्रदायकः ॥३९॥
मद्यं मांसं च लशुनं पलाण्डुं शिग्रुमेव च ।
श्लेष्मातकं विड्वराहं भक्षणे वर्जयेत् ततः ॥४०॥

ग्रहणे विषुवे चैव सङ्क्रमे अयने तथा ।
दर्शे च पौर्णमासे च पुण्येषु दिवसेष्वपि ।
रुद्राक्षधारणात् सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४१॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

भाषांतर (श्रीमद्देवीभागवतम)

एकादशस्कंद, तृतीय अध्याय

नारायण ने कहा,—

स्नानादि कर देव, ऋषि और पितृ को संतुष्ट करनेवाला तर्पण करके जल से बाहर आकर शुद्ध वस्त्र को धारण करना चाहिए। १५

फिर विभूति (भस्म) धारण और पुनः रुद्राक्ष-धारण करना चाहिए। इन सभी कर्मों को क्रमपूर्वक जप-साधकों को सदैव करना चाहिए। १६

कण्ठप्रदेश में दशन-परिमित अर्थात् बत्तीस रुद्राक्षों को धारण करना चाहिए। मस्तक पर चालीस, कानों में छह-छह, और कलाइयों में बारह-बारह धारण करना चाहिए, भुजाओं में सोलह-सोलह, नयनों पर दो-दो और शिखा में एक। एक सौ आठ रुद्राक्षों को वक्षःस्थल पर धारण करनेवाला व्यक्ति स्वयं नीलकण्ठ हो जाता है। १७

रुद्राक्ष को सोने अथवा चाँदी में ग्रथित कर शिखा और कानों में नित्य धारण करना चाहिए ।१८

यज्ञोपवीत में, हाथ में, कण्ठ में और उदर पर मनुष्य को पंचाक्षर मन्त्र (ॐ नमः शिवाय) अथवा प्रणव-मन्त्र (ओंकार) से अभिमन्त्रित कर रुद्राक्ष को धारण करना चाहिए। १९

निर्द्वंद्व-भक्ति अथवा निष्काम-भक्ति के साथ मेधावी व्यक्ति को प्रसन्नतापूर्वक रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। रुद्राक्ष-धारण साक्षात् शिव-ज्ञान का साधन है। (अर्थात् रुद्राक्ष-धारण से शिव का साक्षात् प्रत्यभिज्ञान होता है।) २०

जो रुद्राक्ष शिखा में धारण किया जाता है, वह तार-तत्त्व (श्रेष्ठ तत्त्व, शिव-तत्त्व) सदृश है, ऐसा समझना चाहिए। हे ब्रह्मन्, जो रुद्राक्ष कानों में धारण किए जाते हैं, वे देव और देवी के रूप में भावित होते हैं। २१

यज्ञोपवीत में धारण किए गए रुद्राक्ष चतुर्वेदस्वरूप तथा हाथों के रुद्राक्ष दिक्-स्वरूप होते हैं। कण्ठ-प्रदेश के रुद्राक्ष पवित्र सरस्वती देवी और अग्नि-स्वरूप हैं, ऐसा समझना चाहिए। २२

सभी आश्रमवासियों के सभी वर्णों के लिए रुद्राक्ष-धारण का विधान है। ब्राह्मणों के लिए मन्त्रों का कथन है, अन्य वर्णों के लिए नहीं। २३

रुद्राक्ष-धारण से (धारणकर्त्ता) रुद्र बन जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है। जो निषिद्ध है, उसको देखते हुए भी, सुनते हुए भी, स्मरण करते हुए और सूँघते हुए भी, खाते हुए और बोलते हुए भी सदैव कोई भी कार्य करते हुए भी या जाते हुए

भी, नाश और निर्माण करते हुए भी जो मानव रुद्राक्ष धारण किए हुए होता है, उससे इनमें से कोई भी पाप लिप्त नहीं होता। इसके धारण के साथ धारणकर्त्ता जो कुछ भी खाता है, वह देवताओं के द्वारा भुक्तवत् हो जाता है। २४-२६

रुद्र के द्वारा जो पीया जाता है, वही रुद्राक्षधारी के द्वारा पीया हो जाता है, शिव के द्वारा घ्रात (सूँघा हुआ) रुद्राक्षधारी का घ्रात बन जाता है। हे महामुनि ! रुद्राक्षधारण करने पर जिसे लज्जा का अनुभव होता है, उसे कभी विनिर्मोक्ष (मुक्ति) नहीं मिलता। संसार में उसका कोटि-कोटि जन्म होता रहता है। (अथवा संसार से कोटि-जन्मों से भी उसका मोक्ष नहीं होता है) ! रुद्राक्ष धारण करनेवालों को देखकर जो उसकी निंदा करता है, उसका जन्म निश्चय वर्णसंकर-रूप में होता है। रुद्राक्ष-धारण के कारण ही रुद्र भी रुद्रत्व को प्राप्त करते हैं। २७-२९

रुद्राक्ष-धारण के कारण मुनिगण सत्य-संकल्प वाले बनते हैं और ब्रह्मा ब्रह्मत्व को प्राप्त करते हैं। रुद्राक्ष-धारण से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। ३0

रुद्राक्ष-धारण करनेवालों के लिए जो भक्तिपूर्वक वस्त्र और धान्य-दान करता है वह (भी) सभी पापों से मुक्त होकर शिवलोक चला जाता है। ३१

श्राद्ध-कर्म में रुद्राक्षधारी को भोजन कराने और उन्हें प्रसन्न करने से पितृ-लोक की प्राप्ति होती है, इसमें अन्यथा-चिंतन नहीं करना चाहिए। (अथवा किसी रुद्राक्षधारी व्यक्ति के श्राद्ध में प्रसन्नतापूर्वक भोजन करने-कराने से पितृ-लोक की प्राप्ति होती है, इसमें कोई संशय नहीं है) । ३२

रुद्राक्षधारियों के चरण धोकर जो मनुष्य पीता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर शिवलोक में महनीयता को प्राप्त करता है। ३३

हार (कण्ठहार) या कटक (मेखला) यदि सोने के हों और उसे रुद्राक्ष के साथ भक्तिपूर्वक धारण किया जाए तो रुद्रता की प्राप्ति होती है। ३४

हे महामते ! जो व्यक्ति जहाँ कहीं भी मन्त्रपूर्वक या बिना मन्त्र के भाव-वर्जित रूप में भी केवल रुद्राक्ष का धारण-मात्र कर लेता है, वह जो कोई भी मनुष्य भक्ति या लज्जा से भी इसे धारण कर लेता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर सम्यक् ज्ञान को प्राप्त कर जाता है। ३५-३६

मैं रुद्राक्ष-माहात्म्य के संबंध में कुछ भी अधिक बोलने की स्थिति में नहीं हूँ (और मैं क्या बोलूँ)। इसलिए सभी प्रयत्नों के साथ रुद्राक्ष-धारण करना चाहिए। ३७

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सदाचारवर्णने तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चतुर्थ अध्याय

नारद ने कहा,–

हे निष्पाप (अनघ) ! प्राणियों के कल्याणार्थ और महान् व्यक्तियों के द्वारा पूज्य आपके द्वारा वर्णित यह (रुद्राक्ष) सब जो है, इसका कारण क्या है, यह आप मुझे बताएँ। १

नारायण ने कहा,—

इसी प्रकार प्राचीन काल में षण्मुख के द्वारा जब भगवान् रुद्र पूछे गए तो उनको रुद्र ने जो कहा, सो सुनो। २

ईश्वर ने कहा,—

हे षण्मुख (कार्तिकेय) सुनो, मैं तुम्हें तत्त्वतः तथा समासतः कहता हूँ। प्राचीन काल में त्रिपुर नामक एक दैत्य था, जो सबों को दुष्टतापूर्वक जीत लेता था। ३

उसने सभी देवताओं की हत्या कर दी। फिर ब्रह्मा-विष्णु आदि देवताओं के द्वारा उसके संबंध में कहे जाने पर मैंने त्रिपुर के संबंध में सोचा। ४

जब मैंने अघोर नामक मनोहर और महाशस्त्र का चिंतन किया, जो सर्वदेवमय, दिव्य, ज्वलत् और घोररूपी था। ५

इस अस्त्र का चिंतन मैंने त्रिपुर के वध, देवों के कल्याण तथा सभी प्रकार की बाधाओं के उपशमन के लिए किया था। ६

(इस प्रसंग में) एक हजार दिव्य वर्ष तक मेरी आँखें उन्मीलित (खुली) थीं। फिर मेरी इन आकुल आँखों से जल की कुछ बूँदें टपक पड़ीं। ७

फिर वहाँ उन अश्रुबिन्दुओं से महारुद्राक्ष नामक वृक्ष उत्पन्न हुए। हे महासेन! मेरी आज्ञा से सबों की हितकामना के लिए उनमें रुद्राक्ष उत्पन्न हुआ, जो भेद की दृष्टि से अड़तीस प्रकार के थे। सूर्य के नेत्र से बारह रुद्राक्ष लाल रंग के उत्पन्न हुए। ८-९

चन्द्रमा के नेत्रों से उजले रंग के रुद्राक्ष क्रम से सोलह प्रकार के बने। फिर अग्नि के नेत्रों से काले रंग के रुद्राक्ष के दस भेद हुए। १०

श्वेत वर्ण का रुद्राक्ष ब्राह्म जाति (ब्राह्मण) माने गए। क्षत्रियों के लिए लाल, वैश्यों के लिए मिश्रित और शूद्रों के लिए काले रुद्राक्ष का विधान है। ११

एकमुखी रुद्राक्ष साक्षात् शिव ही है जो ब्रह्म-हत्या के पाप को दूर करता है। द्विमुखी रुद्राक्ष देव और देवी स्वरूप है, जो पाप को दूर करता है। १२

त्रिमुखी रुद्राक्ष साक्षात् अग्नि है, जो क्षण-मात्र में स्त्री-हत्या के पाप को दूर करता है। चतुर्मुखी रुद्राक्ष स्वयं ब्रह्मा है, जो नर-हत्या के पाप को दूर करता है। १३

पंचमुखी रुद्राक्ष स्वयं रुद्र है, जो कालाग्नि नाम से जाना जाता है। अभक्ष्य-भक्षण से उद्भूत तथा अगम्या-गमन से उत्पन्न और ऐसे सभी प्रकार के पापों से मुक्ति मिल जाती है, यदि पंचमुखी रुद्राक्ष-धारण किया जाए। षणमुखी रुद्राक्ष कार्तिकेय है। इसे दाहिने हाथ में धारण करना चाहिए। १४-१५

इसके धारण से ब्रह्म-हत्या इत्यादि पाप से मुक्ति मिलती है, इसमें कोई संदेह नहीं है। सप्तमुखी रुद्राक्ष परम भाग्यशाली (महाभाग) है। इसे अनंग (कामदेव) के नाम से जाना जाता है। १६

इसके (सप्तमुखी के) धारण करने से किसी प्रकार के अपहरण और सोने की चोरी

से उत्पन्न पाप का नाश होता है। हे महासेन ! अष्टमुखी रुद्राक्ष साक्षात् विनायक (गणेश) देव हैं। १७

अन्न में मिलावट करनेवाला (अन्नकूट), डण्डी मारनेवाला (तूलकूट), सोने में मिलावट करनेवाला (स्वर्णकूट) जिस पाप का भागी होता है, उस पाप को यह रुद्राक्ष नष्ट करता है। दुष्ट और युवती स्त्रियों के तथा गुरु-स्त्री के स्पर्श से जो पाप उत्पन्न होता है, उन सभी प्रकार के पापों का और ऐसे सभी पापों का अष्टमुखी रुद्राक्ष के धारण से नाश होता है। अष्टमुखी रुद्राक्ष के धारणकर्त्ता के सभी विघ्न नष्ट हो जाते हैं और वह व्यक्ति परम-पद को प्राप्त होता है। १८-१९

ये सभी गुण अष्टमुखी रुद्राक्ष के धारण से उत्पन्न होते हैं। नवमुखी रुद्राक्ष भैरव है। इसे बायीं भुजा में धारण करना चाहिए। २०

इस रुद्राक्ष के धारण से भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है। वह मेरे तुल्य बलशाली भी हो जाता है। सहस्र भ्रूण-हत्या और शत ब्रह्म-हत्या के पाप से नवमुखी रुद्राक्ष धारणकर्त्ता तत्काल मुक्त हो जाता है।

दसमुखी रुद्राक्ष साक्षात् जनार्दन देव (विष्णु) है । हे देवेश, तुम ऐसा समझो । २१-२२

ग्रह, पिशाच, वेताल, ब्रह्म, राक्षस, सर्प आदि का उपशमन दसमुखी रुद्राक्ष के धारण से होता है। २३

एकादशमुखी रुद्राक्ष एकादश रुद्र ही हैं। इसे शिखा में धारण करना चाहिए। जो ऐसा करता है, उसके पुण्य-फल को सुनो। २४

एक सहस्र अश्वमेध-यज्ञ, एक सौ वाजपेय यज्ञ (सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने के निमित्त किए जानेवाले सोम-यज्ञ के सात रूपों में से एक) का पुण्य-फल तथा एक सौ सहस्र गायों के स्मयक् दान से जो फल प्राप्त होता है, वह फल एकादशमुखी रुद्राक्ष के धारण से तत्काल प्राप्त हो जाता है। द्वादशमुखी रुद्राक्ष को दोनों कानों में धारण करना चाहिए। २५-२६

इसके धारण से सूर्य प्रसन्न होते हैं और गोमेध एवं अश्वमेध यज्ञों से जो फल मिलता है, वह द्वादशमुखी रुद्राक्ष के धारण से हो जाता है। २७

शृंगधारी, शस्त्रधारी और व्याघ्र आदि से उसे कोई भय नहीं रहता। उसे शारीरिक और मानसिक कष्ट भी नहीं होता। २८

उसे इस प्रकार का तनिक भी कष्ट नहीं होता और न ही उसे कोई बीमारी ही पकड़ती है। उसे कहीं भी कोई भय नहीं होता। वह सदैव सुखपूर्वक ईश्वर की तरह रहता है। २९

हाथी, घोड़ा, मृग, मार्जार (बिलाड़), साँप, चूहा, मेढ़क, गधा, श्वगाल (शृंगाल) या ऐसे अनेक प्रकार के पशुओं की हत्या करके द्वादशमुखी रुद्राक्ष धारण करनेवाला व्यक्ति पापमुक्त हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

त्रयोदशमुखी रुद्राक्ष यदि किसी को हे वत्स ! प्राप्त हो जाए तो वह कार्तिकेय

के समान समझा जाना चाहिए। यह सभी प्रकार की कामनाओं और अर्थ तथा सिद्धि को देनेवाला है। रस और रसायन की भी सिद्धियाँ इससे मिल जाती हैं। ३०-३२

उसके लिए सभी प्रकार के भोग्य उपलब्ध हैं। इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है। हे षण्मुख ! जो अपनी माता, अपने पिता, अपने भ्राता की भी हत्या कर देता है, वह इससे उत्पन्न पापों से इस रुद्राक्ष के धारण के कारण मुक्त हो जाता है। हे मेरे पुत्र की तरह प्रिय पुरुष ! यदि चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष मिल जाए और कोई उसे मस्तक में धारण करे तो उसका शरीर शिव का शरीर हो जाता है। हे मुनि! पुनः पुनः वर्णन और बहुकथन से भी क्या! “अर्थात् इसकी महिमा नहीं कही जा सकती।” ३३-३५

जो व्यक्ति एक रुद्राक्ष भी भक्तिपूर्वक मस्तक पर धारण करता है, वह सदैव ब्राह्मणों और देवताओं के द्वारा पूजनीय बन जाता है और फिर परागति को भी प्राप्त करता है। ३६

छब्बीस रुद्राक्षों की माला मस्तक पर, पचास की माला हृदय पर, सोलह की माला भुजाओं में, बारह की माला कलाई में धारण करनी चाहिए। ३७

हे षडानन ! एक सौ आठ की माला, पचास की माला अथवा सत्ताईस की माला (रुद्राक्षमाला) पर जप करने से अथवा उन्हें धारण करने से अनंत फल की प्राप्ति होती है। हे षण्मुख ! यदि एक सौ आठ रुद्राक्षों की माला को धारण किया जाए तो उसे प्रत्येक क्षण अश्वमेध-यज्ञ के पुण्य का फल प्राप्त होता है। वह अपने इक्कीस कुलों का उद्धार कर शिवलोक में उदवर्गित कर देता है। ३८-४०

"इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पंचम अध्याय

ईश्वर ने कहा,—

हे षण्मुख ! अब मैं जपमाला के लक्षण बताता हूँ, उसे सुनो। रुद्राक्ष का मुख-भाग ब्रह्मा है, मध्य-भाग रुद्र और पुच्छ-भाग विष्णु है। यह भोग और मोक्ष के फलों को देनेवाला है। गोपुच्छ की तरह वलय की आकृति (वर्तुल गोलाकार) में अक्ष-सूत्र (माला) को गूँथना चाहिए। लाल और श्वेत तथा मिश्रित वर्ण के रुद्राक्ष-बीजों में छिद्र कर माला बनानी चाहिए। यह माला सकंटक पंचमुखी रुद्राक्ष-बीजों से पच्चीस दानों की बनानी चाहिए। १-३

मुख से मुख और पुच्छ से पुच्छ-भाग को मिलाना चाहिए। मेरु रुद्राक्ष-बीज को ऊर्ध्वमुखी रखना चाहिए और उसके ऊपर नागपाश (नाग-ग्रंथि) की व्यवस्था करनी चाहिए। ४

इस प्रकार संग्रथित माला मंत्रसिद्धि को देनेवाली बन जाती है। इस माला को सुगंधित जल से प्रक्षालित कर पंचगव्य से स्नान कराना चाहिए। ५

फिर शिव-जल से (शिवलिंग से स्पर्श कराए हुए जल अथवा शिव के अभिषेक से संचित जल) स्पर्श कराकर रुद्राक्ष-बीजों पर मंत्रों का न्यास करना चाहिए। शिव के अस्त्र-मंत्र से स्पर्श कर कवच-मंत्र से अवगुंठन करना चाहिए। ६

फिर मूल-मन्त्र का माला पर न्यास करना चाहिए। उसके पश्चात् पुनः पूर्व-कार्यों को करना चाहिए। फिर 'सद्यो जातः' आदि मंत्रों सें जल-सिंचन-पूर्वक मंत्राभिषेक करते हुए एक सौ आठ बार मूल-तंत्र का उच्चारण करना चाहिए। फिर शुद्ध भूमि पर उसे रखकर उसके ऊपर अम्बा-सहित शिव का न्यास करना चाहिए, जो परम कारण (आकाश की विद्यमानता के जो साम्बशिव-कारणस्वरूप हैं। परमः आकाशे।) हैं। ७-८

इस प्रकार माला की प्रतिष्ठा (प्राण-प्रतिष्ठा) होती है और जो माला सभी कामना और फलों को प्रदान करनेवाली बन जाती है। जिस देवता का जो मंत्र हो, उसी मंत्र से अभिपूजन करना चाहिए। ९

माथे पर, कण्ठ में अथवा कान में माला का न्यास करना चाहिए। रुद्राक्ष-माला से नियतात्मना (नियत समय पर, निश्चित संख्या में, निश्चित नियमपूर्वक, नित्य-जप के दृढविधान वाले जपकर्त्ता के आत्मनिश्चय के लिए 'नियतात्मना' शब्द का प्रयोग हुआ है।) जप करना चाहिए। १०

कण्ठ में, माथे पर, हृदय में, स्कन्धों पर, कान में, दोनों बाहुओं में नित्य रुद्राक्ष-धारण कर भक्ति-भाव से अपने को परम-तत्त्व के साथ युक्त करना चाहिए। ११

अधिक कथन और पुनः पुनः वर्णन क्या किया जाए! रुद्राक्ष-धारण नित्य-तत्त्व है। यह सबों से बढ़कर भी है। १२

स्नान, दान, जप, हवन, वैश्व-देव-कर्म (भोजन करने के पूर्व विश्व-देव-यज्ञ में देवताओं को भोजन-दान-कर्म), देवताओं के पूजन, प्रायश्चित्त-कर्म, श्राद्ध-कर्म, दीक्षा-काल इन सभी विशेष अवसरों पर जो कोई भी बिना रुद्राक्ष धारण किए यदि कोई विप्र मोहवश ये सभी वैदिक कर्म करते हैं तो वे निश्चय ही नरक चले जाते हैं। १३-१४

रुद्राक्ष को मस्तक, कण्ठ, हाथ और यज्ञोपवीत में धारण करना चाहिए। इसे स्वर्ण-सूत्र से भी ग्रथित कर शुद्धतापूर्वक धारण करना चाहिए। इसे अन्यथा-प्रकार से कभी नहीं धारण करना चाहिए। १५

रुद्राक्ष को अशुचि (अपवित्रता) के साथ कभी धारण नहीं करना चाहिए। इसे सदैव भक्ति के साथ धारण करना चाहिए। रुद्राक्ष के वृक्ष के स्पर्श से सम्भूत पवन से स्पर्श किया हुआ तृण भी पुण्य-लोक को चला जाता है। उसका पुनरागमन (पुनर्जन्म) नहीं होता। रुद्राक्ष-धारण कर यदि कोई मनुष्य कोई पाप-कर्म भी करता है, तो जाबाल-श्रुति के अनुसार वह सभी पाप-राशि को पार कर जाता है। रुद्राक्ष-धारण करनेवाले पशु भी रुद्रत्व को प्राप्त कर जाते हैं। १६-१८

जो कोई मानव रुद्राक्ष-माला धारण किया करते, मस्तक पर एक भी रुद्राक्ष धारण करते हैं, ऐसे रुद्र-भक्त के सभी दुःखों का नाश और पापों का विमोचन हो जाता है। जो परमात्मा शम्भु के नामों का उच्चारण करते हैं तथा जो रुद्राक्ष से अलंकृत हैं, वे नरोत्तम हो जाते हैं। सभी प्रकार के श्रेय और अर्थ की प्राप्ति के लिए मनुष्य को रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। १९-२१

कर्ण-पाश में, शिखा में तथा कण्ठ, हाथ एवं उदर में रुद्राक्ष-धारण करनेवालों को महादेव, विष्णु तथा ब्रह्मा की विभूतियाँ प्राप्त होती हैं। २२

भक्तिपूर्वक रुद्राक्ष धारण करनेवालों के लिए अन्य देवगण, गोत्र-ऋषिगण रुद्राक्ष में निवास करने लगते हैं। २३

उनके वंश में उत्पन्न मुनिगण, श्रौत धर्मपरायण और सभी शुद्ध आत्माएँ प्रसन्न और शुद्ध होती हैं। २४

साक्षात् वेद-सिद्ध और मुक्ति-प्रदायक रुद्राक्ष में ऐसे ही श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती। बहुत जन्मों के पश्चात् और वह भी महादेव की कृपा पर रुद्राक्ष-धारण करने की इच्छा होती है। यह इच्छा स्वाभाविक होती है। रुद्राक्ष का माहात्म्य जाबाल के द्वारा आदरपूर्वक कहा गया है। २५-२६

हे पुत्र ! यह माहात्म्य सभी मुनियों के द्वारा और मेरे द्वारा भी पढ़ा जाता है। रुद्राक्ष का फल-बीज तीनों लोकों में विश्रुत है। २७

रुद्राक्ष-बीज (फल) के दर्शन से जो पुण्य प्राप्त होता है, उससे कोटि-गुणित फल उसके स्पर्श से प्राप्त होता है। रुद्राक्ष के धारण से शत-कोटि-गुणित फल मिलता है। फिर यदि कोई मनुष्य रुद्राक्ष पर जप करे तो उसे लक्ष-कोटि-सहस्र और लक्ष-कोटि-शत-गुणित पुण्य प्राप्त होता है। यह नित्य-सत्य है। इसके संबंध में विचार करने की आवश्यकता नहीं हैं। २८-२९

हाथ में, हृदय पर, कण्ठ में, कानों में तथा मस्तक पर जो रुद्राक्ष धारण करता है, वह स्वयं रुद्र हो जाता है, यहाँ संशय का स्थान नहीं है। ३०

वह अवध्य होता है। सभी प्राणियों के बीच वह रुद्रवत् पृथ्वी पर भ्रमण करता है। वह सुरों और असुरों के द्वारा शिव की भाँति वंदनीय हो जाता है। ३१

रुद्राक्षधारी मनुष्यों के द्वारा भी सर्व-वंदनीय बन जाता है। समाज से परित्यक्त, दुष्कर्मों में स्थित और पापों से युक्त व्यक्ति भी रुद्राक्ष-धारण कर इन सभी पापों से मुक्त हो जाता है। यदि कोई कुत्ता भी कण्ठ में रुद्राक्ष-धारण कर मरता है तो उसे भी मोक्ष मिल जाता है, फिर मनुष्य का तो कहना ही क्या। यदि जप-ध्यान के बिना भी रुद्राक्ष-धारण किया जाए तो वह व्यक्ति सभी पापों से मुक्त होकर परमगति को प्राप्त कर लेता है। इसलिए एक रुद्राक्ष को भी यत्नपूर्वक मन्त्राभिषेकादि-क्रिया के साथ धारण करना चाहिए। ३२-३५

इस प्रकार रुद्राक्षधारी इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार कर उन्हें रुद्र-लोक में उद्‌वर्गित कर देता है। अतः रुद्राक्ष की विधि और उसके माहात्म्य के संबंध में फिर और कुछ कहता हूँ। ३६

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

षष्ठ अध्याय

ईश्वर ने कहा,—

हे महासेन ! कुशग्रंथि-पुत्र जीवादि जितने भी अन्य पदार्थ हैं, उनमें कोई भी रुद्राक्ष की एक सोलहवीं कला को भी प्राप्त नहीं कर सकता, सोलहों कलाओं की तो बात क्या! १

जिस प्रकार पुरुषों में विष्णु, ग्रहों में सूर्य, नदियों में गंगा, मुनियों में कश्यप, अश्व-समूहों में उच्चैःश्रवा, देवों में ईश्वर (शिव), देवियों में गौरी (पार्वती) जैसे श्रेष्ठ हैं, वैसे ही, यह (रुद्राक्ष), सबों में श्रेष्ठ है। अतः इससे बढ़कर न तो कोई स्तोत्र है, न व्रत। अक्षय्यों और दानों के बीच रुद्राक्ष अपनी विशेषता रखता है। २-४

शान्तचित्त शिव-भक्त के लिए इस उत्तम रुद्राक्ष का दान उत्तम है। इससे उत्पन्न पुण्य-फल की कोई सीमा नहीं है और न ही मैं उसका वर्णन करने में समर्थ हूँ।५

जिसने अपने कण्ठ में रुद्राक्ष-धारण कर लिया है, उसके लिए जो अन्न-प्रदान करता है, वह अपने इक्कीस कुलों (पीढ़ियों) का उद्धार कर रुद्र-लोक में चला जाता है।६

जिसके मस्तक पर भस्म नहीं और न शरीर में रुद्राक्ष-धारण हो और न ही शिव-मन्दिर में (अपने ही घर को शिवपूजास्थल बनाकर उसमें) पूजा करता हो, वह ब्राह्मण श्वपच और अधम (चाण्डाल और नीच) है। ७

यदि मस्तक पर रुद्राक्ष-धारण करके कोई मांस भी खाता हो, शराब भी पीता हो अथवा अंत्यजों (नीचों) के पास जाता हो, या उनसे संपर्कित होता हो, तब भी वह इन सभी पापों से मुक्त हो जाता है। ८

सभी यज्ञ, तप, दान और वेदाभ्यास से जो फल मिलता है, वह संपूर्ण फल रुद्राक्ष-धारण से तत्काल प्राप्त हो जाता है। ९

चारों वेदों के अथवा पुराणों के पाठ से जो पुण्य मिलता है, तीर्थ-सेवन से अथवा सभी विद्याओं के ज्ञान से जो पुण्य प्राप्त होता है, वह पुण्य रुद्राक्ष-धारण से तत्काल प्राप्त हो जाता है। मृत्यु के समय यदि कोई रुद्राक्ष-धारण करके मरे तो वह रुद्र-लोक में चला जाता है और उसका पुनर्जन्म नहीं होता। यदि कण्ठ में रुद्राक्ष-धारण करके अथवा बाहुओं में रुद्राक्ष-धारण कर कोई मरे तो वह अपने इक्कीस कुलों का उत्तारण कर देता है, यानी तार देता है और रुद्र-लोक में निवास करने लगता है। वह ब्राह्मण या चाण्डाल कोई भी हो सकता है, अथवा सगुणोपासक या निर्गुणोपासक भी हो सकता है। (गुणी या गुणहीन भी हो) १०-१३

भस्म और रुद्राक्ष-धारण करनेवाला देवत्व और शिवत्व को धारण कर भ्रमण करता है। पवित्र अथवा अपवित्र, किसी भी अवस्था को प्राप्त, अभक्ष्य का भक्षण करनेवाला, म्लेच्छ या चाण्डाल, अथवा सभी प्रकार के पापों से युक्त व्यक्ति रुद्राक्ष-धारण-मात्र से रुद्र हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं हैं। १४-१५

मस्तक पर रुद्राक्ष-धारण कोटि-गुणा फल देनेवाला होता है। कानों में रुद्राक्ष-धारण दश-कोटि-गुणित पुण्य फलदायक है। गले में शत-कोटि-गुणित, मस्तक-मध्य में कोटि-सहस्र-गुणित-फलदायक है। १६

यज्ञोपवीत में दस सहस्र-गुणित, भुजाओं में लक्षकोटि-गुणित पुण्यफलदायक है। कलाई में रुद्राक्ष-धारण तो मोक्ष को साधित करनेवाला पर-तत्त्वमय है। १७

रुद्राक्ष-धारण करके जो भी वैदिक कर्म हो, उसे भक्तिपूर्वक करनेवाला ब्राह्मण महान् फलों को प्राप्त करता है (अथवा महलोक से उस फल को तत्काल प्राप्त करता है)। १८

रुद्राक्ष-माला को कण्ठ में यदि बिना भक्ति का भी धारण किया और वह नित्य पाप-कर्मा हो तो भी वह सभी प्रकार के बंधनों से मुक्त हो जाता है। १९

जो व्यक्ति रुद्राक्ष के प्रति अर्पित-चित्त और रुद्राक्ष-धारण नहीं भी किए हुए है, वह इस लोक में माहेश्वर की तरह नमस्य और लिंगवत् प्रतिष्ठित है। २०

विद्या-रहित अथवा विद्या-सहित होकर भी रुद्राक्ष-धारण करनेवाला व्यक्ति शिवलोक को प्राप्त करता है, जैसे कीकट-प्रदेश (मगध) में गधे ने शिवलोक को प्राप्त किया था। २१

स्कन्द ने कहा,—

हे देव ! कीकट-प्रदेश में गधे ने किस प्रकार रुद्राक्ष-धारण किया और किसने दिया, उसे हे परमेश्वर ! मुझे बताइए । २२

भगवान् ने कहा,—

हे पुत्र, सुनो, प्राचीन काल में विन्ध्य-पर्वत-शृंखला में एक गधा रुद्राक्ष का भार-वहन करते हुए एक पथिक से हाँककर ले जाया जा रहा था। रुद्राक्ष-भार को ढोने में असमर्थ होने के कारण श्रान्त हो जाने के कारण वह भूमि पर गिर गया और मर गया। हे महासेन ! मेरे आशीर्वाद से वह मेरे समीप चला आया और जितने मुखों का दुर्लभ रुद्राक्ष उसके साथ था, उतने युग-सहस्र तक वह शिवलोक में स्थित रहा। अपने शिष्य (अन्तेवासी) को ही यह बात बतानी चाहिए, अशिष्य को नहीं बतानी चाहिए। २३-२६

अभक्त और मूर्ख को यह सब कभी नहीं बताना चाहिए, किन्तु अभक्त या भक्त, नीच या नीचतर जो कोई भी रुद्राक्ष-धारण करता है, वह सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है। रुद्राक्ष-धारण पुण्य है। यह किसके द्वारा और किसके समान है, यह बताइए। २७-२८

तत्त्व-दर्शी मुनियों ने इस महाव्रत को कहा है—जो सहस्र रुद्राक्षों को धारण कर रुद्राक्ष-व्रतधारी बनता है, उसे सभी देवगण नमस्कार करते हैं। जैसे रुद्र हैं, वह वैसा ही बन जाता है। सहस्र रुद्राक्षों के अभाव में दोनों बाहुओं में सोलह-सोलह रुद्राक्षों को धारण करना चाहिए। २९-३०

जो शिखा के मध्य एक, हाथों में बारह-बारह, कण्ठ में बत्तीस, मस्तक पर चालीस, कानों में छह-छह और वक्षःस्थल पर एक सौ आठ रुद्राक्षों को धारण करता है, वह रुद्र के सदृश पूज्य हो जाता है। ३१-३२

जो रुद्राक्षों को मोती, मूंगा, स्फटिक, चाँदी, नीलम और सोना (मुक्ता-प्रवाल,-स्फटिक-रौप्य-वैडूर्य-कांचन) के साथ धारण करता है, वह शिव हो जाता है।

जो केवल रुद्राक्षों को ही धारण करता है और वह भी आलस्यपूर्वक करता है तो उसे पाप स्पर्श भी नहीं करते, जैसे प्रकाश को अंधकार स्पर्श नहीं कर पाता। ३३-३४

रुद्राक्ष की माला पर किया गया जप अनंत फलों को प्रदान करनेवाला सिद्ध होता है। जिसके शरीर पर बहुपुण्यदायक एक भी रुद्राक्ष नहीं है, उसका जन्म निरर्थक है, जैसे त्रिपुंड्र-रहित (भस्मालेप-रहित) का जीवन व्यर्थ है। जो मस्तक पर रुद्राक्ष-धारण कर स्नान करता है, उसे गंगा-स्नान का फल मिलता है, इसमें कोई संदेह नहीं। एकमुखी, पंचमुखी, एकादशमुखी और फिर चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष लोक-पूजित हैं। भक्तिपूर्वक प्रतिदिन रुद्राक्ष का पूजन भी होना चाहिए, क्योंकि यह शंकरात्मक अर्थात् शिवस्वरूप माना गया है। ३५-३८

ये रुद्राक्ष दरिद्र व्यक्ति को पृथ्वी पर राजा तक बना देते हैं। यहाँ मैं तुम्हें पुराणोक्त एक उत्तम मत कहूँगा। ३९

कोसल देश में गिरिनाथ नाम का एक ब्राह्मण था, ऐसा सुना गया है। वह महाधनी, महाधर्मात्मा और वेद-वेदांग का पारंगत विद्वान् था। ४०

उसका एक पुत्र यज्ञ इत्यादि करनेवाला, दीक्षा-प्राप्त, सुंदर शरीरवाला, गुणनिधि के नाम से विख्यात तरुण काम के सदृश सुंदर था। ४१

उसने सुधिषण नामक अपने गुरु की पत्नी मुक्तावली को अपने रूप, यौवन और मद से मोहित कर लिया। ४२

फिर उसके साथ उसने कुछ समय व्यतीत किया और फिर गुरु को विष देकर निर्भय हो गया। ४३

जब उसके माता-पिता को जिस क्षण इस कर्म (कुकर्म) की जानकारी हुई, उसी समय उसने अपने माता-पिता की हत्या भी उसी विष से कर दी। ४४

नाना प्रकार के विलास और भोग करने और द्रव्य व्यय हो जाने के पश्चात् उस खल ने ब्राह्मणों के घर में चोरी की। ४५

सुरापान करने और मदोन्मत्त रहने के कारण वह अपने गोत्र-बन्धुओं से बहिष्कृत हो गया। ४६

वह मुक्तावली के साथ गहन वन में चला गया।

उसने मार्ग में द्रव्यलोभ से वशीभूत होकर अनेक ब्राह्मणों की हत्या कर दी। ४७

इस प्रकार बहुत दिन व्यतीत होने पर वह अधम मर गया। उसे ले जाने के लिए यम के सहस्रों दूत उपस्थित हो गए। ४८

उसी समय शिवलोक से शिवगण भी समागत हुए। यमदूतों और शिवदूतों में, हे गिरिजासुत ! बहुत विवाद हुआ। ४९

यमदूतों ने कहा—इसका पुण्य ही क्या है कि तुम सभी शम्भुसेवक इसे ले जाने के लिए आए हो, बोलो तो! ५०

शिवदूतों ने कहा—यह जिस भूमिखंड पर मरा है, उसके दस हाथ नीचे रुद्राक्ष है।५१

हे दूतो ! उसी (रुद्राक्ष) के प्रभाव से हम इसे शिव के समीप लिए जा रहे हैं।

फिर वह ब्राह्मण दिव्य रूप धारण कर विमान पर चढ़ गया और फिर गुणनिधिं नामक वह ब्राह्मण दूतों के साथ शिवलोक में चला गया। हे सुंदर ! व्रत को धारण करनेवाले, मैंने तुम्हारे सामने रुद्राक्ष के माहात्म्य का कथन किया है। ५२-५३

इस प्रकार रुद्राक्ष का माहात्म्य मेरे द्वारा कहा गया है, जो सभी पापों को क्षय करनेवाला और महान् पुण्य को देनेवाला है। ५४

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सप्तम अध्याय

नारायण ने कहा,—

हे नारद ! इस प्रकार षड्वक्त्र (कार्तिकेय) शंकर के द्वारा समझाए गए। वे रुद्राक्ष की महिमा को समझकर कृतार्थ हो गए। १

इस प्रकार महिमान्वित रुद्राक्ष, जो मेरे अनुभव और आचरण में आया है तथा मैं जिसका उल्लेख करता हूँ, उसके संबंध में तुम सदाचारपूर्वक और भी कुछ सुनो।२

जिस प्रकार रुद्राक्ष की महिमा अनन्त पुण्यों को प्रदान करनेवाली है तथा जिसका मैंने उल्लेख किया है, उसके मन्त्र-विन्यास के लक्षण का उसी प्रकार मैं तुमसे वर्णन करता हूँ। ३

रुद्राक्ष के दर्शन से लाख गुना पुण्य होता है। इसके स्पर्श से कोटि-गुणित फल होता है। उससे भी (स्पर्शवत् पुण्य से) कोटि-गुणित पुण्य-फल मनुष्य को रुद्राक्ष-धारण से प्राप्त होता है। ४

उससे लक्ष-कोटि-सहस्र एवं लक्ष-कोटि-शत-गुणित-फल मनुष्य को रुद्राक्ष-धारणपूर्वक रुद्राक्ष-माला पर जप करने से मिलता है। ५

रुद्राक्षों के भद्राक्ष-धारण से महाफल मिलता है। आमले के फल के प्रमाणमात्र का रुद्राक्ष बीज श्रेष्ठ कहा गया है। ६

बेर के फल के प्रमाणमात्र के रुद्राक्ष को ज्ञानियों ने मध्यम कोटि का कहा है। चने के प्रमाणमात्र के रुद्राक्ष को अधम कहा गया है। ऐसा मेरे द्वारा कथन है। ७

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये जो पृथ्वी पर चार जातियाँ हैं, उनके लिए शुभ और अनुकूल रुद्राक्ष के वृक्ष के भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चार प्रकार के बीज-फल हैं। ८

श्वेत रुद्राक्ष ब्राह्मण, लाल रुद्राक्ष क्षत्रिय, पीला रुद्राक्ष वैश्य और काला रुद्राक्ष शूद्र माना गया है। ९

ब्राह्मणों को श्वेत रुद्राक्ष, राजा को लाल रुद्राक्ष, वैश्य को पीला रुद्राक्ष और शूद्र को काला रुद्राक्ष धारण करना चाहिए । १०

समान-आकृति के, स्निग्ध (चमकदार—lustrous), दृढ़ (ठोस) और काँटों (कंटक) से युक्त रुद्राक्षों को शुभ कहा गया है। कीड़ों के द्वारा खाया हुआ, टूटा-फूटा (जगह-जगह छिद्र-युक्त) कंटक-रहित अथवा ऐसे किसी दोष के साथ व्रण-युक्त (ऊबड़-खाबड़) गोलाई से हीन—ये छह प्रकार के रुद्राक्ष वर्जनीय हैं। जो रुद्राक्ष स्वतः

कृत-द्वार हों, (जिसके सूत्र-ग्रथन के लिए स्वाभाविक और यथास्थान छिद्र हो), वह उत्तम रुद्राक्ष कहा जाता है। ११-१२

जिसमें मानव-प्रयत्न से छेद किया जाए वह मध्यम श्रेणी का रुद्राक्ष समझा जाएगा। समान, स्निग्ध, दृढ और वृत्तवत् रुद्राक्ष को रेशम या ऊन के सूत्रों से ग्रथित कर धारण करना चाहिए। १३

जो रुद्राक्ष अपने संपूर्ण बीज-शरीर में समान और अति विलक्षणता-युक्त हो, जिसके घर्षण से (किसी आधार-फलक पर) सोने की रेखा की आभा दीख पड़े, उस रुद्राक्ष को उत्तम समझना चाहिए और शिव के उपासकों को उसे ही धारण करना चाहिए। शिखा में एक और मस्तक पर बत्तीस रुद्राक्षों का वहन करना चाहिए। १४-१५

गले में छत्तीस और भुजाओं में सोलह-सोलह, कलाइयों में बारह-बारह और कन्धों पर पाँच सौ रुद्राक्षों को धारण करना चाहिए। १६

एक सौ आठ रुद्राक्षों की माला को यज्ञोपवीत की तरह धारण करना चाहिए। कण्ठप्रदेश में द्विसर, त्रिसर (दो लड़ी, तीन लड़ी) रुद्राक्ष को धारण करना चाहिए। कुण्डल में, मुकुट में, कर्णनिकाहार में, केयूर (कंगन), कटक (मेखला-कमरधनी) में, पेट पर—शरीर और आभूषण के इन स्थलों पर भी रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। १७-१८

सोते समय, पीते समय अर्थात् सभी कालों में मनुष्य को रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। तीन सौ रुद्राक्ष का धारण अधम, पाँच सौ रुद्राक्षों का धारण मध्यम कहलाता है।१९

एक सहस्र रुद्राक्षों का धारण उत्तम कहा गया है। मस्तक पर रुद्राक्ष-धारण ईशान मंत्र से, कानों में तत्पुरुष मंत्र से, ललाट पर अघोर मंत्र से, और हृदय पर भी अघोर मंत्र से ही रुद्राक्ष-धारण करना चाहिए। हाथों में अघोर-बीज-मंत्र से रुद्राक्ष-धारण करना चाहिए। २०-२१

पचास रुद्राक्षों को वामदेव से ग्रथित कर पेट पर धारण करना चाहिए। पंचब्रह्मों के अंगों से भी इस प्रकार रुद्राक्ष-धारण करना चाहिए। २२

मूल-मंत्रों से ग्रथित कर ही सभी रुद्राक्षों को धारण करना चाहिए। एकमुखी रुद्राक्ष परतत्त्व-प्रकाशक होता है। २३

परतत्त्व-धारण से ही परतत्त्व का प्रकाशन होता है। (अर्थात् एकमुखी रुद्राक्ष-धारण से ही परतत्त्व का साक्षात्कार होता है।) द्विमुखी रुद्राक्ष, हे मुनिश्रेष्ठ ! अर्धनारीश्वर होता है। २४

इसके धारण से अर्धनारीश्वर नित्यशः प्रसन्न रहते हैं। त्रिमुखी रुद्राक्ष साक्षात् अग्नि है। इसके धारण से स्त्री-हत्या का पाप तत्क्षण समाप्त हो जाता है। २५

यह त्रिमुखी रुद्राक्ष तीनों अग्नियों का भी रूप है, जिसके धारण से अग्निदेव नित्यशः प्रसन्न रहते हैं। २६

चतुर्मुखी रुद्राक्ष पितामह-स्वरूप है, जिसके धारण से मनुष्य विपुल धन और उत्तम आरोग्य को प्राप्त करता है। २७

इसके धारण से विपुल ज्ञान और संपत्ति की प्राप्तिं होती है, यदि मनुष्य इसे

शुद्धतापूर्वक धारण करे। पंचमुखी रुद्राक्ष, पंचब्रह्मस्वरूप है। २८

इसके धारणमात्र से महेश्वर प्रसन्न होते हैं। षण्मुखी रुद्राक्ष के देवता कार्तिकेय हैं। २९

षण्मुखी रुद्राक्ष के देवता विनायक (गणेश) भी हैं, ऐसा मनीषिगण कहते हैं। सप्तमुखी रुद्राक्ष के देवता सप्तमात्राएँ हैं। इसके सप्ताश्वक और सप्तमुनि भी देव हैं। इसके धारण से विपुल धन और उत्तम एवं महान् आरोग्य की प्राप्ति होती है। ३०-३१

शुचिता-पूर्वक सप्तमुखी रुद्राक्ष के धारण से महान् ज्ञान और संपत्ति की प्राप्ति मनुष्य को होती है। अष्टमुखी रुद्राक्ष पर अष्टमात्रा के देवता विराजमान होते हैं। इससे अष्ट-वसुओं एवं गंगा की भी प्रीति प्राप्त होती है और शुभ होता है। इसके धारण से ये सभी देव-देवी-गण प्रीतिकर हो जाते हैं, ऐसा सत्यवादियों ने कहा है।३२-३३

नवमुखी रुद्राक्ष यम-देव के स्वरूप है। इसके धारण से कभी भी यम का भय नहीं रहता। ३४

दशमुखी रुद्राक्ष दश आशा-देव के रूप में स्मरण किया जाता है। इसके धारण से दशाशा-प्रीति-जनन होता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। ३५

एकादशमुखी रुद्राक्ष एकादश रुद्र का प्रतीक है। इसके देव इन्द्र भी माने गए हैं। यह रुद्राक्ष सदैव सुख की वृद्धि करनेवाला है। ३६

द्वादशमुखी रुद्राक्ष महा-विष्णु-स्वरूप है। यह द्वादश-आदित्य-देव का भी अधिवास-स्थान है। ३७

त्रयोदशमुखी रुद्राक्ष कामना, सिद्धि और शुभ को प्रदान करने वाला है। इसके धारण-मात्र से कामदेव प्रसन्न होते हैं। ३८

चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष रुद्र के नेत्र से समुद्भूत है। यह सभी प्रकार की व्याधियों को हरण करनेवाला और सभी प्रकार के आरोग्य को प्रदान करनेवाला है। ३९

मांस, मद्य, लहसुन, प्याज, सहजन, लहसोडा तथा विड्वराह इत्यादि का भक्षण रुद्राक्ष-धारियों के लिए वर्जित है। ४०

ग्रहण, विषुव (मेषतुला), संक्राति, अयन (समय), दर्श (अमावस), पूर्णिमा, और ऐसे पुण्य-दिवसों में रुद्राक्ष-धारण से तत्काल ही सभी पापों से मुक्ति मिलती है। ४१

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

श्रीशिवमहापुराणम्

प्रथमा विद्येश्वर-संहिताः पञ्चविंशोऽध्यायः

रुद्राक्ष-माहात्म्य-वर्णनम्

सूत उवाच,—

शौनकर्षे महाप्राज्ञ शिवरूप महापते ।
शृणु रुद्राक्षमाहात्म्यं समासात्कथयाम्यहम् ॥१॥

शिवप्रियतमोज्ञेयो रुद्राक्षः परपावनः ।
दर्शनात्स्पर्शनाज्जाप्यात्सर्वपापहरः स्मृतः ॥२॥
पुरा रुद्राक्ष-महिमा देव्यग्रे कथितो मुने ।
लोकोपरकरणार्थाय शिवेन परमात्मना ॥३॥

शिव उवाच,—

शृणु देवि महेशानि रुद्राक्षमहिमा शिवे ।
कथयामि तव प्रीत्या भक्तानां हितकाम्यया ॥४॥
दिव्यवर्ष-सहस्राणि महेशानि पुनः पुरा ।
तपः प्रकुर्वतस्त्रस्तंमनः संयम्य वै मम ॥५॥
स्वतन्त्रेण परेशेन लोकोपकृति-कारिणा ।
लीलया परमेशानि चक्षुरुन्मीलितं मया ॥६॥
पुटाभ्याञ्चारुचक्षुभ्यां पतिता जलबिन्दवः ।
तत्राश्रुबिन्दवो जाता वृक्षा रुद्राक्ष-संज्ञकाः ॥७॥
स्थावरत्वमनुप्राप्यभक्तानुग्रहकारणात् ।
ते दत्ताविष्णुभक्तेभ्यश्चतुर्वर्णेभ्य एव च ॥८॥
भूमौ गौडोद्भवांश्चक्रे रुद्राक्षाञ्छिववल्लभान् ।
मथुरायामयोध्यायां लङ्कायां मलये तथा ॥९॥
सह्याद्रौचतथाकाश्यादशेष्वन्येषु वा तथा ।
परानसह्यपापौधभेदनाच्छ्रुतिनोदनान् ॥१०॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राजाताममाज्ञया ।
रुद्राक्षास्ते पृथिव्यातुतज्जातीयाः शुभाक्षकाः ॥११॥
श्वेतरक्ताः पीत-कृष्णा-वर्णाज्ञेया क्रमाद्बुधैः ।
स्वजातीयं नृभिर्धार्यं रुद्राक्षं वर्णतः क्रमात् ॥१२॥
वर्णैस्तु तत्फलं धार्यं भुक्तिमुक्तिफलेप्सुभिः ।
शिवभक्तैर्विशेषेण शिवयोः प्रीतये सदा ॥१३॥
धात्रीफलप्रमाणं यच्छ्रेष्ठमेतदुदाहृतम् ।
बदरीफलमात्रं तु मध्यमं संप्रकीर्तितम् ॥१४॥
अधमं चणमात्रं स्यात्प्रक्रियैषा परोच्यते ।
शृणु पार्वति सुप्रीत्या भक्तानां हितकाम्यया ॥१५॥
बदरीफलमात्रं च यत्स्यात्किल महेश्वरि ।
तथापि फलदं लोके सुखसौभाग्यवर्द्धनम् ॥१६॥
धात्रीफलसमं यत्स्यात्सर्वारिष्ट-विनाशनम् ।
गुञ्जया सदृशं यत्स्यात्सर्वार्थफलसाधनम् ॥१७॥
यथा यथा लघुः स्याद्वै तथाधिकफलप्रदम् ।
एकैकतः फलं प्रोक्तं दशांशैरधिकं बुधैः ॥१८॥

रुद्राक्षधारणं प्रोक्तं पापनाशनहेतवे ।
तस्माच्च धारणीयो वै सर्वार्थ-साधनोध्रुवम् ॥१९॥
यथा च दृश्यते लोके रुद्राक्षः फलदः शुभः ।
न तथा दृश्यतेऽन्या च मालिका परमेश्वरि ॥२०॥
समाः स्निग्धाः दृढाः स्थूलाः कण्टकैः संयुताः शुभाः ।
रुद्राक्षाः कामदा देवि भुक्तिमुक्तिप्रदाः सदा ॥२१॥
कृमिदुष्टं छिन्न-भिन्नं कण्टकैर्हीनमेव च ।
व्रणयुक्तमवृत्तं च रुद्राक्षान्षड्विवर्जयेत् ॥२२॥
स्वयमेव कृतद्वारं रुद्राक्षं स्यादिहोत्तमम् ।
यत्तु पौरुषयत्नेन कृतं तन्मध्यमं भवेत् ॥२३॥
रुद्राक्षधारणं प्राप्तं महापातकनाशनम् ।
रुद्रसंख्याशतं धृत्वा रुद्ररूपो भवेन्नरः ॥२४॥
एकादश शतानीह धृत्वा यत्फलमाप्यते ।
तत्फलं शक्यते नैव वक्तुं वर्ष-शतैरपि ॥२५॥
शतार्द्धेन युतैः पञ्चशतैर्वै मुकुटं मतम् ।
रुद्राक्षैर्विरचेत्सम्यग्भक्तिमान्पुरुषो वरः ॥२६॥
त्रिभिः शतैः षष्टियुक्तैस्त्रिरावृत्या तथा पुनः ।
रुद्राक्षैरुपवीतं च निर्मीयाद्भक्तितत्परः ॥२७॥
शिखायां च त्रयं प्रोक्तं रुद्राक्षाणां महेश्वरि ।
कर्णयोः षद् च षद् चैव वामदक्षिणयोस्तथा ॥२८॥
शतमेकोत्तरं कण्ठे बाह्वोर्वै रुद्रसंख्यया ।
कर्पूरद्वारयोस्तत्र मणिबन्धे तथा पुनः ॥२९॥
उपवीते त्रयं धार्यं शिवभक्तिरतैर्नरः ।
शेषानुर्वरितान्पञ्च सम्मितान्धारयेत्कटौ ॥३०॥
एतत्संख्याधृता येन रुद्राक्षाः परमेश्वरि ।
तद्रूपं तु प्रणम्यं हि स्तुत्यं हि सर्वैर्महेशवत् ॥३१॥
एवंभूतं स्थितं ध्याने यदा कृत्वासनैर्जनम् ।
शिवेति व्यावहरंश्चैव दृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते ॥३२॥
शतादिकसहस्रस्य विधिरेष प्रकीर्तितः ।
तदभावे प्रकारोऽन्यः शुभः सम्प्रोच्यते मया ॥३३॥
शिखायामेक-रुद्राक्षं शिरसा त्रिंशतं वहेत् ।
पञ्चाशच्च गले दध्याद्बाहुवोः षोडश षोडश ॥३४॥
मणिबन्धे द्वादश-द्विस्कन्धे पञ्चशतं वहेत् ।
अष्टोत्तर-शतैर्माल्यमुपवीतं प्रकल्पयेत् ॥३५॥
एवं सहस्ररुद्राक्षान्धारयेद्यो दृढव्रतः ।
तं नमन्ति सुराः सर्वे यथा रुद्रस्तथैव सः ॥३६॥

एकं शिखायां रुद्राक्षं चत्वारिंशत्तु मस्तके ।
द्वात्रिंशत्कण्ठदेशे तु वक्षस्यष्टोत्तरं शतम् ॥३७॥
एकैकं कर्णयोः षद् षद् बाह्वोः षोडश षोडश ।
करयोरविमानेन द्विगुणेन मुनीश्वर ॥३८॥
संख्या प्रीतिर्धृता येन सोऽपि शैवजनः परः ।
शिववत्पूजनीयो हि वन्द्यस्सर्वैरभीक्ष्णशः ॥३९॥
शिरसीशानमन्त्रेण कर्णे तत्पुरुषेण च ।
अघोरेण गले धार्यं तेनैव हृदयेऽपि च ॥४०॥
अघोरबीजमन्त्रेण करयोर्धारयेत्सुधीः ।
पञ्चदशाक्षग्रथितां वामदेवेन चोदरे ॥४१॥
पञ्चब्रह्मभिरङ्गश्च त्रिमालां पञ्चसप्त च ।
अथवा मूलमन्त्रेण सर्वानक्षांस्तु धारयेत् ॥४२॥
मद्यं मांसं तु लशुनं पलाण्डुं शिग्रुमेव च ।
श्लेष्मान्तकं विड्वराहं भक्षणे वर्जयेत्ततः ॥४३॥
वलक्षं रुद्राक्षं द्विजतनुभिरेवेह विहितं ।
सुरक्तं क्षत्राणां प्रमुदितमुमे पीतमसकृत् ॥
ततो वैश्यैर्धार्यं प्रतिदिवसमावश्यकमहो ।
तथा कृष्णं शूद्रैः श्रुतिगदितमार्गोऽयमगजे ॥४४॥
वर्णी वनी गृहयतिर्नियमेन दध्यादेतद्रहस्यपरमो न हि जातु तिष्ठेत् ।
रुद्राक्षधारणमिदंसुकृतैश्चलभ्यंत्यक्त्वेदमेतदखिलान्नरकान्प्रयान्ति ॥४५॥
आदावामलकात्स्वतो लघुतरा रुग्णास्ततः कण्टकैः ।
सन्दष्टाः कृमिभिस्तनूपकरणच्छिद्रेण हीनास्तथा ॥
धार्यानैव शुभेप्सुभिश्चणकवद्रुद्राक्षमप्यन्ततो—
रुद्राक्षो मम लिङ्गमङ्गलमुमे सूक्ष्मं प्रशस्तं सदा ॥४६॥
सर्वाश्रमाणां वर्णानां स्त्रीशूद्राणां शिवाज्ञया ।
धार्याः सदैव रुद्राक्षा यतीनां प्रणवेन हि ॥४७॥
दिवा बिभ्रद्रात्रिकृतै रात्रौ बिभ्रद्दिवाकृतैः ।
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने मुच्यते सर्वपातकैः ॥४८॥
ये त्रिपुण्ड्रधरा लोके जटाधारिण एव ये ।
ये रुद्राक्षधरास्ते वै यमलोकं प्रयान्ति न ॥४९॥
रुद्राक्षमेकं शिरसा बिभर्तितथा त्रिपुण्ड्रं च ललाटमध्ये ।
पञ्चाक्षरं ये हि जपन्ति मन्त्रं पूज्याभवद्भिः खलु ते हि साधवः ॥५०॥
यस्याङ्गे नास्ति रुद्राक्षस्त्रिपुण्ड्रं भालपट्टके ।
मुखे पञ्चाक्षरं नास्ति तमानय यमालयम् ॥५१॥
ज्ञात्वा ज्ञात्वातत्प्रभावं भस्मरुद्राक्षधारिणः ।
ते पूज्याः सर्वदास्माकं नो नेतव्याः कदाचन ॥५२॥

एवमाज्ञापयामास कालोपि निज किङ्करान् ।
तथेतिमत्त्वाते सर्वे तूष्णीमासन्सुविस्मिताः ॥५३॥
अतएव महादेवि रुद्राक्षेत्यघनाशनः ।
तद्धरोमत्प्रियः शुद्रोऽत्यघवानपिपार्वति ॥५४॥
हस्तेबाहौ तथा मूर्ध्नि रुद्राक्षं धारयेत्तु यः ।
अवध्यः सर्वभूताना रुद्ररूपी चरेद्भुवि ॥५५॥
सुरासुराणा सर्वेषा वन्दनीयः सदा स वै ।
पूजनीयो हि दृष्टस्य पापहा च यथा शिवः ॥५६॥
ध्यानज्ञानावमुक्तोपि रुद्राक्षं धारयेत्तु यः ।
सर्वपाप-विनिर्मुक्तः स याति परमा गतिम् ॥५७॥
रुद्राक्षेण जपन्मन्त्र पुण्य कोटिगुण भवेत् ।
दशकोटिगुणपुण्य धारणाल्लभते नरः ॥५८॥
यावत्काल हि जीवस्य शरीरस्थो भवेत्स वै ।
तावत्काल स्वल्पमृत्युर्न त देवि विबाधते ॥५९॥
त्रिपुण्ड्रेण च संयुक्तं रुद्राक्षा-विलसाङ्गकम् ।
मृत्युञ्जय जपन्त च दृष्ट्वा रुद्रफल लभेत् ॥६०॥
पञ्चदेवप्रियश्चैव सर्वदेवप्रियस्तथा ।
सर्वमन्त्राञ्जपेद्भक्तो रुद्राक्षमालया प्रिये ॥६१॥
विष्णवादिदेवभक्ताश्च धारयेयुर्न संशयः ।
रुद्रभक्तो विशेषेण रुद्राक्षान्धारयेत्सदा ॥६२॥
रुद्राक्षाविविधाः प्रोक्तास्तेषा भेदान्वदाम्यहम् ।
शृणु पार्वति सद्भक्त्या भुक्ति-मुक्ति-फल-प्रदान् ॥६३॥
एकवक्त्रः शिवः साक्षाद्भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ।
तस्य दर्शन-मात्रेण ब्रह्महत्या व्यपोहति ॥६४॥
यत्र सम्पूजितस्तत्र लक्ष्मीर्दूरतरा न हि ।
नश्यन्त्युपद्रवाः सर्वे सर्वकामाभवन्ति हि ॥६५॥
द्विवक्त्रो देवदेवेशस्सर्वकामफलप्रदः ।
विशेषतः सरुद्राक्षो गोवध नाशयेद्द्रुतम् ॥६६॥
त्रिवक्त्रो यो हि रुद्राक्षः साक्षात्साधनदस्सदा ।
तत्प्रभावाद्भवेयुर्वै विद्याः सर्वाः प्रतिष्ठिताः ॥६७॥
चतुर्वक्त्रः स्वय ब्रह्मा नरहत्या व्यपोहति ।
दर्शनात्स्पर्शनात्सद्यश्चतुर्वर्गफलप्रदः ॥६८॥
पञ्चवक्त्रः स्वय रुद्रः कालाग्निर्नामतः प्रभुः ।
सर्वमुक्तिप्रदश्चैव सर्वकामफलप्रदः ॥६९॥
अगम्यागमन पापमभक्ष्यस्य च भक्षणम् ।
इत्यादि सर्व-पापानि पञ्चवक्त्रो व्यपोहति ॥७०॥

षड्वक्त्रः कार्तिकियस्तु धारणाद्दक्षिणे भुजे ।
ब्रह्महत्यादिकैः पापैर्मुच्यतेनात्र संशयः ॥७१॥
सप्तवक्त्रो महेशानिह्यनङ्गो नाम नामतः ।
धारणात्तस्य देवेशिदरिद्रोपीश्वरो भवेत् ॥७२॥
रुद्राक्षश्चाष्टवक्त्रश्चवसुमूर्तिश्च भैरवः ।
धारणात्तस्य पूर्णायुर्मृतो भवति शूलभृत् ॥७३॥
भैरवो नववक्त्रश्च कपिलश्च मुनिः स्मृतः ।
दुर्गावातदधिष्ठात्री नवरूपा महेश्वरी ॥७४॥
तं धारयेद्वामहस्ते रुद्राक्षं भक्ति-तत्परः ।
सर्वेश्वरो भवेन्नूनं मम तुल्यो न संशयः ॥७५॥
दशवक्त्रो महेशानि स्वयं देवो जनार्दनः ।
धारणात्तस्य देवेशि सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥७६॥
एकादशमुखोयस्तु रुद्राक्षः परमेश्वरि ।
सरुद्रोधारणात्तस्य सर्वत्र विजयी भवेत् ॥७७॥
द्वादशास्यं तु रुद्राक्षं धारयेत्केशदेशके ।
आदित्याश्चैवते सर्वेद्वादशैवस्थितास्तथा ॥७८॥
त्रयोदशमुखो विश्वेदेवस्तद्धारणान्नरः ।
सर्वान्कामानवाप्नोति सौभाग्यं मङ्गलं लभेत् ॥७९॥
चतुर्दशमुखो यो हि रुद्राक्षः परमः शिवः ।
धारयेन्मूर्ध्नि तं भक्त्या सर्वपापं प्रणश्यति ॥८०॥
इति रुद्राक्ष-भेदाहि प्रोक्ता वै मुखभेदतः ।
तत्तन्मन्त्राञ्छृणुप्रीत्याक्रमाच्छैलेश्वरात्मजे ॥८१॥
ॐ ह्रीं नमः १ ।
ॐ नमः २ ।
ॐ क्लीं नमः ३ ।
ॐ ह्रीं नमः ४ ।
ॐ ह्रीं नमः ५ ।
ॐ ह्रीं हुं नमः ६ ।
ॐ हुं नमः ७ ।
ॐ हुं नमः ८ ।
ॐ ह्रीं हुं नमः ९ ।
ॐ ह्रीं नमः नमः १० ।
ॐ ह्रीं हुं नमः ११ ।
ॐ क्रों क्षौं रौं नमः १२ ।
ॐ ह्रीं नमः १३ ।

ॐ नमः १४ ।
मक्तिश्रद्धायुतश्चैव सर्वकामार्थसिद्धये ।
रुद्राक्षान्धारयेन्मन्त्रैर्देवनालस्य वर्जितः ॥८२॥
विना मन्त्रेण यो धत्ते रुद्राक्षं मुवि मानवः ।
स याति नरकं घोरं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥८३॥
रुद्राक्ष-मालिनं दृष्ट्वा भूतप्रेतपिशाचकाः ।
डाकिनी-शाकिनी चैव ये चान्ये द्रोहकारकाः ॥८४॥
कृत्रिमं चैव यत्किञ्चिदभिचारादिकं च यत् ।
तत्सर्वं दूरतो याति दृष्ट्वा शङ्कित-विग्रहम् ॥८५॥
रुद्राक्ष-मालिनं दृष्ट्वा शिवो विष्णुः प्रसीदति ।
देवी गणपतिः सूर्य्यः सुराश्चान्येऽपि पार्वति ॥८६॥
एवं ज्ञात्वा तु माहात्म्यं रुद्राक्षस्य महेश्वरि ।
सम्यग्धार्यास्समन्त्राश्च मक्त्या धर्मविवृद्धये ॥८७॥
इत्युक्तं गिरिजाग्रेहि शिवेन परमात्मना ।
मस्म-रुद्राक्षमाहात्म्यं मुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥८८॥
शिवस्यातिप्रियौ ज्ञेयौ मस्मरुद्राक्षधारिणौ ।
तद्धारणप्रमावद्धि मुक्तिर्मुक्तिर्न संशयः ॥८९॥
मस्मरुद्राक्षधारीयः शिवमक्तः स उच्यते ।
पञ्चाक्षरजपासक्तः परिपूर्णश्च सन्मुखे ॥९०॥
विना मस्मत्रिपुण्ड्रेण विना रुद्राक्षमालया ।
पूजितोऽपि महादेवो नामीष्टफलदायकः ॥९१॥
तत्सर्वं च समाख्यातं यत्पृष्टं हि मुनीश्वर ।
मस्मरुद्राक्षमाहात्म्यं सर्वकामसमृद्धिदम् ॥९२॥
एतद्यः शृणुयान्नित्यम् माहात्म्यं परमं शुमम् ।
रुद्राक्षमस्ममनोर्मक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥९३॥
इह सर्वसुखं मुक्त्वा पुत्रपौत्रादिसंयुतः ।
लमेत्परत्र सन्मोक्षं शिवस्यातिप्रियो मवेत् ॥९४॥
विद्येश्वरसंहितेयं कथिता वो मुनीश्वराः ।
सर्वसिद्धिप्रदा नित्यं मुक्तिदा शिवशासनात् ॥९५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्यासाधन-खण्डे
रुद्राक्षमाहात्म्यवर्णनोनाम पञ्चविंशोऽध्यायः ।

भाषांतर (शिवपुराण)

प्रथमा विन्ध्येश्वर-संहिताः, पञ्चविंश अध्यांय

रुद्राक्ष-माहात्म्य-वर्णन

सूत जी ने कहा,—

हे शौनक, आप महान् प्रज्ञावान् और महान् मतिवाले हैं। मैं शिवरूप रुद्राक्ष के माहात्म्य का समासकर (संपूर्ण उपलब्ध शास्त्र का समाहरण करके) कहता हूँ। तुम सुनो। १

यह रुद्राक्ष शिव को प्रियतम (सर्वाधिक प्रिय) है। यह परम पवित्र है। इसके दर्शन, स्पर्श और जप से संपूर्ण पापों का नाश होता है, ऐसा कहा गया है। २

सबसे पहले लोकोपकार की भावना से वशीभूत होकर परमात्मा शिव ने देवी (पार्वती) से रुद्राक्ष की महिमा का वर्णन किया। ३

हे महेशानि ! तुम रुद्राक्ष की महिमा सुनो। तुम्हारी प्रीति के कारण भक्तों की हित-कामना की इच्छा से कहता हूँ। ४

हे महेशानि ! बहुत दिनों पहले दिव्य-सहस्र-वर्ष तक तप करते हुए और मन का स्तंभन एवं संयम करते हुए मेरा मन क्षुब्ध हुआ था। ५

इसलिए हे परमेशानि ! स्वतंत्र परमेश्वर लोक के उपकार के निमित्त मैंने लीलापूर्वक नेत्र मींच लिए थे। ६

तत्परिणामतः मेरे नेत्रपुटों से जल के कुछ बिन्दु गिरे। उन्हीं अश्रुबिंदुओं से (पृथ्वी पर) वृक्ष उत्पन्न हुए, जिन्हें रुद्राक्षवृक्ष की आख्या दी गई। ७

वे रुद्राक्षवृक्ष भक्तों को अनुग्रह प्रदान करने की कामना से स्थावरत्व को प्राप्त हो गए। विष्णु के भक्तों और चारों वर्णों के निमित्त ये रुद्राक्षवृक्ष गौड़देश में उत्पन्न हुए। यह शिव के प्रिय स्थल मथुरा, अयोध्या, लंका, मलय (मलयाचल), सह्यपर्वत, काशी तथा अन्य दस देशों में पाप-समूह के नाश के लिए इन रुद्राक्षवृक्षों को बलात् उत्पन्न किया गया है। ८-१०

मेरी आज्ञा से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों की उत्पत्ति हुई है। पृथ्वी पर उत्पन्न रुद्राक्षों के भी ये चतुर्वर्ण-भेद हैं। शुभाक्ष (भद्राक्ष) इन्हीं की जाति के हैं। ११

विद्वानों ने इसके क्रम से श्वेत, रक्त, पीत एवं कृष्ण भेद किए हैं। अपनी जाति के वर्ण के अनुसार ही मनुष्यों को रुद्राक्ष-धारण करना चाहिए। १२

भुक्ति और मुक्ति (भोग और मोक्ष) फल की कामनावाले पुरुषों को इसे वर्णानुक्रम में अवश्य धारण करना चाहिए। विशेष-रूप से शिवभक्तों को शिव और शिवा की प्रीति के लिए इसका धारण अनिवार्य है। १३

आँवले के फल के समान रुद्राक्ष श्रेष्ठ होता है। बेर के समान मध्यम माना जाता है। १४

चने के समान का रुद्राक्ष अधम होता है। हे पार्वति ! इसकी पराप्रक्रिया (पारलौकिक विधान) को ध्यान से सुनो। भक्तों के हितार्थ मैं प्रीतिपूर्वक कहता हूँ। १५

हे महेश्वरि ! बेर के बराबर का रुद्राक्ष भी लोक में सुख और सौभाग्य की वृद्धि करनेवाला है। १६

धात्रीफल (आँवला) के बराबर का रुद्राक्ष सभी प्रकार के अरिष्ट (अनिष्ट और अशुभ) का शमन करता है। गुंजा के प्रमाण का रुद्राक्ष सर्वार्थसाधक होता है। १७

रुद्राक्ष जितना ही छोटा होगा, उतना ही फलदायक होगा। परस्पर (एक) दूसरे से एक-एक दशांश (लघुतर) अधिक फल प्रदान करता है, ऐसा विद्वानों ने कहा है।१८

रुद्राक्ष को पाप-नाश के निमित्त धारण किया जाता है। इसलिए संपूर्ण अर्थों की सिद्धि (सर्वार्थ-साधन) के लिए रुद्राक्ष-धारण अवश्य करना चाहिए। १९

विश्व में रुद्राक्ष की माला के सदृश हे परमेश्वरि ! अन्य कोई भी दूसरी माला फलदायक और शुभ नहीं है। २०

सम, स्निग्ध, दृढ़, स्थूल, कंटक-युक्त रुद्राक्ष शुभ होते हैं। ये कामनाओं को सिद्ध करनेवाले तथा सदैव भुक्ति-मुक्ति-प्रदायक हैं। २१

कीटाणुओं से खाया हुआ, छिन्न-भिन्न, काँटों से रहित, व्रणयुक्त, वर्तुलता-रहित, ये छह प्रकार के रुद्राक्ष त्याज्य है। २२

जिस रुद्राक्ष में स्वतः छेद हो, वह उत्तम है। जिसे मानवीय प्रयत्न से छिद्रित किया जाए, वह मध्यम है। २३

रुद्राक्ष-धारण से महापाप का भी नाश होता है। रुद्र-संख्याशत (ग्यारह सौ) रुद्राक्षों को धारण कर मनुष्य रुद्र-रूप हो जाता है। २४

इन ग्यारह सौ रुद्राक्षों के धारण का जो फल है, वह सौ वर्षों में भी वर्णित नहीं हो सकता। २५

साढ़े पाँच सौ रुद्राक्षों को मुकुट-रूप में जो भक्तिवान् पुरुष सम्यक् रूप से धारण करता है, वह भी फलदायक है। २६

तीन सौ साठ रुद्राक्षों की तीन लड़ें बनाकर यज्ञोपवीत की तरह भक्तिपूर्वक पहनने का भी फल महान् है। २७

शिखा में तीन रुद्राक्षों को, हे महेश्वरि ! कानों में छह-छह वाम और दक्षिण की ओर पहनना चाहिए। २८

कंठ में एक सौ एक, बाँहों में ग्यारह, कर्पूर-द्वार में और मणिबंध में ग्यारह-ग्यारह रुद्राक्ष धारण करने चाहिए। २९

यज्ञोपवीत में तीन और कटि-प्रदेश में पाँच रुद्राक्षों का शिवभक्ति में निरत व्यक्तियों के लिए धारण-विधान है। ३०

हे परमेश्वरि ! इन संख्याओं के साथ जो रुद्राक्ष-धारण करता है वह इस रूप में प्रणम्य और स्तुत्य हो जाता है तथा उसे महेश की समता प्राप्त होती है। ३१

इस प्रकार (रुद्राक्षों को धारणकर) आसन पर स्थित व्यक्ति को देखने से तथा शिव शब्द का उच्चारण करनेवाला पापों से मुक्त हो जाता है। ३२

यह विधि ग्यारह सौ रुद्राक्षों के धारण के लिए है। इसके अभाव में जो अन्य प्रकार शुभ हो सकता है, अब वह मेरे द्वारा कहा जा रहा है। ३३

शिखा में एक, मस्तक पर तीस, कंठ में पचास और भुजाओं में सोलह-सोलह रुद्राक्षों को धारण करना चाहिए। ३४

मणिबंध में बारह-बारह और स्कन्ध में पाँच और यज्ञोपवीत में एक सौ आठ रुद्राक्ष के दानों को प्रकल्पित करना चाहिए। ३५

इस प्रकार जो दृढव्रती होकर एक हजार रुद्राक्षों को धारण करता है, वह रुद्र के समान हो जाता है और सभी देवगण उसे नमस्कार करते हैं। ३६

शिखा में एक, मस्तक में चालीस, कंठ में बत्तीस और हृदय में एक सौ आठ, फिर दोनों कानों में छह-छह, भुजाओं में सोलह-सोलह, और हाथों में बारह या चौबीस रुद्राक्षों को जिसने प्रीति-सहित धारण किए हैं, वे सभी शैवजन (शिव-भक्त) तथा सभी के द्वारा शिव की तरह पूजनीय एवं वंदनीय हैं, जब-जब इन्हें कोई देखता है (तब-तब वह रुद्राक्षधारी वंदनीय हो जाता है)। ३७-३९

ईशान-मंत्र से मस्तक में, तत्पुरुष-मंत्र से कानों में, अघोर-मंत्र से कंठ तथा हृदय में रुद्राक्ष-धारण करना चाहिए। ४0

हाथों में अघोर और बीज-मंत्र से तथा पन्द्रह रुद्राक्ष उदर में वाम-देव-मंत्र से सुधी व्यक्तियों को धारण करना चाहिए। ४१

सद्योजातादि पंच-ब्रह्म-मंत्रों द्वारा अन्य अंगों में तीन, पाँच, या सात माला-धारण करना चाहिए अथवा मूल-मंत्र से सभी रुद्राक्षों को धारण करना चाहिए। ४२

मद्य, मांस, लहसुन, प्याज, सहिजन, श्लेष्मातक (लिसोड़) का सेवन (रुद्राक्ष-धारियों के लिए) वर्जित है। ४३

ब्राह्मणों के लिए श्वेत, क्षत्रियों के लिए लाल, वैश्यों के लिए पीत और शूद्रों के लिए काले रंग का रुद्राक्ष-धारण करना चाहिए, हे उमे ! ऐसी व्यवस्था है। ४४

सभी वर्ण के व्यक्ति रुद्राक्ष-धारण कर सकते हैं। इसके धारण से महत्पुण्य की प्राप्ति होती है और त्याग से नरक की प्राप्ति होती है। आँवले से छोटे, खंडित, छिद्र-रहित, कीड़ों से खाये हुए का धारण मंगल-कामी व्यक्तियों को नहीं करना चाहिए। चने के समान छोटे रुद्राक्ष की प्रशंसा की गई है। रुद्राक्ष मेरा लिंग-मंगल (शिवलिंग स्वरूप) है, जो सूक्ष्म और प्रशस्त—दोनों है, ऐसा शिव जी ने कहा। ४५-४६

सभी आश्रमों, वर्णों, स्त्री-पुरुषों और शूद्रों को भी रुद्राक्ष-धारण करना उचित है, ऐसा शिव का आदेश है। यतियों के लिए प्रणव-पूर्वक (ओंकार के साथ) रुद्राक्ष-धारण का उपदेश है। ४७

दिन में धारण करने से रात्रिकृत पाप का नाश होता है, रात्रि में रुद्राक्ष-धारण करने से दिन के तथा प्रातः, मध्याहुन एवं सायं के सभी पाप नष्ट होते हैं। ४८

त्रिपुण्ड्रधारी, जटाधारी एवं रुद्राक्षधारी प्राणी यमलोक को कभी नहीं जाते। ४९

जो साधु मस्तक में एक तथा ललाट पर त्रिपुण्ड्र-धारण करता है तथा पंचाक्षर-मंत्र का जप करता है, वह पूजनीय है। ५०

जिसके अंगों में रुद्राक्ष नहीं है, भाल पर त्रिपुण्ड्र नहीं है तथा मुख में पंचाक्षर मंत्र नहीं है, उसे यमलोक में खींच लाओ। ५१

भस्म और रुद्राक्ष धारण करनेवाले के कर्म-प्रभाव को पुनः पुनः जानकर, उन्हें पूजनीय समझते हुए वहाँ (यमलोक में) कभी नहीं ले जाना चाहिए। ५२

काल ने (यमराज ने) अपने सेवकों को ऐसा आदेश दिया, जिसे सुनकर वे सभी विस्मित तूष्णींभूत (चुप) हो गए। ५३

अतएव हे महादेवि ! रुद्राक्ष पापनाशक है। यदि उसको (रुद्राक्ष को) धारण करनेवाला हे पार्वति ! यदि पापी भी हो तो भी वह शुद्ध हो जाता है, हरस्वरूप हो जाता है और मेरा प्रिय हो जाता है। ५४

जो हाथ, बाहु तथा मस्तक पर रुद्राक्ष-धारण करता है, वह अवध्य हो जाता है और पृथ्वी पर सभी प्राणियों के मध्य रुद्ररूप में विचरण करता है। ५५

वह सुर और असुर सबों के द्वारा सदैव वंदनीय बन जाता है। उसके लिए वह (धारण-कर्त्ता) पापनाशक और शिवस्वरूप बन जाता है। ५६

जो रुद्राक्ष-धारण-कर्त्ता ध्यान और ज्ञान से अवमुक्त (रहित) है, वह भी सभी पापों से मुक्त होकर परम-गति को प्राप्त करता है। ५७

रुद्राक्ष (की माला) पर जप करने से कोटिगुणित पुण्य होता है। रुद्राक्ष के धारण से दशकोटि गुना पुण्य मनुष्यों को मिलता है। ५८

जब तक यह रुद्राक्ष जीवधारियों के शरीर पर स्थित होता है, तब तक हे देवि! उसकी अकाल-मृत्यु नहीं होती। ५९

त्रिपुण्ड्र से युक्त होकर, रुद्राक्ष से विलसित होकर (रुद्राक्ष न केवल आध्यात्मिकता और सिद्धियाँ देता है, वरन् वह दैहिक-सौन्दर्य का विवर्धन भी करता है। रुद्राक्ष एक अलंकरण भी है।) जो मृत्युंजय-मंत्र का जप करता है, उसके दर्शन से ही रुद्र के दर्शन का फल प्राप्त होता है। ६०

रुद्राक्ष पंचदेव (शिव, शिवा, गणेश, सूर्य तथा विष्णु) को प्रिय है। यह अन्य सभी देवों को भी प्रिय है। हे प्रिये ! रुद्राक्ष-माला पर सभी मन्त्रों का जप संभव है। ऐसा भक्तों के लिए निर्देश है। ६१

विष्णु आदि देवभक्तों को भी रुद्राक्ष-धारण करना चाहिए, इसमें कहीं संशय नहीं है। रुद्र-भक्तों के लिए तो रुद्राक्ष सदैव धारणीय है। ६२

रुद्राक्ष अनेक प्रकार के होते हैं। मैं उनके भेदों का वर्णन करता हूँ। हे पार्वति! भुक्ति, मुक्ति प्रदान करनेवाले उन (रुद्राक्षों) का चरित्र ६३

एकमुखी रुद्राक्ष भुक्ति, मुक्ति प्रदान करनेवाला शिव-स्वरूप है। उसके दर्शनमात्र से ब्रह्म-हत्या नष्ट होती है। ६४

जहाँ यह रुद्राक्ष पूजित होता है, वहाँ से लक्ष्मी कभी दूर नहीं जाती। सभी प्रकार के उपद्रव शांत हो जाते हैं, सभी कामनाओं की सिद्धि भी हो जाती है। ६५

द्विमुखी रुद्राक्ष देव-देवेश है। यह सभी कामनाओं और फलों को प्रदान करता है। यह रुद्राक्ष विशेष-रूप से गोवध से उत्पन्न पाप को दूर करता है। ६६

त्रिमुखी रुद्राक्ष सदैव सभी साधनों को देनेवाला है। उसके प्रभाव से सभी प्रकार की विद्याएँ प्रतिष्ठित होती हैं। ६७

चतुर्मुखी रुद्राक्ष स्वयं ब्रह्मा-रूप है। यह नर-हत्या के पाप को दूर करनेवाला है। इसके दर्शन और स्पर्श से तत्काल चतुर्वर्ग-फल की प्राप्ति होती है। ६८

पंचमुखी रुद्राक्ष स्वयं रुद्र है। इसे कालाग्नि कहते हैं। यह सभी प्रकार की मुक्ति और सभी प्रकार की कामना-सिद्धि देनेवाला है। ६९

पंचमुखी रुद्राक्ष से अगम्या में गमन से उत्पन्न पाप और अभक्ष्य के भक्षण से उत्पन्न पाप और ऐसे अनेक पापों का नाश होता है। ७०

षण्मुखी रुद्राक्ष कार्तिकेय-स्वरूप है। दाहिनी भुजा में इसके धारण से ब्रह्म-हत्यादि पापों से मुक्ति मिलती है, इसमें कोई संदेह नहीं। ७१

हे महेशानि ! सप्तमुखी रुद्राक्ष, अनंग-रूप है। इसके धारण से दरिद्र भी ईश्वर हो जाता है। ७२

अष्टमुखी रुद्राक्ष वसुमूर्ति भैरव-रूप है। इसके धारण से पूर्णायु होती है और शरीरांत में शिवत्व प्राप्त होता है। ७३

नवमुखी रुद्राक्ष भैरव और कपिलमुनि है। उसकी अधिष्ठात्री देवी दुर्गा महेश्वरी हैं, जिनके अंतर्गत नव देवियाँ हैं। ७४

उस रुद्राक्ष को भक्ति-तत्पर व्यक्ति बाएँ हाथ में धारण करे, वह सर्वेश्वर तथा मेरे तुल्य हो जाता है, इसमें संदेह नहीं। ७५

हे महेशानि ! दशमुखी रुद्राक्ष स्वयं जनार्दन देव हैं। हे देवेशि ! उसके धारण से धारणकर्त्ता सभी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। ७६

एकादशमुखी रुद्राक्ष धारण करने से धारणकर्त्ता रुद्ररूप और सर्वत्र विजयी होता है। ७७

जो व्यक्ति द्वादशमुखी रुद्राक्ष केश-देश में धारण करता है, वह द्वादश आदित्य के समान हो जाता है। ७८

त्रयोदशमुखी रुद्राक्ष विश्वेदेव-तुल्य है। इसके धारण से सभी कामनाओं की सिद्धि होती है और सौभाग्य एवं मंगल की प्राप्ति होती है। ७९

चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष परम शिव-स्वरूप है। इसको भक्तिपूर्वक सर पर धारण करने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। ८०

हे पर्वतराजपुत्रि ! मैंने मुख-भेद से इतने रुद्राक्षों के प्रकार-वर्णन किए हैं। अब प्रीतिपूर्वक क्रम से उनके मंत्रों को सुनो। ८१

ॐ ह्रीं नमः १ ।

ॐ नमः २ ।

ॐ क्लीं नमः ३ ।
ॐ ह्रीं नमः ४ ।
ॐ ह्रीं नमः ५ ।
ॐ ह्रीं हुं नमः ६ ।
ॐ हुं नमः ७ ।
ॐ हुं नमः ८ ।
ॐ ह्रीं हुं नमः ९ ।
ॐ ह्रीं नमः नमः १० ।
ॐ ह्रीं हुं नमः ११ ।
ॐ क्रों क्षौं रौं नमः १२ ।
ॐ ह्रीं नमः १३ ।
ॐ नमः १४ ।

भक्ति और श्रद्धा-सहित इन रुद्राक्षों को उक्त मंत्रों से अभिषिक्त कर धारण करने से सभी कामना और अर्थ की सिद्धि होती है। बिना आलस्य किए चौदहमुखी तक के रुद्राक्षों को चौदह-मंत्रों से अभिषिक्तकर धारण करना चाहिए। ८२

जो मनुष्य रुद्राक्ष को बिना मंत्राभिषेक के धारण करता है, वह चौदह इन्द्र की आयुपर्यंत अर्थात् एक कल्प तक घोर नरक में पड़ता है। ८३

रुद्राक्षमालिन् (रुद्राक्षमालाधारी) को देखकर भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी तथा अन्य द्रोह-कारक (द्रोही-जीव) तथा अभिचारादि प्रयोग दूर हो जाते हैं। ८४-८५

हे पार्वति ! रुद्राक्षमाला को धारण करनेवाले को देखकर शिव, विष्णु, देवी, गणपति और सूर्य (ये पंचदेवता) तथा अन्य सभी देवगण प्रसन्न होते हैं। ८६

हे महेश्वरि ! इस प्रकार रुद्राक्ष का माहात्म्य जानकर मंत्र और भक्तिपूर्वक धर्मवृद्धि के निमित्त सम्यक् विधि से रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। ८७

इस प्रकार पार्वती के समक्ष परमात्मा शिव ने भस्म और रुद्राक्ष के माहात्म्य का वर्णन किया, जो भुक्ति और मुक्ति के फलों को देनेवाला है। ८८

भस्म और रुद्राक्ष इन दोनों को धारण करनेवाले शिव के अतिप्रिय हो जाते हैं, ऐसा समझना चाहिए। इसके धारणमात्र के प्रभाव से भुक्ति और मुक्ति (भोग और मोक्ष) दोनों की प्राप्ति होती है, यह भी संशयरहित है। ८९

भस्म और रुद्राक्ष-धारण करनेवाले शिव-भक्त कहे जाते हैं और जो पंचाक्षर-मंत्र की उपासना (इस रुद्राक्ष पर) शिव-सामीप्य में करते हैं, वे परिपूर्ण बन जाते हैं। ९०

भस्म, त्रिपुण्ड्र और रुद्राक्ष की माला के बिना पूजन करने से महादेव अभीष्ट फल की प्राप्ति नहीं कराते। ९१

हे मुनिवर ! अब तुम्हारे प्रश्न का समाधान कर दिया गया। भस्म और रुद्राक्ष का माहात्म्य सभी कामनाओं और सिद्धियों को देनेवाला है। ९२

इस अत्यन्त शुभ माहात्म्य को जो नित्य सुनते हैं तथा रुद्राक्ष और भस्म में प्रीति और भक्ति रखते हैं, वे सभी कामनाओं को प्राप्त कर लेते हैं। ९३

इस लोक में वे सभी सुखों को भोगकर पुत्र-पौत्रादि से संयुक्त होकर शिव के सायुज्य का मोक्ष प्राप्त करते हैं और शिव के अत्यन्त प्रिय हो जाते हैं। ९४

हे मुनियो ! यह 'विद्येश्वर-संहिता' तुम्हारे प्रति मेरे द्वारा कही गयी है। शिव की आज्ञा से नित्यशः संपूर्ण सिद्धि और मुक्ति को देनेवाली है। ९५

पद्मपुराणम्

सृष्टिखंड, सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

रुद्राक्ष-माहात्म्य-वर्णनम्

सर्वेषामेव भूताना रुद्राक्षेण युतो वरः ।
दर्शनाद्यस्य लोकाना पाप-राशिः प्रलीयते ॥३॥
स्पर्शनाद्दिवमश्नाति धारणान्मोक्षता व्रजेत् ।
शिरस्युरसि बाहौ च रुद्राक्ष धारयेत्तु यः ॥४॥
स चेशानसमो लोके मखे सर्वत्र गोचरः ।
यत्र तिष्ठत्यसौ विप्रः स देशः पुण्यवान्भवेत् ॥५॥
त दृष्ट्वाऽप्यथवा स्पृष्ट्वा नरः पूयेत् कल्मषात् ।
यज्जप्त तर्पण दान स्नानमर्चा-प्रदक्षिणम् ॥६॥
यत्किञ्चित्कुरुते पुण्य निखिल तदनन्तकम् ।
तीर्थाना च महत्तीर्थं रुद्राक्षस्य फल द्विजाः ॥७॥
अस्यैव धारणाद्देहे पापात्पूतोऽपवर्गभाक् ।
गृहीत्वा चाक्षमाला च ब्रह्मग्रन्थियुता शिवाम् ॥८॥
यज्जप्त च कृत दान स्तोत्रमन्त्र सुरार्चनम् ।
सर्वं चाक्षयतामेति पाप च क्षयता व्रजेत् ॥९॥
मालायाः लक्षण ब्रूमः श्रूयता द्विजसत्तमाः ।
तस्यास्तु लक्षण ज्ञात्वा मोक्षमार्गं प्रलप्स्यथ ॥१०॥
निर्योनिः कीटविद्धं च भग्नलिङ्ग यथाक्रमम् ।
अन्योन्यबीजलग्न च मालाया परिवर्जयेत् ॥११॥
स्वय च ग्रथिता या च श्लथाऽन्योन्यप्रसज्जिता ।
शूद्रादि-ग्रथिताऽशुद्धा दूरात्ता परिवर्जयेत् ॥१२॥
सर्पाकारा च नक्षत्रा मेरुणाऽत्यन्तसंयुता ।
संसता (कृ) ग्रन्थिशुद्धा या प्रशस्ता ता जपेद्बुधः ॥१३॥
एभिः शुद्धा च माला च धृत्वाऽङ्गुष्ठेन कर्षयेत् ।
मध्यमालग्नकं बीज जप्तव्य च यथाक्रमम् ॥१४॥
हस्तसंभ्रमणेनैव मेर्वामर्शं पुनः पुनः ।
संख्यात यज्जपेन्मन्त्रमसंख्यात च निष्फलम् ॥१५॥

सर्वेषामेव देवानां जपेन्मन्त्रं स्वमालया।
प्रयतः सकले तीर्थे कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥१६॥
शुद्धायामेव भूम्यां ते मेध्यैकवृक्षमूलकः ।
गोष्ठे चतुष्पथागारे विष्णुमन्त्रं शिवस्य च ॥१७॥
गाणपत्यस्य सूरस्य लिङ्गेऽनन्तफलं भवेत् ।
शून्यागारे शिवस्याग्रे श्मशाने च चतुष्पथे ॥१८॥
देवीमन्त्रं जपेद्यस्तु सद्यः सिध्यति साधकः ।
यावन्तो वैदिका मन्त्राः पौराणाश्चाऽऽगमोद्भवाः ॥१९॥
सर्वं रुद्राक्षमालायां दयितं मोक्षदायकम् ।
रुद्राक्षप्रवजं शुद्धं जलं शिरसि धारयेत् ॥२०॥
सर्वस्मात्कल्मषात्पूतः पुण्यं भवति चाक्षयम् ।
रुद्राक्षस्य च प्रत्येकं बीजं प्रत्येकनिर्जरम् ॥
धारयेद्यस्तनौ मर्त्यः सुराणां सत्तमो भवेत् ॥२१॥

द्विजा ऊचुः,—

रुद्राक्षस्तु कुतो जातः कुतो वा मेध्यतां गतः ।
किमर्थं स्थावरो भूमौ केनैव च प्रचारितः ॥२२॥

व्यास उवाच,—

पुरा कृतयुगे विप्रास्त्रिपुरो नाम दानवः ।
सुराणां च वधं कृत्वा अन्तरिक्षपुरे हि सः ॥२३॥
प्रणाशे सर्वलोकानां स्थितो ब्रह्मवरेव च ।
शुश्राव शङ्करो भीमं देवैरीशो निवेदितम् ॥२४॥
ततोऽजगवमासज्य बाणमन्तकसंनिभम् ।
धृत्वा तं च चघानाथ दृष्टं दिव्येन चक्षुषा ॥२५॥
स पपात महीपृष्ठे महोल्केव च्युतो दिवः ।
घटनव्याकुलाद्रुद्रात्पतिताः स्वेदबिन्दवः ॥२६॥
तत्राऽऽशु बिन्दुतो जातो महारुद्राक्षकःक्षितौ ।
अस्यैव च फलं जीवा न जानन्त्यतिगुह्यतः ॥२७॥
ततः कैलःसशिखरे देवदेवं महेश्वरम् ।
प्रणम्य शिरसा भूमौ स्कन्दो वचनमब्रवीत् ॥२८॥

स्कन्द उवाच,—

रुद्राक्षस्य फलं तात ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः ।
जप्येऽथ धारणे किंवा दर्शने स्पर्शनेऽपि वा ॥२९॥

ईश्वर उवाच,—

लक्षं तु दर्शनात्पुण्यं कोटिर्वै स्पर्शनेन च ।
दशकोटिफलं पुण्यं धारणाल्लभते नरः ॥३०॥

लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च ।
तज्जाप्येन (च) लभते पुण्यं नात्र कार्या विचारणा ॥३१॥
ब्रह्मघ्नो वा मित्रघ्नो सुरापो वा सर्वपातकैः ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्राक्षधारणेन वा ॥३२॥
कण्ठे रुद्राक्षमालायां श्वापदो म्रियते यदि ।
सोऽपि रुद्रत्वमाप्नोति किं पुनर्मानुषादयः ॥३३॥
ध्यानधारणहीनोऽपि रुद्राक्षं यदि धारयेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ॥३४॥

कार्तिकेय उवाच,—

एकवक्त्रं द्वित्रिचतुष्पञ्चषड्वक्त्रमेव च ।
सप्ताष्टनववक्त्रं च दशैकादशवक्त्रकम् ॥३५॥
रुद्राक्षं द्वादशास्यं च त्रयोदशमुखं तथा ।
चतुर्दशास्यसंयुक्तं स्वयमुक्तं च शङ्करम् ॥३६॥
तेषां च तन्मुखानां च देवताः काश्च तद्वद ।
गुणा वा कीदृशास्तेषां दोषो वा जगदीश्वर ॥३७॥
यदि मेऽनुग्रहो वाऽस्ति कथयस्व यथार्थतः ।

ईश्वर उवाच,—

एकवक्त्रः शिवः साक्षाद्ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
तस्मात्तु धारयेद्देहे सर्वपापक्षयाय च ॥३८॥
शिवलोकं स गच्छेच्च शिवेन सह मोदते ।
महता पुण्ययोगेन हरानुग्रहकारणात् ॥३९॥
एकवक्त्रं लभेन्मर्त्यो मोक्षमार्गं षडानन ।
देवदेवो द्विवक्त्रं च यस्तु धारयते नरः ॥४०॥
सर्वपापं क्षयं याति यद्गुह्यं गोवधादिकम् ।
स्वर्गं चाक्षयमाप्नोति द्विवक्त्र-धारणात्ततः ॥४१॥
द्विवक्त्रमनलः साक्षाद्यस्य देहे प्रतिष्ठति ।
तस्य जन्मार्जितं पापं दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥४२॥
स्त्रीहत्याब्रह्महत्याभ्यां बहूनां चैव हत्यया ।
यत्पापं लभते मर्त्यः सर्वं नश्यति तत्क्षणात् ॥४३॥
यत्फलं वह्नि-पूजायामग्निकार्ये घृताहुतौ ।
तत्फलं लभते वीरः स्वर्गं चान्तमश्नुते ॥४४॥
त्रिवक्त्रं धारयेद्यस्तु स च ब्रह्मसमो भुवि ।
निचितं दुष्कृतं सर्वं देहाज्जन्मनि जन्मनि ॥४५॥
न चोदरे भवेद्रोगो न चैवापद्गुतां व्रजेत् ।
पराजयं न लभते नाग्निना दह्यते गृहम् ॥४६॥

एतान्यन्यानिसर्वाणि वज्रादेश्च निवारणम् ।
नाशुभं विद्यते किञ्चित्त्रिवक्त्रस्य च धारणात् ॥४७॥
चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा यस्य देहे प्रतिष्ठति ।
स भवेत्सर्वशास्त्रज्ञो द्विजो वेदविदां वरः ॥४८॥
सर्वधर्मार्थतत्त्वज्ञः स्मार्तः पौराणिको भवेत् ।
यत्पापं नरहत्यायां बहुसत्त्वेषु वेश्मसु ॥४९॥
तत्सर्वं दहते शीघ्रं चतुर्वक्त्रस्य धारणात् ।
पञ्चवक्त्रः स्वयं रुद्रः कालाग्निर्नाम नामतः ॥५०॥
अगम्यागमनं चै (नःच्चै) य अभक्ष्यस्य च भक्षणम् (णात्) ।
मुच्यते नात्र सन्देहः पञ्चवक्त्रस्य धारणात् ॥५१॥
महेशस्तुष्यते नित्यं भूतानामधिपो भवेत् ।
सद्योजातस्तथेशानस्तत्पुरुषोऽघोर एव च ॥५२॥
वामदेव इमे देवा वक्त्रैः पञ्चभिराश्रिताः ।
अतः सर्वत्र भूयिष्ठः पञ्चवक्त्रो धरातले ॥५३॥
रुद्रस्याऽऽत्मजरूपोऽयं तस्मात्तं धारयेद्बुधः ।
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥५४॥
तावत्कालं शिवस्याग्रे पूजनीयः सुरासुरैः ।
सार्वभौमो भवेद्भूमौ सर्वतेजाः शिवालये ॥५५॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पञ्चवक्त्रं तु धारयेत् ।
षड्वक्त्रं कार्तिकेयं तु धारयन्दक्षिणे भुजे ॥५६॥
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ।
स्कन्दस्य सदृशः शूरः कल्पान्ते समुपस्थिते ॥५७॥
नात्र पराजयं चैति गुणानामाकरो भुवि ।
कुमारत्वमवाप्नोति यथा गौरीशनन्दनः ॥५८॥
ब्राह्मणो भूपपूज्यश्च क्षत्रियो लभते जयम् ।
वैश्याः शूद्रादयो वर्णाः सदैश्वर्यप्रपूरिताः ॥५९॥
तस्यैव वरदा गौरी मातेव सुलभा भवेत् ।
ततो भुजबलादेव विश्वजेता भवेन्नरः ॥६०॥
वाग्मी धीरः सभायां च नृपवेश्मनि संसदि ।
न च कातरतामेति नैव भङ्गो भवेद्ध्रुवम् ॥६१॥
एतान्यन्यानि सर्वाणि षड्वक्त्रस्यैव धारणात् ;
सप्तवक्त्रो महासेनस्त्वनन्तो नाम नागराट् ॥६२॥
अस्य प्रत्येक वक्त्रे तु प्रतिनागा व्यवस्थिताः ।
अनन्तः कर्कटश्चैव पुण्डरीकोऽथ तक्षकः ॥६३॥
विषोल्बणश्च कारोषः शङ्खचूडश्च सप्तमः ।
एते नागा महावीर्याः सप्तवक्त्रे व्यवस्थिताः ॥६४॥

शिरस्युरसि मालां च गृहीत्वा यो व्रजेन्नरः ।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति नान्यथा ॥९३॥
सर्वेषामपि वक्त्राणां धारणे यो समो (मत्समो) भवेत् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रुद्राक्षं पुत्र धारय ॥९४॥
य इदं शृणुयान्मन्त्रपुण्याख्यानमिदं स्मृतम् ।
सर्वेषामेव वक्त्राणां धारणे यत्फलं लभेत् ॥९५॥
तत्फलं समनुप्राप्य स्वर्गापवर्गतां व्रजेत् ।
धारयित्वा तु रुद्राक्षं म्रियते यः क्षितौ नरः ॥९६॥
स याति मत्पुरं रम्यं सर्वदेवैः प्रपूजितः ।
मरुदेशे पुरा वत्स वाणिज्याय किल स्थले ॥९७॥
गच्छन्वणिक्सुतस्तात तरौ प्रेताप्रपीडितः ।
नरीनर्ति ततः प्रेता द्विजेन परमैक्षि च ॥९८॥

द्विज उवाच,—

का त्वं नृत्यसि दीनाऽसि संवृता जीर्णवाससा ॥९९॥

ईश्वर उवाच,—

अथ सा च द्विजं प्राह देवदूतान्मया श्रुतम् ।
अस्य चारुनरस्यैव वज्रपातेन साम्प्रतम् ॥१00॥
निश्चितं निधनं विप्र मद्भर्ता तु भविष्यति ।
एतस्मिन्नन्तरे नाकाद्वज्रं तस्य शिरोपरि ॥१0१॥
अपतत्स पपातोर्व्यां रुद्राक्षस्यार्धखण्डके ।
ततो मम पुरात्पुत्र विमानं चाऽपतदद्भुतम् ॥१0२॥
समारुह्य ततः श्रीमांस्तत्र तिष्ठति संचिरम् ।
समांसकं (रुद्राक्षकं) समासाद्य ईश्वरः कौधनी भवेत् ॥१0३॥
एवं रुद्राक्षखण्डे च मृतस्य सुगतिः सुत ।
ज्ञानेन धारिणः पुंसः फलं वक्तुं न शक्नुमः ॥१0४॥
स शैवो वैष्णवः शाक्तो गाणपत्योऽथ सौरकः ।
यो दधाति मृतो मालामेकं रुद्राक्षकं शिरः ॥१0५॥
यः पठेत्पाठयेद्वाऽपि श्रावयेच्छृणुतेऽपि वा ।
सर्व-पापात्प्रमुक्तात्मा सुखं मोक्षं लभेत्क्रमात् ॥१0६॥

इति श्रीमहापुराणे पाद्मे सृष्टिखण्डे रुद्राक्षमाहात्म्यवर्णननाम
सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

भाषांतर (पद्मपुराण)

सृष्टिखंड, सत्तावनवाँ अध्याय

रुद्राक्ष-माहात्म्य-वर्णन

सभी प्राणियों में रुद्राक्ष से युक्त प्राणी वरेण्य या श्रेष्ठ है, जिसके दर्शनमात्र से लोकों

की संपूर्ण पाप-राशि नष्ट हो जाती है। ३

जो रुद्राक्षस्पर्श के साथ दिन व्यतीत करता है (भोजनादि करते हुए), रुद्राक्ष-धारणकर मोक्ष प्राप्त कर भ्रमण करता है (जीवन्मुक्त भाव से), जो मस्तक, हृदय और बाहुओं में रुद्राक्ष-धारण करता है, वह ईशान-सदृश (शिव-सदृश) लोक में और सभी यज्ञ-स्थलों पर सर्वत्र विद्यमान-दृश्यमान होता है। ऐसा विप्र जिस देश में रहता है, वह देश पुण्यवान् हो जाता है। ४-५

ऐसे रुद्राक्ष-युक्त व्यक्ति को देखने अथवा स्पर्श करने से मनुष्य अपने समस्त दोषों से मुक्त हो जाता है, जिस रुद्राक्ष को लक्ष्यभूतकर जो भी जप, तर्पण, दान, स्नान, अर्चा, प्रदक्षिणा इत्यादि जो पुण्यकार्य किए जाते हैं, वे सभी पुण्यकार्य अक्षय या अनंतक बन जाते हैं। रुद्राक्ष का फल तीर्थों में महत् तीर्थ के समान है। ६-७

इसके (रुद्राक्ष के) शरीर में धारण से व्यक्ति पाप से पवित्र हो जाता है और स्वर्ग का अधिकारी (अपवर्गभाक्) बन जाता है। अक्षमाला को ग्रहणकर और ब्रह्म-ग्रन्थि से युक्त शिवा को (अक्षमाला को) धारणकर जो भी जप किया जाता है, दान-स्तोत्र-मंत्र-सुरार्चनादि किया जाता है, वह सब अक्षयता का आनयन करता हुआ पाप को नष्ट करता है। ८-९

हे द्विजश्रेष्ठ ! अब माला का लक्षण बताता हूँ, जिसे आप सुनें। जिसके लक्षण को जानकर मोक्ष-मार्ग प्राप्त कर सकते हैं। १०

निर्योनि (रेखा-रहित), कीटविद्ध (कीड़े के द्वारा खाया हुआ), भग्नलिंग (जिसके काँटे टूट गए हों) तथा जो बीजाक्ष दूसरे से चिपक गए हैं, उन्हें माला में स्थान नहीं देना चाहिए (अर्थात् गूँथना नहीं चाहिए)। ११

माला को स्वयं गूँथना चाहिए और बीजाक्षों को एक दूसरे पर प्रसज्जित करना चाहिए। शूद्रादि के द्वारा गूँथी गई माला अशुद्ध होती है। उसे दूर से ही देखकर छोड़ देना चाहिए। १२

सत्ताईस बीजाक्षों (नक्षत्रों) की सर्पाकार माला के अंत में मेरु का संयोग होना चाहिए। दो दानों के बीच में गाँठें होनी चाहिए और संपूर्ण माला को प्रशस्त (एकाकार, सुदर्शन और संतुलित) होना चाहिए। बुधजनों को ऐसी माला पर जप करना चाहिए। १३

ऐसी शुद्धमाला को लेकर अँगूठे से कर्षण करता हुआ (अपनी ओर खींचता हुआ) मध्यमा अंगुलि पर बीजाक्षों को संयुक्तकर यथाक्रम से जप करना चाहिए। १४

हस्त-संचालन से (जप करते हुए) मेरु का स्पर्शकर पुनः (लौट आना चाहिए) संख्यापूर्वक मंत्र का जप करना चाहिए, असंख्यात (अगणित) जप निष्फल होता है।१५

अपनी माला से सभी देवताओं का जप करना चाहिए (कर सकते हैं) किसी भी तीर्थ में यदि प्रयत (धर्मनिष्ठ जापक) यदि इस माला पर जप करता है तो उसे कोटि-कोटि गुणित फल प्राप्त होता है। १६

शुद्धभूमि पर, यज्ञ के लिए निश्चित वृक्ष के मूल में (अथवा खैर वृक्ष के मूल में), गोशाला में, चतुष्पथ पर अथवा घर के भीतर, (इस रुद्राक्ष माला पर) विष्णु-मंत्र, शिव-मंत्र, गणपति-मंत्र, सूर्य-मंत्र का जप करने से अनंत फल की प्राप्ति होती है।

शून्यागार में, शिव-समक्ष (शिव-मंदिर में), श्मशान में और चतुष्पथ पर जो देवी-मंत्र का जप करता है, वह साधक सद्यःसिद्धि को प्राप्त कर लेता है। जितने भी वैदिक, पौराणिक और तांत्रिक मंत्र हैं, वे सभी रुद्राक्ष-माला पर जपनीय हैं तथा इन जपों से दयित (अभीष्ट) फल की प्राप्ति होती है और साथ ही ऐसा जप मोक्षदायक भी है। रुद्राक्ष के स्पर्श से शुद्ध जल को सर पर धारण करना चाहिए। १७-२०

रुद्राक्ष से सभी प्रकार के कल्मष (दोष) से व्यक्ति पवित्र हो जाता है और उसे अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है। रुद्राक्ष के प्रत्येक बीज पर प्रत्येक देवता का निवास है। जो व्यक्ति इस रुद्राक्ष को अपने शरीर पर धारण करता है, वह मर्त्यलोकवासी होकर भी देवलोकवासी देवों में भी उत्तम हो जाता है। २१

द्विजों ने कहा,—

रुद्राक्ष कहाँ उत्पन्न होता है, अथवा किस यज्ञीयवृक्ष पर चला जाता है। भूमि पर स्थावर के रूप में किसलिए स्थित होता है और यह रुद्राक्ष किसके द्वारा प्रचारित किया गया है? २२

व्यास ने कहा,—

हे विप्रगण ! प्राचीन काल में कृतयुग के समय त्रिपुर नाम का दानव था। उसने देवताओं की हत्या कर दी और अंतरिक्षपुर में चला गया। २३

सभी लोकों के नष्ट होने पर वह (दानव) ब्रह्म की तरह बैठ गया, तब भगवान् शंकर ने देवों के द्वारा दारुण निवेदन को सुना । २४

फिर शंकर ने अपने दिव्य (अग्नियुक्त) चक्षु से देखा और फिर उन्होंने अजगवम् (पिनाक, शिव का धनुष) पर बाण चढ़ाकर काल के सदृश उस दानव की हत्या कर दी। २५

वह दानव पृथ्वी के पृष्ठ पर भीषण उल्का की तरह गिर पड़ा। फिर श्रम-शिथिल रुद्र (के शरीर) से पसीने की बूंदें टपक पड़ीं। २६

वहीं तत्क्षण उन बिन्दुओं से महारुद्राक्षक वृक्ष पृथ्वी पर उत्पन्न हो गया। इसके फल को अतिगुह्यता के साथ जीवगण नहीं जानते। २७

फिर कैलास के शिखर पर देवाधिदेव महेश्वर को पृथ्वी पर माथा टेककर स्कन्द ने प्रणाम किया और कहा। २८

स्कंद ने कहा,—

हे तात (शिव) ! मैं रुद्राक्ष के फल को तत्त्वपूर्वक जानने की इच्छा रखता हूँ। इसके जप, धारण, दर्शन और स्पर्श का भी फल जानना चाहता हूँ। २९

ईश्वर (शिव) ने कहा,—

इसके (रुद्राक्ष के) दर्शन से लक्ष पुण्य (लक्ष-प्रमाण पुण्य) मिलता है। स्पर्श से कोटि प्रमाण पुण्य मिलता है। जो नर इसे धारण करता है, उसे दश-कोटि-प्रमाण पुण्यफल की प्राप्ति होती है। ३०

लक्षकोटि सहस्र तथा लक्षकोटिशत-प्रमाण पुण्य की प्राप्ति रुद्राक्ष पर जप से होती है, इस पर कुछ भी विचार करने की (विकल्प करने की) आवश्यकता नहीं है। ३१

समाज-अस्वीकृत और सदोष-कर्म में स्थित रहनेवाला अथवा सभी पापों से युक्त रहनेवाला भी रुद्राक्ष-धारण के कारण सभी पापों से मुक्त हो जाता है। ३२

कंठ में रुद्राक्ष-धारण कर यदि कुत्ता भी मरे तो वह रुद्रत्व को प्राप्त कर लेता है। फिर मनुष्य आदि की तो बात ही क्या ! ३३

यदि ध्यान-धारणादि-रहित भी रुद्राक्ष का धारण किया जाए तो वह (रुद्राक्षधारी व्यक्ति) सभी पापों से मुक्त होकर परम गति को प्राप्त करता है। ३४

कार्तिकेय ने कहा,—

एकमुखी, द्विमुखी, त्रिमुखी, चतुर्मुखी, पंचमुखी, षण्मुखी, सप्तमुखी, अष्टमुखी, नवमुखी, दशमुखी, एकादशमुखी, द्वादशमुखी, त्रयोदशमुखी, चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष स्वयं शंकर के द्वारा कहा हुआ तथा शंकर-स्वरूप है। ३५-३६

उनमें तत् तत् मुखों के रुद्राक्ष के कौन-कौन देवता हैं, उसे बोलो। उनके गुण और दोष कैसे हैं, उन्हें भी हे जगदीश्वर बताओ। ३७

यदि मेरे ऊपर अनुग्रह है तो मुझे यथार्थतः (सत्य-सत्य) यह (रहस्य) बताओ।

ईश्वर ने कहा,—

एकमुखी रुद्राक्ष साक्षात् शिव है। यह ब्रह्म-हत्या के पाप को दूर करता है। इसलिए इसे शरीर पर धारण करना चाहिए, जिससे सभी पापों का नाश हो जाता है। ३८

फिर वह (एकमुखी रुद्राक्ष धारण-कत्ता) शिवलोक में चला जाता है और शिव के साथ आनंदपूर्वक रहने लगता है। शंकर के अनुग्रह के कारण महान् पुण्य के योग से यह स्थिति होती है। ३९

हे षडानन ! एकमुखी रुद्राक्ष धारण करनेवाला मरणशील व्यक्ति मोक्ष-मार्ग को प्राप्त कर लेता है। हे देवदेव, जो द्विमुखी रुद्राक्ष को धारण करता है, उसके सभी पापों का क्षय हो जाता है, उसके गोवधादि के पाप भी नष्ट हो जाते हैं। द्विमुखी रुद्राक्ष के धारण से अक्षय-रूप से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। ४०-४१

द्विमुखी रुद्राक्ष साक्षात् अग्नि-स्वरूप है। जिसके शरीर पर यह प्रतिष्ठित होता है, उसके जन्मार्जित पाप वैसे ही नष्ट हो जाते हैं, जैसे आग इंधन को जला डालती है। ४२

स्त्री-हत्या, ब्रह्म-हत्या और ऐसी अनेक हत्याओं का पाप मनुष्य को लगा रहता है, जो इस रुद्राक्ष के धारण से तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं। ४३

अग्निपूजा से जो फल मिलता है, और घृत की आहुति से सम्पन्न अग्निकार्य से जो फल मिलता है, उसे वीर पुरुष प्राप्त कर लेता है और अंत में स्वर्ग का सुख भोगता है। ४४

जो पृथ्वी पर त्रिमुखी रुद्राक्ष-धारण करता है, वह ब्रह्म के सदृश हो जाता है।

जन्मांतरों में देह से किए गए प्रच्छन्न सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। ४५

वह (त्रिमुखी रुद्राक्षधारी) उदर में नहीं आता (जन्म नहीं लेता), उसे कोई रोग भी नहीं होता और वह अकुशल जीवन भी व्यतीत नहीं करता। उसकी कभी पराजय नहीं होती। आग से उसका घर भी नहीं जलता। ४६

ये सभी और इन सबों से अतिरिक्त भी सभी प्रकार के वज्र या विपत्ति का निवारण इससे (त्रिमुखी रुद्राक्ष के धारण से) होता है। त्रिमुखी रुद्राक्ष-धारण करनेवालों का कुछ भी अशुभ नहीं होता। ४७

चतुर्मुखी रुद्राक्ष स्वयं ब्रह्मा है। यह जिसकी देह में प्रतिष्ठित होता है, वह द्विज सभी शास्त्रों का ज्ञाता, वेदों का जानकार और वरेण्य बन जाता है। वह द्विजत्व को भी प्राप्त कर लेता है। ४८

वह सभी धर्मों के अर्थतत्त्व का ज्ञाता, स्मृति और पुराण का जानकार हो जाता है। मनुष्य और मनुष्येतर प्राणियों की गृहगत हत्या से उत्पन्न पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, जो चतुर्मुखी रुद्राक्ष को धारण करते हैं। पंचमुखी रुद्राक्ष स्वयं रुद्र हैं। इसे कालाग्नि के नाम से भी जानते हैं। ४९-५०

पंचमुखी रुद्राक्ष के धारण करने से अगम्य-गमन और अभक्ष्य-भक्षण का पाप नष्ट होता है। इसमें कोई संदेह नहीं। ५१

इससे महेश (शंकर) नित्य संतुष्ट होते हैं। यह व्यक्ति प्राणियों का अधिपात बन जाता है। सद्योजात, ईशान, तत्पुरुष, अघोर और वामदेव—ये सभी देव (ये सभी शिव के विभिन्न देवरूप हैं) पंचमुखी रुद्राक्ष में निवास करते हैं। अतः पंचमुखी रुद्राक्ष धरातल पर सर्वत्र भूयिष्ठ (प्रचुर) हैं। ५२-५३

यह रुद्र का आत्मज-स्वरूप है। अतः विद्वानों को इसे धारण करना चाहिए। वह शिव के समक्ष पर और असुरों के द्वारा कोटि-सहस्र-कल्प तथा कोटिशत-कल्प तक पूजनीय बना रहता है। पृथ्वी पर वह सार्वभौम और शिवालय में वह सर्वतेजःसपन्न हो जाता है। ५४-५५

इसलिए सभी प्रयत्नों के साथ पंचमुखी रुद्राक्ष को धारण करना चाहिए। षण्मुखी रुद्राक्ष तो कार्तिकेय ही है। इसे दाहिनी भुजा में धारण करना चाहिए। ५६

इसके धारण से ब्रह्म-हत्यादि पाप से मुक्ति मिलती है। इसमें कोई संदेह नहीं। कल्पान्त तक भी वह स्कंद के सदृश शूरवीर बना रहता है। ५७

वह पराजय को प्राप्त नहीं करता और पृथ्वी पर गुणों का आकर (खजाना) बना रहता है। वह कुमारत्व (शिवपुत्र-पद) को प्राप्त करता है। ५८

(षण्मुखी रुद्राक्ष-धारण करनेवाला) ब्राह्मण राजाओं के द्वारा पूज्य, क्षत्रिय विजय प्राप्त करता है तथा वैश्य एवं शूद्र वर्ण के व्यक्ति सदैव धन-धान्यादि ऐश्वर्य से भरे-पूरे रहते हैं। ५९

उनके लिए गौरी (पार्वती) वरदायिनी और माता की भाँति सदैव सुलभ होती हैं। तत्परिणामतः ऐसा नर अपने भुजबल से ही विश्वजयी बन जाता है। ६०

वह वाग्मी (वाक्पटु), धीर होता है। सभा में, नृपों के घर में और गोष्ठियों में वह वाक्पटु और धीर बना रहता है। वह कभी कातरता को प्राप्त नहीं होता। निश्चय ही वह कभी भंग (टूटा हुआ) नहीं होता। ६१

ये सभी गुण और ऐसे अन्य सभी गुण षण्मुखी रुद्राक्ष के धारण करने से प्राप्त होते हैं। सप्तमुखी रुद्राक्ष महासेन, अनंत और नागराट् (कार्तिकेय, वासुकि और नागराज) है। ६२

इसके प्रत्येक मुख में एक-एक नाग व्यवस्थित है। अनंत, कर्कट, पुण्डरीक, तक्षक, विषोल्बण, कारोष और शंखचूड, ये सातों महाबलशाली नाग सप्तमुखी रुद्राक्ष के सातों मुखों में व्यवस्थित हैं। ६३-६४

इसके धारण-मात्र से शरीर के अंतर्गत विष का असर नहीं होता। उसके प्रति शंकर परम प्रसन्न रहते हैं। जैसी प्रसन्नता वे नागेश्वर के प्रति दिखाते हैं। ६५

इसके (सप्तमुखी रुद्राक्ष के) प्रसन्न होने पर दिनानुदिन रुद्राक्षधारी सभी पापों से मुक्त होता चलता है। ब्रह्म-हत्या, सुरापान, चोरी तथा गुरु-पत्नी-गमन इत्यादि से जो पाप होते हैं, उन सभी पापों से वह मनुष्य तत्क्षण मुक्त हो जाता है। तीनों लोकों में देवों कें भोग्य के सदृश भोग्य को वह निश्चय ही प्राप्त करता है। ६६-६७

अष्टमुखी रुद्राक्ष महासेन (कीर्तिकेय) और गणेश के सदृश है। इसके धारण करने से जो पुण्य होता है, उसे सुनो। ६८

वह किसी जन्म में मूर्ख नहीं होता, कभी व्याकुलता को प्राप्त नहीं होता। वह बुद्धिभ्रष्ट भी नहीं होता। उसके सभी कार्यों में सदैव अविघ्नता रहती है। ६९

लेखन-कार्य में उसे निपुणता प्राप्त होती है और महत्कार्यों में कौशल प्राप्त होता है। उसके सभी आरंभ किए हुए कार्यों में क्षेम (मंगल) की स्थिति सदैव बनी रहती है। ७०

जो अर्धसत्य का प्रयोग करता है, (वणिक् वृत्ति में) डंडी मारता है अथवा अन्य सभी प्रकार के झूठ और बेईमानी का आश्रय लेता है, जो गुरुपत्नी का शिश्नोदरकर-स्पर्श करता है। (शिश्न गमन के लिए, उदर-आलिंगन के लिए, कर अन्य सभी प्रकार के स्पर्श के लिए) अथवा इस प्रकार के अन्य सभी पापों को यह रुद्राक्ष-धारण (अष्टमुखी) नष्ट करता है। फिर वह व्यक्ति तीनों देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) के आशीर्वादस्वरूप प्राप्त अक्षय भोग को भोगकर अंततोगत्वा मुक्ति प्राप्तकर परागति में लीन हो जाता है। ७१-७२

ये सभी गुण अष्टमुखी रुद्राक्ष के धारण से प्राप्त होते हैं। नौमुखी रुद्राक्ष भैरव कहा गया है। इसे बाहु में धारण करना चाहिए । ७३

कपिल रंग के इस मुक्ति-प्रदायक रुद्राक्ष को धारण कर कोई भी व्यक्ति मेरे सदृश बलशाली हो जाता है। यदि कोई लक्ष-कोटि-सहस्र-संख्या-पर्यंत ब्रह्म-हत्या करता है, उसके सभी पाप शीघ्र ही नौमुखी रुद्राक्ष के धारण से जल जाते हैं। देवलोक में वह सदैव देवों द्वारा और रुद्र द्वारा पूजित होता है। ७४-७५

भगवान् शंकर के घर में, स्वयं शंकर की तरह पवित्र, घर में गणेश की तरह यह रुद्राक्ष है, इसमें कोई संशय नहीं (अथवा शंकर और गणेश दोनों के सदृश) दशमुखी रुद्राक्ष के धारण से साँप का भय नष्ट हो जाता है। ७६

एकादशमुखी रुद्राक्ष के धारण से हे वत्स ! ग्यारह रुद्रों को समझना चाहिए। इसे शिखा के मध्य में धारण करना चाहिए। इसके पुण्य-फल को तुम सुनो। ७७

एक सहस्र अश्वमेध-यज्ञ और कोटिशत-संख्यक यज्ञ करने से शत-सहस्र-संख्या-पर्यंत गायों का सम्यक् दान करने से जो फल मिलता है, वह फल एकादशमुखी रुद्राक्ष के धारण से शीघ्र ही प्राप्त होता है। वह इस लोक में शंकर-सदृश हो जाता है और उसका पुनर्जन्म नहीं होता। ७८-७९

बारहमुखी रुद्राक्ष को कंठदेश में धारण करने से आदित्य (सूर्य) तुष्ट होते हैं। वे नित्य द्वादशमुखी रुद्राक्ष में व्यवस्थित हो जाते हैं। ८0

गोमेध और नरमेध-यज्ञ करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वह फल शीघ्र ही प्राप्त होता है। इससे किसी भी प्रकार की वज्रता (सांसारिक कठोरता अथवा आकाशीय हिमपात) से निवारण होता है। ८१

इससे अग्निभय नहीं होता और न शारीरिक रोग होता है। अर्थलाभ और सुख को भोगकर वह ईश्वर (स्वामी) बन जाता है। उसे दरिद्रता कभी नहीं छूती। ८२

हाथी, घोड़ा, मनुष्य, बिल्ली, चूहा, खरहा, साँप, सूअर, सियार इत्यादि की हत्या और उसके पाप से द्वादशमुखी रुद्राक्ष-धारण-कर्त्ता मुक्त हो जाता है, इसमें संदेह नहीं। यदि तेरहमुखी रुद्राक्ष प्राप्त हो जाए, जो रुद्र ही है, तो वह परम शम्कारक बन जाता है—ऐसा समझना चाहिए। साथ ही यह सभी कामनाओं और फलों को प्रदान करनेवाला भी है। जो सुधा-रसायन आदि और धातुओं के निर्माण के लिए कृत-संकल्प हैं, हे षण्मुख ! उनके इस प्रकार के सभी कार्य सिद्ध होते हैं तथा वे भाग्ययुक्त बने रहते हैं। माता, पिता, बहन, भाई और गुरु की हत्या करने पर भी त्रयोदशमुखी रुद्राक्ष-धारण करने से इन सभी प्रकार के पापों से मुक्ति मिल जाती है। अक्षय स्वर्ग का लाभ भी इससे मिलता है, जैसे देव महेश्वर को अक्षय स्वर्ग मिलता है। ८३-८७

हे वत्स ! यदि चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष सदैव माथे पर अथवा बाहुओं में धारण किया जाए तो वह शिव का शक्ति-पिण्ड बन जाता है (शक्तिपीठ और ज्योतिर्लिंग दोनों बन जाता है।)। ८८

इसके पुनः पुनः वर्णन और बहुकथन की क्या आवश्यकता ? वह व्यक्ति देवताओं के द्वारा सदैव पूजित होता है। पुण्य-गौरवशाली व्यक्तियों के भाग्य से ही ऐसे व्यक्ति प्राप्त होते हैं। ८९

कार्तिकेय ने कहा,—

हे भगवन् ! प्रत्येक मुख में किस प्रकार न्यास, मंत्रपाठ और धारण होता है—यह हमें बताएँ। ९0

ईश्वर ने कहा,—

हे कार्तिकेय! सुनो—तत्त्वपूर्वक, यथाविधि प्रत्येक वक्त्र का वर्णन करता हूँ। बिना मंत्रों के रुद्राक्ष-धारण के इतने गुण वर्णित हैं। ९१

यदि कोई मानव इस पृथ्वी पर मंत्रों से संयुक्त कर रुद्राक्षधारण करता है तो उसके गुणों और महत्त्व को कहने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है। ९२

अब मंत्र कहे जा रहे हैं—

ॐ रुद्र एकवक्त्रस्य ।
ॐ खं द्विवक्त्रस्य ।
ॐ वुं त्रिवक्त्रस्य ।
ॐ ह्रीं चतुर्वक्त्रस्य ।
ॐ ह्रां पञ्चवक्त्रस्य ।
ॐ ह्रूं पड्वक्त्रस्य ।
ॐ ह्रः सप्तवक्त्रस्य ।
ॐ कम् अष्टवक्त्रस्य ।
ॐ जूं नववक्त्रस्य ।
ॐ क्षं दशवक्त्रस्य ।
ॐ श्रीं एकादशवक्त्रस्य ।
ॐ ह्रां द्वादशवक्त्रस्य ।
ॐ क्षौं त्रयोदशवक्त्रस्य ।
ॐ त्रां चतुर्दशवक्त्रस्य ।

इन मंत्रों से क्रमशः न्यास करना चाहिए।

मस्तक और हृदय पर मालाधारण कर जो मनुष्य चलता है, उसे पग-पग पर एक-एक अश्वमेध यज्ञ के फल की प्राप्ति का लाभ मिलता है। इसमें किसी प्रकार की अन्यथा नहीं है। ९३

सभी मुखों के धारण से व्यक्ति मेरे सदृश हो जाता है। इसलिए हे पुत्र ! सभी प्रयत्नों के साथ रुद्राक्ष-धारण करना चाहिए। ९४

जो (रुद्राक्ष-संबंधी) इन मंत्रों को सुनता है, अथवा पुण्य आख्यान को सुनता है, उसे वही फल प्राप्त होता है, जो सभी मुखों के रुद्राक्ष को धारण करने से प्राप्त होता है। ९५

इन सभी विहित फलों को प्राप्तकर वह स्वर्लोक (स्वर्ग) तथा मोक्ष (अपवर्गता) को प्राप्त करता है। पृथ्वी पर जो मनुष्य रुद्राक्ष को धारण कर मरता है, वह मेरे रमणीय लोक में जाता है और सभी देवताओं के द्वारा पूजित हो जाता है। हे पुत्र ! प्राचीन काल में मरुदेश नामक स्थल में व्यापार के लिए जाते हुए एक वणिक् पुत्र को वृक्ष पर बैठी हुई प्रेतिनी ने पीड़ित किया। फिर एक ब्राह्मण के द्वारा नाचती हुई वह प्रेतिनी देखी गई। ९६-९८

ब्राह्मण ने कहा,—

तुम कौन हो ? दीन अवस्था को प्राप्तकर क्यों नाच रही हो ? फटे वस्त्रों से भी लिपटी हो। ९९

ईश्वर ने कहा,—

उस प्रेतिनी ने ब्राह्मण से कहा,—ऐसा देवदूतों से सुना गया है, इस शोभनपुरुष (वणिक् पुत्र) का वज्रपात के द्वारा अभी निधन होगा और फिर वह मेरा पति बनेगा (ऐसा प्रेतिनी ने कहा)। इसी बीच ऊपर से (स्वर्ग से) उसके मस्तक पर वज्र गिरता है। १००-१०१

फिर वह वज्र पृथ्वी पर रुद्राक्ष के आधे खंड पर गिरता है। फिर मेरे ही समक्ष हे पुत्र ! शीघ्र ही एक विमान का अवतरण होता है। १०२

फिर उस विमान पर आरोहणकर वह स्थिरतापूर्वक बैठ जाता है। रुद्राक्ष को धारण करनेवाला व्यक्ति ईश्वरवत् हो जाता है। १०३

इस प्रकार रुद्राक्ष-खंड़ पर मृत्यु होने से भी सुगति प्राप्त होती है तो हे पुत्र ! ज्ञानपूर्वक जो व्यक्ति रुद्राक्ष-धारण करता है, उसके फल को कहने में मैं असमर्थ हूँ। १०४

वह शैव (शिवोपासक), वैष्णव (विष्णु-उपासक), शाक्त (शक्ति-उपासक), गाणपत्य (गणेशोपासक) और सौरक (सूर्योपासक), कोई भी यदि मस्तक में रुद्राक्ष-धारण किये हुए मरता है। (एक माला भी) या जो इस माहात्म्य को पढ़ता और पढ़वाता है, सुनाता या सुनता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर क्रमशः सुख और मोक्ष को प्राप्त करता है। १०५-६

इति श्रीमहापुराणे पाद्मे सृष्टिखण्डे रुद्राक्षमाहात्म्य-वर्णननाम
सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

अक्षमालिकोपनिषद्

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे माप्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रात्संदधाम्यृतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतुमाम। अवतु वक्तारमवतु वक्तारम्। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

अथ प्रजापतिर्गुहं पप्रच्छ—भो भगवन् अक्षमालाभेदविधिं ब्रूहीति। सा किंलक्षणा कतिभेदा अस्याः कति सूत्राणि कथं घटनाप्रकारः के वर्णाः का प्रतिष्ठा कैषाऽधिदेवता किं फलं चेति ॥१॥

तं गुहः प्रत्युवाच—प्रवालमौक्तिकस्फटिक-शङ्खरजताष्टापदचन्दन-पुत्रजीविकाब्जरुद्राक्षा इत्यादिक्षान्तरमूर्तिसंविधानुभावाः। सौवर्णं राजतं ताम्रं चेति सूत्रत्रयम्। तद्विवरे सौवर्णं तद्दक्षपार्वे राजतं तद्वामे ताम्रं तन्मुखे मुखं तत्पुच्छे पुच्छं तदन्तरावर्तनक्रमेण योजयेत् ॥२॥

यदस्यान्तरं सूत्रं तद्ब्रह्म। यद्दक्षपार्श्वे तच्छैवम्। यद्वामे तद्वैष्णवम्। यन्मुखं सा सरस्वती। यत् पुच्छं सा गायत्री। यत् सुषिरं सा विद्या। या ग्रन्थिः सा प्रकृतिः । ये स्वरास्ते धवलाः । ये स्पर्शास्ते पीताः । ये परास्ते रक्ताः ॥३॥

अथ तां पञ्चभिर्गव्यैरमृतैः पञ्चभिर्गव्यैस्तनुभिः शोधयित्वा पञ्चभिर्गव्यैर्गन्धोदकेन संस्नाय तस्मात् सोङ्कारेण पत्रकूर्चेन स्नपयित्वाऽष्टभिर्गन्धैराषिप्य सुमनःस्थले निवेश्याक्षतपुष्पैराध्य प्रत्यक्षमादिक्षान्तैर्वर्णैर्भावयेत् ॥४॥

ओमंकार मृत्युञ्जय सर्वव्यापक प्रथमेऽक्षे प्रतिष्ठित। ओमांकाराकर्षणात्मक-सर्वगत-द्वितीयेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओमिंकार पुष्टिदाक्षोभकर तृतीयेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओमींकार बाक्प्रसादकर निर्मल चतुर्थेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओमुंकार सर्वबलप्रद सारतर पञ्चमेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओमूंकारोच्चाटनकर दुःसह षष्ठेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओमृंकार संक्षोभकर चञ्चल सप्तमेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओमॄंकार संमोहनकरोज्ज्वलाष्टमेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओम्लृंकार विद्वेषणकर शूहक नवमेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओम्लॄंकार मोहकर दशमेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओमेंकार सर्ववश्यकर शुद्धसत्त्वकादशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओमैंकार शुद्धसात्त्विक पुरुषवश्यकर द्वादशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओमोंकाराखिलवाङ्मय नित्यशुद्ध त्रयोदशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओमौंकार सर्ववाङ्मय वश्यकर शान्त चतुर्दशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओमंकार गजादिवश्यकर मोहन पञ्चदशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओमःकार मृत्युनाशनकर रौद्र षोडशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं कंकार सर्वविषहर कल्याणद सप्तदशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं खंकार सर्वक्षोभकर व्यापकाष्टादशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं गंकार सर्वविघ्नशमन महत्तरैकोनविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं घंकार सौभाग्यद स्तम्भनकर विंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं ङंकार सर्वविषनाशकरोग्रैकविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं चंकाराभिचारघ्न क्रूर द्वाविंशेऽक्षे प्रतिनिष्ठ ओं छंकार भूतनाशकर भीषण त्रयोविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं जंकार कृत्याऽऽदिनाशकर दुर्धर्ष चतुर्विंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं झंकार भूतनाशकर पञ्चविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं ञंकार मृत्युप्रमथन षड्विंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं टंकार सर्वव्याधिहर सुभग सप्तविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं ठंकार चन्द्ररूपाष्टाविंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं डंकार गरुडात्मक विषघ्न शोभनैकोनत्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं ढंकार सर्वसंपत्प्रद सुभग त्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं णंकार सर्वसिद्धिप्रद मोहकरैकत्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं तंकार धनधान्यादिसंपत्प्रद प्रसन्न द्वात्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं थंकार धर्मप्राप्तिकर निर्मल त्रयस्त्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं दंकार पुष्टिवृद्धिकर प्रियदर्शन चतुस्त्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं धंकार विषज्वरनिघ्न विपुल पञ्चत्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं नंकार भुक्ति-मुक्तिप्रद शान्त षट्त्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं पंकार विषविघ्ननाशन भव्य सप्तत्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं फंकाराणिमादिसिद्धिप्रद ज्योतीरूपाष्टत्रिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं बंकार सर्वदोषहर शोभनैकोनचत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं भंकार भूत-प्रशान्तिकर भयानक चत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं मंकार विद्वेषिमोहनकरैकचत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं यंकार सर्वव्यापक पावन द्विचत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं रंकार दाहकर विकृत त्रिचत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं लंकार विश्वम्भर भासुर चतुश्चत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं वंकार सर्वाप्यायनकर निर्मल पञ्चत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं शंकार सर्वफलप्रद पवित्र षट्चत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं षंकार धर्मार्थकामद धवल सप्तचत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं संकार सर्वकारण सार्ववर्णिकाष्टचत्वारिंशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं हंकार सर्ववाङ्मय निर्मलैकोनपञ्चाशेऽक्षे प्रतितिष्ठ। ओं ळंकार सर्वशक्तिप्रद प्रधान पञ्चाशदक्षे प्रतितिष्ठ। ओं क्षंकार परापरतत्त्वज्ञापक परंज्योतीरूप शिखामणौ प्रतितिष्ठ ॥५॥

अथोवाच ये देवाः पृथिवीषदस्तेभ्यो नमो भगवन्तोऽनुमदन्तु शोभायै पितरोऽनुमदन्तु शोभायै ज्ञानमयीमक्षमालिकाम् ॥६॥

अथोवाच ये देवा अन्तरिक्षसदस्तेभ्य ॐ नमो भगवन्तोऽनुमदन्तु शोभापै पितरोऽनुमदन्तु शोभायै ज्ञानमयीमक्षमालिकाम् ॥७॥

अथोवाच ये देवा दिविषदस्तेभ्यो नमो भगवन्तोऽनुमदन्तु शोभायै पितरोऽनुमदन्तु शोभायै ज्ञानमयीमक्षमालिकाम् ॥८॥

अथोवाच ये मन्त्रा या विद्यास्तेभ्यो नमस्ताभ्यश्चनमस्तच्छक्तिरस्याः प्रतिष्ठापयति ॥९॥

अथोवाच ये ब्रह्मविष्णुरुद्रास्तेभ्य सगुणेभ्यः ओं नमस्तद्वीर्यमस्याः प्रतिष्ठापयति ॥१०॥

अथोवाच ये सांख्यादित्तत्त्वभेदास्तेभ्यो नमो वर्तध्वं वरोधेनुवर्त्तध्वम् ॥११॥

अथोवाच ये शैवा वैष्णवाः शाक्ताः शतसहस्रशस्तेभ्यो नमो नमो भगवन्तोऽनुमदन्त्वनुगृह्णन्तु ॥१२॥

अथोवाच याश्च मृत्योः प्राणवत्यस्ताभ्यो नमो नमस्तेनैतां मृडयत मृडयत ॥१३॥

पुनरेतस्यां सर्वात्मकत्वं भावयित्वा भावेन पूर्वमालिकामुत्पाद्यारभ्य तन्मयीं महोपहारैरुपहृत्यादिक्षान्तैरक्षैरक्षमालामष्टोत्तरशतं स्पृशेत् ॥१४॥

अथ पुनरुत्थाप्य प्रदक्षिणीकृत्योंनमस्ते भगवति मन्त्र-मातृकेऽक्षमाले सर्ववशंकर्योंनमस्ते भगवति मन्त्रमातृकेऽक्ष-मालिकेऽशेषस्तम्भिन्योंनमस्ते भगवति मन्त्रमातृकेऽक्षमाले उच्चाटन्योंनमस्ते भगवति मन्त्रमातृकेऽक्षमाले विश्वांमृत्यो मृत्युञ्जयस्व-रूपिणि सकलोद्दीपिनि सकललोकदरक्षादिके सकललोकोज्जीविके सकलोत्पादिके दिवाप्रवर्तिके रात्रिप्रवर्तिके नद्यन्तरयासि देशान्तरयासि द्वीपान्तरयासि लोकान्तरयासि सर्वदा स्फुरसि सर्वहृदिवासयसि। नमस्ते परारूपे नमस्ते पश्यन्तीरूपे नमस्ते मध्यमारूपे नमस्ते वैखरीरूपे सर्वतत्त्वात्मिके सर्वविद्यात्मिके सर्वशक्त्यात्मिके सर्वदेवात्मिके वसिष्ठेन मुनिनाऽऽराधिते विश्वामित्रेण मुनिनोपसेव्यमाने नमस्ते नमस्ते ॥१५॥

प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। तत् सायं प्रातः प्रयुञ्जानः पापोऽपापो भवति एवमक्षमालिकया जप्तो मन्त्रः सद्यः सिद्धिकरो भवतीत्याह भगवान् गुहः प्रजापतिमित्युपनिषत् ॥१६॥

भाषांतर (अक्षमालिकोपनिषद्)

शांतिपाठ—

ॐ। वाक् (वाणी) मेरे मन में प्रतिष्ठित (स्थिर) हो। मन मेरी वाणी में प्रतिष्ठित हो। हे स्वयं प्रकाश आत्मा, मेरे सम्मुख तुम प्रकट बनो। हे वाक् और मन! तुम दोनों ही वेद-ज्ञान के लिए मेरे आधार (बन जाओ) हो। इसलिए तुम मेरे वेदाभ्यास का नाश न करो। इस वेदाभ्यास में ही मैं दिन और रात व्यतीत करता हूँ। मैं ऋत-भाषण करूँगा, मैं सत्य-भाषण करूँगा। मेरी रक्षा करो। वक्ता की रक्षा करो। मेरी रक्षा करो। वक्ता की रक्षा करो। वक्ता की रक्षा करो। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

(एक समय) प्रजापति ने गुह से पूछा,—हे भगवन्! अक्षमाला की भेद-विधि को कहिए। उसके क्या लक्षण हैं, कितने भेद हैं, कितने सूत्र हैं। इसके घटना-प्रकार (पिरोने के प्रकार) कैसे हैं? कौन-कौन वर्ण हैं? प्रतिष्ठा क्या है? इसके अधिदेवता कौन-कौन हैं और क्या फल हैं ? १

इस पर गुह ने उनसे कहा,—प्रवाल, मोती, स्फटिक, शंख, चाँदी, सोना, चंदन, पुत्रजीविका, कमल तथा रुद्राक्ष ये दस प्रकार की मालाएँ होती है, जो अ से क्ष-पर्यंत

(पचास) अक्षरों से अनुभावित करके धारण की जाती हैं। इसमें सोना, चाँदी और ताँबा के तीन सूत्र होते हैं। मनके (दाने) के छेद में सोना, दाहिने भाग में चाँदी और बाँये भाग में ताँबा के सूत्र होते हैं। मनकों को मुख-से-मुख तथा पूँछ-से-पूँछ संयुक्तकर उन्हें सूत्रित करना चाहिए। २

इसके अंदर का सूत्र (स्वर्ण-सूत्र) ब्राह्म है। दाहिने भाग का सूत्र (रजत-सूत्र) शैव है। बायीं ओर का सूत्र (ताम्र-सूत्र) वैष्णव है। मनके का मुख-भाग सरस्वती है। पुच्छ-भाग गायत्री है। छेद विद्या है। गाँठ (ग्रंथि) प्रकृति है। जो स्वर हैं, वे धवल हैं (सात्त्विक)। जो स्पर्श हैं, वे पीत हैं (सत्त्व तथा तम के मिश्रण के कारण पीले हैं।) शेष जो पर (अन्य) हैं, वे लाल हैं (राजस)। ३

इसके पश्चात् नंदा आदि गायों के दूध से तथा गाय के शरीर से उत्पन्न पंचगव्य (गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत, गोमूत्र, गोमय) से शोधितकर पुनः पंचगव्य (नंदादि पंचगौः के दधिमात्र से) तथा गंधयुक्त जल से स्नान कराकर, ओंकार का उच्चारण करते हुए पत्रकूर्च (कुशगुच्छ) से स्नान कराकार अष्टगंध से लीपे हुए स्थान पर मणशिला नामक धातु की स्थापना करनी चाहिए और अक्षत तथा पुष्प से उसकी पूजा भी करनी चाहिए। फिर उस पर माला (रुद्राक्ष) को रखकर प्रत्येक अक्ष (मनका) को अ से लेकर क्ष-तक के अक्षरों द्वारा क्रमशः भावित (स्थापना) करें। ४

ॐ। हे अंकार! तुम मृत्युंजय (मृत्यु को जीतनेवाले) हो। तुम सर्वव्यापक भी हो। तुम प्रथम अक्ष (दाने) में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे आंकार! तुम आकर्षणात्मक और सर्वगत हो, तुम दूसरे अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। ईकार। तुम पुष्टिदा और क्षोभकर हो, तुम तृतीय अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ।

ॐ। ईंकार। तुम वाक्प्रसादकर (वाणी को स्वच्छता प्रदान करनेवाले) और निर्मल हो, तुम चतुर्थ अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। उंकार। तुम सर्वबलप्रद तथा सारयुक्तों में श्रेष्ठ (सारतर) हो, पाँचवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे ऊंकार! तुम उच्चाटनकर तथा दुःसह हो, तुम छठे अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे ऋंकार! तुम संक्षोभकर (चंचलचित्तता लानेवाले) और चंचल हो, सातवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे ॠंकार! तुम संमोहनकर तथा उज्ज्वल हो, तुम आठवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ।ॐ। हे लृंकार! तुम विद्वेषणकर तथा श्रूहक (सर्वज्ञ एवं गुप्त) हो, तुम नवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे लृंकार! तुम मोहकारी हो, तुम दसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे एंकार! तुम सर्ववश्यकर तथा शुद्ध सत्त्ववाले हो, ग्यारहवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे ऐंकार! तुम शुद्ध-सात्त्विक तथा पुरुषवश्यकार हो। तुम बारहवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे ओंकार! तुमं अखिल वाङ्मयस्वरूप (संपूर्ण अक्षरों के समूह) तथा नित्य शुद्ध हो, तेरहवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे औंकार! तुम भी सर्ववाङ्मयस्वरूप, वश्यकर तथा शांत हो, चौदहवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे अंकार! तुम हाथी इत्यादि को वश में करनेवाले तथा मोहन करनेवाले हो, तुम पन्द्रहवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे अःकार!

तुम मृत्युनाशनकर तथा रौद्ररूप हो, सोलहवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे कंकार! तुम सर्वविषहर और कल्याणप्रद हो, तुम सत्रहवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे खंकार! तुम सर्वक्षोभकर तथा व्यापक हो, इस अठारहवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे गंकार! तुम सर्वविघ्नशमनकर्ता तथा महत्तर हो, तुम उन्नीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे घंकार! तुम सौभाग्य देनेवाले तथा स्तंभन-कर्ता (गति को रोकनेवाले) हो, बीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे ङंकार! तुम सर्वविषनाशकर तथा उग्र हो, तुम इक्कीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे चंकार! तुम अभिचारनाशक (मारण-मोहनादि-नाशक) तथा क्रूर हो, तुम बाईसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे छंकार! तुम भूतनाशकर तथा भीषण हो, तेईसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे जंकार! तुम कृत्यानाशक (डाकिनी-शाकिनी-नाशक) तथा दुर्द्धर्ष हो, इस चौबीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे झंकार! तुम भूतनाशकर हो, तुम पचीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे ञं! तुम मृत्यु का मथन करनेवाले हो। इस छब्बीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे टंकार! तुम सभी व्याधियों का हरण करनेवाले सौम्य तथा सुभग हो, तुम सत्ताईसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे ठंकार! तुम चंद्र-स्वरूप हो, इस अठाईसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे डंकार! तुम गरुड-स्वरूप, विषनाशक तथा सुंदर हो, इस उनतीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे ढंकार! तुम सभी तरह की संपत्तियों को देनेवाले तथा सौम्य हो, इस तीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे णंकार! तुम सर्वसिद्धिप्रद तथा मोहकर हो, इस इकतीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे तंकार! तुम धनधान्यादि संपत्तियों को देनेवाले हो तथा प्रसन्न हो, इस बत्तीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे थंकार! तुम धर्म की प्राप्ति करानेवाले तथा निर्मल हो, इस तैंतीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे दंकार! तुम पुष्टि और वृद्धि करनेवाले तथा प्रियदर्शन हो, इस चौंतीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे धंकार! तुम विष और ज्वर के नाशक हो तथा विशाल (विपुल या बहुत) हो, इस पैंतीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे नंकार! तुम भोग और मोक्ष को देनेवाले तथा स्वयं शांत हो, इस छत्तीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे पकार! तुम विष एवं विघ्नों के नाशक हो तथा भव्य (कल्याणमय एवं सुंदर) हो, इस सैंतीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे फंकार! तुम अणिमादि (अष्ट) सिद्धिप्रद तथा ज्योतिःस्वरूप हो, इस अड़तीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे बंकार! तुम सभी दोषों का हरण करनेवाले तथा शोभन हो, इस उनचालीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे भंकार! तुम भूतबाधादि शांत करनेवाले तथा भयानक हो, इस चालीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे मंकार! तुम विद्वेष करनेवाले को मोहित करनेवाले (स्वयं विद्वेषण और मोहन-कर्म के कत्ता) हो, इस इकतालीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे यंकार! तुम सर्वव्यापी तथा पवित्र हो, इस बयालीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। रंकार। तुम दाहकर (जलन-तपन इत्यादि उत्पन्न करनेवाले)

तथा विकृत (अग्नि-स्वरूप अथवा जातवेदस्स्वरूप होने के कारण 'विकृत' करता है, अर्थात् विकार-युक्त करता है, रूपांतरित करता है अथवा विशिष्टकृत भी करता है।) करता है। ॐ। हे लंकार! तुम विश्व का पालन करनेवाले तथा चमकवाले देवस्वरूप (भासुर) हो, इस चौआलीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे वंकार! तुम सबों को तृप्त करनेवाले (सर्वाप्यायनकर) तथा निर्मल हो, इस पैंतालीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे शंकार! तुम सर्वफलप्रद तथा पवित्र हो, इस छियालीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे षंकार! तुम धर्म, अर्थ और काम के फलों को देनेवाले तथा धवल (सात्त्विक) हो, इस सैंतालीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे संकार! तुम सर्वकारण (सभी वस्तुओं के कारण) तथा सार्ववर्णिक (सभी वर्णों से संबद्ध) हो, इस अड़तालीसवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे हंकार! तुम सर्ववाङ्मय (सभी भाषा-साहित्य और उच्चारण के मूलाधार) और निर्मल हो (ह का अर्थ आकाश (वियत्) होता है यह आकाश ही सभी अक्षरों का आधान है। वह 'निर्मल' है। आकाश को निर्मल कहा जाता है। दूसरे शब्दों में यही निरंजन है। आकाश में मल या अंजन नहीं लगता, इसलिए वह निर्मल और निरंजन है।) ।ॐ। हे ळंकार! तुम सर्वशक्तिप्रद हो तथा प्रधान हो, तुम इस पचासवें अक्ष में प्रतिष्ठित हो जाओ। ॐ। हे क्षंकार! तुम परापर-तत्त्व के बतानेवाले तथा परमज्योतिः स्वरूप हो, इस शिखामणि में (मेरुमाला का प्रधान मनका) (इस इक्यावनवें अक्ष, अर्थात्, सुमेरु पर) प्रतिष्ठित हो जाओ। ५

फिर वे इस प्रकार बोले,—जो देवगण। पृथ्वी पर स्थित और विचरणशील हैं, उन्हें नमस्कार है। हे भगवन्! आप सभी इस माला में स्थित हों। आप सभी इस माला का अनुमोदन करें। (मेरे द्वारा माला-ग्रहण के विधान का आप सभी समर्थन करें) और इसकी शोभा के लिए पितृगण भी अनुमोदन करें। यह ज्ञानमयी अक्षमालिका है (इसे सभी अनुमोदित और शोभित करें)। ६

पुनः बोले,—जो देवता आकाश में स्थित और विचरणशील हैं, उन्हें नमस्कार है। हे भगवन् ! आप सभी इस माला में स्थित हों। आप सभी इस माला का अनुमोदन करें (मेरे द्वारा माला-ग्रहण के विधान का आप सभी समर्थन करें) और इसकी शोभा के लिए पितृगण भी अनुमोदन करें। यह ज्ञानमयी अक्षमालिका है (इसे सभी अनुमोदित और शोभित करें)। ७

फिर बोले,—जो देवगण स्वर्ग में स्थित और विचरणशील हैं, उन्हें नमस्कार है। हे भगवन्! आप सभी इस माला में स्थित हों। आप सभी इस माला का अनुमोदन करें (मेरे द्वारा माला-ग्रहण के विधान का आप सभी अनुमोदन करें) और इसकी शोभा के लिए पितृगण भी अनुमोदन करें। यह ज्ञानमयी अक्षमालिका है (इसे सभी अनुमोदित और शोभित करें)। ८

पुनः इस प्रकार बोले,—इस लोक में जितने मंत्र हैं (मंत्रों की संख्या सात करोड़ मानी गई है), जो भी विद्याएँ हैं। (परा, अपरा विद्या तथा चौसठ कला-रूप विद्या), उन्हें नमस्कार है। उन सबों की शक्तियाँ इसमें प्रतिष्ठित हो जाएँ। ९

पुनः बोले,—जो ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र-संज्ञक देव हैं, उन सगुण देवों (वे सभी देव अपने सभी गुणों के साथ और साकार रूप में आनेवाले) को नमस्कार है। उनके वीर्य (पराक्रम) को नमस्कार है। वह पराक्रम यहाँ प्रतिष्ठित हो। १०

फिर बोले,—जो सांख्यादि दर्शनों में विहित (छियानवे) तत्त्व हैं, उन्हें नमस्कार है। आप सभी इस माला में स्थित हों तथा जापक (इस माला पर जप करनेवाले) को वर देनेवाले कामधेनु-स्वरूप बनकर शोभित हों (जापक के विरोधों का नाशक बनें)। ११

पुनः बोले,— इस जगत् में सैकड़ों-हजारों की संख्या में जो शैव, वैष्णव और शाक्त निवास करते हैं, उन्हें नमस्कार है। वे सभी भगवान् (शक्तिवान्) अनुग्रह तथा अनुमोदन करें। १२

फिर बोले,—(अंत में),—मृत्यु की जो उपजीव्य शक्तियाँ हैं, उन्हें नमस्कार है। आप सभी इस नमस्कार से प्रसन्न होकर इस अक्षमालिका को अपने उपासकों के लिए सुखद बना दें। १३

फिर इस अक्षमालिका में सर्वात्मकत्व (सर्वथा पूर्णत्व) की भावना करके इसी भावना से पूर्वमालिका (आधी माला) को पिरोकर, फिर शेष आधी माला को (सौ मनके पूरे कर) पुनः अष्टवर्ग के आठ मनके (अ, क, च, ट, त, प, य तथा श) को पूर्वोक्त क्रम से योजित करें। मेरु में क्ष अनुग्रथित रहेगा। इस प्रकार एक-एक मनका को माला में उपहृत कर (माला में पिरोकर) एक सौ आठ की अक्षमाला बनती है। १४

फिर उठकर प्रदक्षिणा करके बोलना चाहिए,—ॐ भगवति मन्त्रमातृके! अक्षमाले! तुम सबों को वश में करनेवाली हो, तुम्हें नमस्कार है। हे भगवति! मन्त्रमातृके! अक्षमाले! तुम सबकी गति का स्तंभन करनेवाली हो। तुम्हें नमस्कार है। हे भगवति! मन्त्रमातृके! अक्षमाले! तुम उच्चारण करनेवाली हो, तुम्हें नमस्कार है। हे भगवति! मन्त्रमातृके! अक्षमाले! तुम विश्वभूतमृत्यु को भी जीतनेवाली मृत्युंजयस्वरूपिणी हो, सबों की दीपित करनेवाली हो, सकल लोकों को प्रदान करनेवाली (बनानेवाली) और उनकी रक्षा करनेवाली, सकल लोकों की प्राणदात्री हो, तुम सबकुछ उत्पन्न करनेवाली हो, दिन का प्रवर्तन करनेवाली, रात का प्रवर्तन करनेवाली, नद्यन्तर, देशान्तर, द्वीपान्तर, लोकान्तर में संचरण करने में शक्तिशाली हो। तुम सदैव सबों के हृदय में निवास करनेवाली और स्फुरण करनेवाली हो। परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी वाणी के रूप में तुम्हीं हो। तुम सर्वतत्त्वात्मिका हो, सर्वविद्यात्मिका हो, शक्त्यात्मिका हो, सर्वदेवात्मिका हो, तुम वसिष्ठ मुनि के द्वारा आराधित एवं विश्वमित्रमुनि के उपसेव्यमान (सेवाशुश्रूषा की गई) हो, तुम्हें बार-बार नमस्कार है। १५

इस (अक्षमालिकोपनिषद्) को प्रातःकाल पढ़नेवाला अपने रात्रिकृत पाप को नष्ट कर लेता है। संध्या-काल इसको पढ़नेवाला अपने दिवसकृत पाप को नष्ट कर लेता है। प्रातः-संध्या पाठ करनेवाला अपने किसी भी पाप को निष्पाप कर लेता है। (वह पाप-मुक्त हो जाता है)। भगवान् गुह ने प्रजापति को अंत में यही कहा कि इस

विधि से अभिमंत्रित तथा पूजित अक्षमांला से जो जप किया जाता है, वह शीघ्र ही सिद्धिदायक होता है। १६

रुद्राक्षजाबालोपनिषद्

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषद माहं ब्रह्मनिराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मे अस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

अथ हैनं कालाग्निरुद्रं भुसुण्डः पप्रच्छ—कथं रुद्राक्षोत्पत्तिः, तद्धारणात् किं फलमिति ॥१॥

तं होवाच भगवान् कालाग्निरुद्रः। त्रिपुरवधार्थमहं निमीलिताक्षोऽभवम्। तेभ्यो जलबिन्दवो भूमौ पतितास्ते रुद्राक्षा जाताः । सर्वानुग्रहार्थाय तेषां नामोच्चारणमात्रेण दशगोप्रदानफलं दर्शनस्पर्शनाभ्यां द्विगुणफलमत ऊर्ध्वं वक्तुं न शक्नोमि ॥२॥

तत्रैते श्लोका भवन्ति—

कस्मिन् स्थितं तु किं नाम कथं वा धयति नरैः ।
कतिभेदमुखान्यत्र कैर्मन्त्रैर्धार्यति कथम् ॥३॥
दिव्यवर्षसहस्राणि चक्षुरुन्मीलितं मया ।
भूमावक्षिपुटाभ्यां तु पतिता जलबिन्दवः ॥४॥
तत्राश्रुबिन्दवो जाता महारुद्राक्षवृक्षकाः ।
स्थावरत्वमनुप्राप्य भक्तानुग्रहकारणात् ॥५॥
भक्तानां धारणात् पापं दिवारात्रिकृतं हरेत् ।
लक्षं तु दर्शनात् पुण्यं कोटिस्तद्धारणाद्भवेत् ॥६॥
तस्य कोटिशतं पुण्यं लभते धारणान्नरः ।
लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च ॥७॥
तज्जपाल्लभते पुण्यं नरो रुद्राक्षधारणात् ।
धात्रीफल-प्रमाणं यच्छ्रेष्ठमेतदुदाहृतम् ॥८॥
बदरीफलमात्रं तु मध्यमं प्रोच्यते बुधैः ।
अधमं चणमात्रं स्यात् प्रक्रियैषा मयोच्यते ॥९॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चेति शिवाज्ञया ।
वृक्षा जाताः पृथिव्यां तु तज्जातीयाः शुभाक्षकाः ॥१०॥
श्वेतास्तु ब्राह्मणा ज्ञेयाः क्षत्रिया रक्तवर्णकाः ।
पीता वैश्यास्तु विज्ञेयाः कृष्णा शूद्रा उदाहृताः ॥११॥
ब्राह्मणो बिभृयाच्छ्वेतान् रक्तान् राजा तु धारयेत् ।
पीतान् वैश्यस्तु बिभृयात् कृष्णाञ्छूद्रस्तु धारयेत् ॥१२॥
समाः स्निग्धा दृढाः स्थूलाः कण्टकैः संयुताः शुभाः ।
कृमिदष्टं छिन्नभिन्नं कण्टकैर्हीनमेव च ॥१३॥
व्रणयुक्तमयुक्तं च षड् रुद्राक्षाणि वर्जयेत् ।
स्वयमेव कृतद्वारं रुद्राक्षं स्यादिहोत्तमम् ॥१४॥

यत्तु पौरुषयत्नेन कृतं तन्मध्यमं भवेत् ।
समान् स्निग्धान् दृढान् स्थूलान् क्षौमसूत्रेण धारयेत् ॥१५॥
सर्वगात्रेण सौम्येन सामान्यानि विचक्षण ।
निकषे हेमरेखाभा यस्य रेखा प्रदृश्यते ॥१६॥
तदक्षमुत्तमं विद्यात् तद्धार्यं शिवपूजकैः ।
शिखायामेकरुद्राक्षं त्रिशतं शिरसा वहेत् ॥१७॥
षट्त्रिशतं गले दध्याद्बाहूवोः षोडश षोडश ।
मणिबन्धे द्वादशैवस्कन्धे पञ्चशतं वहेत् ॥१८॥
अष्टोत्तरशतैर्मालामुपवीतं प्रकल्पयेत्
द्विसरं त्रिसरं वाऽपि सराणां पञ्चकं तथा ॥१९॥
सराणां सप्तकं वाऽपि बिभृयात् कण्ठदेशतः ।
मुकुटे कुण्डले चैव कर्णिकाहारकेऽपि वा ॥२०॥
केयूरकटके सूत्रं कुक्षिबन्धे विशेषतः ।
सुप्ते पीते सदाकालं रुद्राक्षं धारयेन्नरः ॥२१॥
त्रिशतं त्वधमं पञ्चशतं मध्यममुच्यते ।
सहस्रमुत्तमं प्रोक्तमेवं भेदेन धारयेत् ॥२२॥
शिरसीशानमन्त्रेण कण्ठे तत्पुरुषेण तु ।
अघोरेण गले धार्यं तेनैव हृदयेऽपि च ॥२३॥
अघोरबीजमन्त्रेण करयोर्धारयेत् सुधीः ।
पञ्चाशदक्ष-ग्रथितान् व्योमव्याप्यभिचोदरे ॥२४॥
पञ्च ब्रह्मभिङ्गैश्च त्रिमाला पञ्च सप्त च ।
ग्रथित्वा मूलमन्त्रेण सर्वाण्यक्षाणि धारयेत् ॥२५॥
अथ हैनं भगवन्तं कालाग्निरुद्रं भुसुण्डः पप्रच्छ रुद्राक्षाणां
भेदेन यदक्षं यत्स्वरूपं यत्फलमिति तत्स्वरूपं मुखयुक्तमरिष्ठनिरसनं
कामाभीष्टफलं ब्रूहीति होवाच ॥२६॥

तत्रैते श्लोका भवन्ति—

एकवक्त्रं रुद्राक्षं परतत्त्वस्वरूपकम् ।
तद्धारणात् परे तत्त्वे लीयते विजितेन्द्रियः ॥२७॥
द्विवक्त्रं तु मुनिश्रेष्ठ चार्धनारीश्वरात्मकम् ।
धारणादर्धनारीशः प्रीयते तस्य नित्यशः ॥२८॥
त्रिमुखं चैव रुद्राक्षमग्नित्रयस्वरूपकम् ।
तद्धारणाच्च हुतभुक्तस्य तुष्यति नित्यदा ॥२९॥
चतुर्मुखं तु रुद्राक्षं चतुर्वक्त्रस्वरूपकम् ।
तद्धारणाच्चतुर्वक्त्रः प्रीयते तस्य नित्यदा ॥३०॥
पञ्चवक्त्रं तु रुद्राक्षं पञ्चब्रह्मस्वरूपकम् ।
पञ्चवक्त्रः स्वयं ब्रह्म पुंहत्यां च व्यपोपति ॥३१॥

षड्वक्त्रमपि रुद्राक्षं कार्त्तिकेयाधिदैवतम् ।
तद्धारणान्महाश्रीः स्यान्महदारोग्यमुत्तमम् ॥३२॥
मतिविज्ञान-संपत्ति-शुद्धये धारयेत् सुधीः ।
विनायकाधिदैवं च प्रवदन्ति मनीषिणः ॥३३॥
सप्तवक्त्रं तु रुद्राक्षं सप्तमात्राधिदैवतम् ।
तद्धारणान्महाश्रीः स्यान्महदारोग्यमुत्तमम् ॥३४॥
महती ज्ञानसंपत्तिः शुचिर्धारयतः सदा ।
अष्टवक्त्रं तु रुद्राक्षमष्टमात्राधिदैवतम् ॥३५॥
वस्वष्टकप्रियं चैव गङ्गाप्रीतिकरं तथा ।
तद्धारणादिमे प्रीता भवेयुः सत्यवादिनः ॥३६॥
नववक्त्रं तु रुद्राक्षं नवशक्त्यधिदैवतम् ।
तस्य धारणमात्रेण प्रीयन्ते नवशक्तयः ॥३७॥
दशवक्त्रं रुद्राक्षं यमदैवमुदाहृतम् ।
दर्शात् प्रशान्तिजनकं धारणान्नात्र संशयः ॥३८॥
एकादशमुखं त्वक्षं रुद्रैकादशदैवतम् ।
तदिदं दैवतं प्राहुः सदा सौभाग्यवर्द्धनम् ॥३९॥
रुद्राक्षं द्वादशमुखं महाविष्णुस्वरूपकम् ।
द्वादशादित्यरूपं च बिभर्त्येव हि तत्परः ॥४०॥
त्रयोदशमुखं चाक्षं कामदं सिद्धिदंशुभम् ।
तस्य धारणमात्रेण कामदेवः प्रसीदति ॥४१॥
चतुर्दशमुखं चाक्षं रुद्रनेत्रसमुद्भवम् ।
सर्वव्याधिहरं चैव सर्वदाऽऽरोग्यमाप्नुयात् ॥४२॥
मद्यं मांसं च लशुनं पलाण्डुं शिग्रुमेव च ।
श्लेष्मातकं बिड्वराहमभक्ष्यं वर्जयेन्नरः ॥४३॥
ग्रहणे विषुवे चैवमयने संक्रमेऽपि च ।
दर्शेषु पूर्णमासे च पूर्णेषु दिवसेषु च ॥
रुद्राक्षधारणात् सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४४॥
रुद्राक्षमूलं तद्ब्रह्मा तन्नालं विष्णुरेव च ।
तन्मुखं रुद्र इत्याहुस्तद्बिन्दुः सर्वदेवताः ॥ इति ॥४५॥

अथ कालाग्निरुद्रं भगवन्तं सनत्कुमारः पप्रच्छाधीहि भगवन् रुद्राक्षधारणविधिम् । तस्मिन् समये निदाघजडभरतदत्तात्रेय-कात्यायन-भरद्वाज-कपिलवसिष्ठपिप्पलादयश्च कालाग्नि-रुद्रं परिसमेत्योचुः। अथ कालाग्निरुद्रः किमर्थं भवतामागमनमिति होवाच। रुद्राक्ष-धारणविधिं वै सर्वे श्रोतुमिच्छामह इति ॥४६॥

अथ कालाग्निरुद्रः प्रोवाच। रुद्रस्य नयनादुत्पन्ना रुद्राक्षा इति लोके ख्यायन्ते। अथ सदाशिवः संहारकाले संहारं कृत्वा संहाराक्षं मुकुली-करोति। तन्नयनाज्जाता रुद्राक्षा इति होवाच। तस्माद्रुद्राक्षत्वमिति कालाग्निरुद्रः प्रोवाच ॥४७॥

तद्रुद्राक्षे वाग्विषये कृते दशगोप्रदानेन यत् फलमवाप्नोति तत् फलमश्नुते। स एव भस्मज्योती रुद्राक्ष इति। तद्रुद्राक्षंकरेण स्पृष्ट्वा धारणमात्रेण द्विसहस्रगोप्रदानफलं भवति। तद्रुद्राक्षे कर्णयोर्धार्यमाणे एकादशसहस्रगोप्रदानफलं भवति। एकादशरुद्रत्वं च गच्छति। तद्रुदाक्षे शिरसि धार्यमाणे कोटिगोप्रदानफलं भवति। एतेषां स्थानानां कर्णयोः फलं वक्तुं न शक्यमिति होवाच ॥४८॥

य इमां रुद्राक्षजाबालोपनिषदं नित्यमधीते बालो वा युवा वा वेद स महान् भवति। स गुरुः सर्वेषां मन्त्राणामुपदेष्टा भवति। एतैरेव होमं कुर्यात्। एतैरेवार्चनम्। तथा राक्षोघ्नं मृत्युतारकं गुरुणा लब्धं कण्ठे बाहौ शिखायां वा बध्नोत। सप्तद्वीपवती भूमिर्दक्षिणार्थं नावकल्पते। तस्माच्छ्रद्धया यां काञ्चिद्गांदद्यात् सा दक्षिणा भवति। य इमामुपनिषदं ब्राह्मणः प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायमधीयानो दिवसकृतपापं नाशयति। मध्याह्नेऽधीयानः षड्जन्मकृतपापं नाशयति। सायं प्रातः प्रयुञ्जानोऽनेकजन्मकृतपापं नाशयति। षड्सहस्रलक्षगायत्री-जपफलमवाप्नोति ब्रह्महत्यासुरापान-स्वर्णस्तेयगुरु-दारगमनतत्संयोगपातकेभ्यः पूतो भवति सर्वतीर्थफलमश्नुते पतितसंभाषणात् पूतो भवति पङ्क्तिशतसहस्रपावनो भवति शिवसायुज्यमवाप्नोति न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तत इत्यों सत्यमित्युपनिषत् ॥४९॥

भाषांतर (रुद्राक्षजाबालोपनिषद्)

मेरे सभी अंग वृद्धि को प्राप्त हों। वाणी, घ्राण (प्राण-वायु), चक्षु, श्रोत्र, बल और शेष सभी इन्द्रियाँ वृद्धि को प्राप्त हों। सभी उपनिषदें ब्रह्मरूप हैं। मुझसे न तो ब्रह्म का त्याग हो और न ही ब्रह्म मेरा त्याग करें। इस प्रकार आत्मा में निरत हुए मुझे उपनिषदों में निरूपित धर्म प्राप्त हों। वे सभी औपनिषदिक धर्म मुझमें आयें। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

एक समय इन कालाग्नि रुद्र से भुसुंड ने पूछा,—रुद्राक्ष की उत्पत्ति कैसे हुई ? उसके धारण के फल क्या हैं ? १

कालाग्नि रुद्र ने उनसे कहा,—त्रिपुर नामक राक्षस को मारने के लिए मैंने आँखें बंद कर लीं (अर्थात् समाधि लगा ली)। तत्परिणामतः उन आँखों से जो जलबिंदु भूमि पर गिरे, वे ही रुद्राक्ष बन गए अथवा उन्हीं से रुद्राक्ष उत्पन्न हो गया। सबों के प्रति अनुग्रहशील होने के कारण मेरा यह वक्तव्य है कि (रुद्राक्ष का) नाम लेने भर से दस गोदान का फल तथा दर्शन और स्पर्श-मात्र से इसका भी दोगुना फल मिलता है। इससे आगे कहने की शक्ति मुझमें नहीं है। २

इस संबंध में ये श्लोक हैं,—

प्रश्न—यह (रुद्राक्ष) कहाँ स्थित है ? क्या नाम है ? मनुष्य इसे क्यों धारण करते हैं। इसके कितने भेद हैं। ये कितने मुखवाले होते हैं ? तथा इन्हें किन मंत्रों से किस प्रकार और क्यों धारण किया जाता है ? ३

उत्तर—एक सहस्र दिव्य-वर्ष (देवताओं के वर्ष) तक आँखें खुली रहने (नेत्रोन्मीलित समाधिस्थ अवस्था) के कारण पृथ्वी पर नेत्रस्थ कुछ जलबिंदु गिर गए। ४

वे ही अश्रुबिंदु महारुद्राक्ष के वृक्ष बन गए और भक्तों पर अनुग्रह के कारण स्थावर (अचल) हो गए। ५

धारण करने से वह रुद्राक्ष दिन और रात के किए गए पापों का हरण करता है। उसे (रुद्राक्ष को) देखने से लाख-गुना पुण्य तथा धारण करने से करोड़-गुना पुण्य होता है। ६

उसको धारण करनेवाला मनुष्य करोड़ गुना ही नहीं, अरब-गुना पुण्य प्राप्त करता है। रुद्राक्ष-धारण करने और रुद्राक्ष-माला पर जप करने से मनुष्य लक्षकोटिसहस्र और लक्षकोटिशत-गुणित फल प्राप्त करता है। जो रुद्राक्ष धात्रीफल (आँवला) के समान हो, वह श्रेष्ठ कहा गया है। ७-८

विद्वान् मनुष्य बदरीफल (बेर) के समान रुद्राक्ष को मध्यम कहते हैं। चणक (चना) के बराबर रुद्राक्ष को अधम कहा है। अब मैं उसकी प्रक्रिया कहता हूँ। ९

शिवाज्ञा से उस शुभाक्षक (मंगलमय) रुद्राक्ष के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जाति के वृक्ष पृथ्वी पर उत्पन्न हुए। १०

श्वेत रुद्राक्ष ब्राह्मण हैं, लाल क्षत्रिय, पीत वैश्य और काले रुद्राक्ष शूद्र हैं। ११

ब्राह्मण को श्वेत, क्षत्रिय को लाल, वैश्य को पीले और शूद्र को काले रुद्राक्ष धारण करने चाहिए। १२

सम (बराबर) और गोल, स्निग्ध (चिकने), दृढ़ (मजबूत), स्थूल (बड़े) तथा कंटक-संयुक्त (काँटे-वाले) रुद्राक्ष शुभ माने जाते हैं। १३

कीड़ों के द्वारा खाये हुए, टूटे हुए या खंडित, कंटकों से रहित, रोग-ग्रस्त (व्रण-युक्त) तथा ठीक नहीं लगनेवाले (अयुक्त), ये छह प्रकार के रुद्राक्ष त्याज्य हैं (इनका धारण निषिद्ध है)। यदि रुद्राक्ष में स्वतः छिद्र अनुकूल स्थान पर हो गया हो तो वह उत्तम माना जाता है। १४

जिसमें प्रयत्नपूर्वक छेद किया जाता है, वह मध्यम श्रेणी का रुद्राक्ष होता है। समान, चिकने, मजबूत और सुपुष्ट रुद्राक्षों को रेशम के धागे में पिरोकर धारण करना चाहिए। १५

रुद्राक्ष को अपने संपूर्ण शरीर से सौम्य, सुंदर और एकसमान होना चाहिए। निकष (सोना जाँचने का पत्थर) पर सोने की रेखा की चमक की तरह जिस रुद्राक्ष की रेखा प्रतीत हो, उसे उत्तम समझना चाहिए और उसे ही शिवोपासकों को पहनना चाहिए। शिखा में एक रुद्राक्ष तथा मस्तक पर तीस रुद्राक्ष की माला को धारण करना चाहिए। १६-१७

गले में छत्तीस, दोनों भुजाओं में सोलह-सोलह, मणिबंध (कलाई) में बारह तथा कंधे में पन्द्रह रुद्राक्ष धारण करने चाहिए। १८

एक सौ आठ रुद्राक्ष की माला यज्ञोपवीत की तरह गले में धारण करनी चाहिए।१९

दो लड़ी, तीन लड़ी, पाँच लड़ी अथवा सात लड़ियों को (रुद्राक्ष-माला को) कंठ में धारण करना चाहिए। रुद्राक्ष को मस्तक पर मुकुट के रूप में, कानों में कुंडल के रूप में और कानों में हार के रूप में भी धारण करना चाहिए। २०

भुजबंध एवं कुक्षिबंध में विशेष-रूप से सूत्र को (सूत्रित माला को) सोते-जागते सदैव धारण किये रहना चाहिए। २१

तीन सौ रुद्राक्षों का धारण अधम, पाँच सौ रुद्राक्षों का धारण मध्यम तथा एक हजार रुद्राक्षों का धारण उत्तम कहा गया है। २२

मस्तक पर ईशान-मंत्र से, कंठ में तत्पुरुष-मंत्र से, गले तथा हृदय में अघोर-मंत्र से रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। २३

दोनों हाथों में विद्वान् अघोर बीजमंत्र से रुद्राक्ष-धारण करें। रुद्राक्ष-बीजों को अ से क्ष-पर्यंत पचास अक्षरों से अभिमंत्रणपूर्वक गूँथना चाहिए, फिर पंचाक्षर मंत्र (नमः शिवाय) से अभिमंत्रित कर प्राण-प्रतिष्ठादिपूर्वक मूलमंत्र से ग्रथित करते हुए तीन, पाँच या सात मालाओं के रूप में रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। २४-२५

फिर भगवान् कालाग्नि रुद्र से भुसुंड ने पूछा,—रुद्राक्षों के भेद से जिन रुद्राक्षों का जो स्वरूप तथा जो फल होता है, उनके स्वरूप को मुखभेदपूर्वक अरिष्टनाश (अमंगलनाश) तथा इच्छित-अभीप्सित वस्तुओं के फल को कहें (अर्थात् किनसे क्या अभीप्सित वस्तुएँ मिलती है)। २६

इस संबंध में इस प्रकार श्लोक हैं,—

एकमुखी रुद्राक्ष परतत्त्व का स्वरूप है, जिसे धारण करने से जितेन्द्रिय पुरुष पर-तत्त्व (शिव-तत्त्व) में लीन हो जाता है। २७

हे मुनिश्रेष्ठ ! द्विमुखी रुद्राक्ष अर्धनारीश्वर-रूप है, जिसे धारण करने से सदैव अर्धनारीश्वर भगवान् (शिव) प्रसन्न होते हैं। २८

तीन मुखवाला रुद्राक्ष तीनों अग्नियों का स्वरूप समझा जाता है, जिसे धारण करने से अग्निदेव नित्यशः प्रसन्न होते हैं। २९

चतुर्मुखी रुद्राक्ष चतुर्मुख भगवान् (ब्रह्मा) का स्वरूप समझा जाता है, जिसे धारण करने से चतुर्मुख भगवान् की प्रसन्नता प्राप्त होती है। ३०

पंचमुखी रुद्राक्ष पंचमुखी परमात्मा (शिव) का स्वरूप है। यह ब्रह्म-स्वरूप भी है, जिसे धारण करने से पुरुष-हत्या का पाप दूर होता है। ३१

छह मुखवाला रुद्राक्ष कार्तिकेय (शिव के ज्येष्ठ पुत्र) का स्वरूप है, जिसे धारण करने से महालक्ष्मी प्रसन्न होती है तथा उत्तम आरोग्य की प्राप्ति होती है। ३२

इसे (षण्मुखी रुद्राक्ष को) विद्वान् गणेश का स्वरूप मानते हुए इस रुद्राक्ष को बुद्धि, विद्या और लक्ष्मी की वृद्धि और शुद्धि के लिए अनुकूल मानते हैं। ३३

सात मुखवाला रुद्राक्ष सप्त-माला (ब्राह्मी आदि) का स्वरूप समझा जाता है। इसे धारण करने से विपुल वैभव तथा उत्तम आरोग्य प्राप्त होता है। ३४

पवित्रतापूर्वक इसे धारण करने से महत् ज्ञान और संपत्ति उत्पन्न होती है। अष्टमुखी रुद्राक्ष अष्टमाताओं का स्वरूप है। यह अष्टवसुओं को भी प्रिय है। इससे गंगा भी प्रसन्न होती हैं। इसके धारण करने से ये तीनों प्रसन्न होते हैं। ३५-३६

नौ मुखवाला रुद्राक्ष नवशक्तियों का प्रतीक है। इसे धारण करने से ये सभी नौ शक्तियाँ प्रसन्न होती हैं। ३७

दशमुखी रुद्राक्ष यमदेव-स्वरूप हैं, जिसके देखने और धारण करने से परम शान्ति मिलती है, इसमें कोई संदेह नहीं। ३८

एकादशमुखी रुद्राक्ष एकादश रुद्रदेव ही हैं। यह एकादश-रुद्राधिदैवत रुद्राक्ष सदैव सौभाग्यवर्धक होता है। ३९

द्वादशमुखी रुद्राक्ष विष्णु-स्वरूप है। यह बारह सूर्यों का भी स्वरूप समझा जाता है, जिसे इनका उपासक धारण करता है। ४०

त्रयोदशमुखी रुद्राक्ष कामनाओं और सिद्धियों को देनेवाला है। यह शुभ है। इसके धारण करने से कामदेव प्रसन्न होते हैं। ४१

चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष रुद्रदेव की आँखों से विशेष-रूप से उत्पन्न हुआ है। यह सभी रोगों का हरण करनेवाला और सदैव आरोग्य प्रदान करनेवाला है। ४२

रुद्राक्षधारणकर्ता को मद्य, मांस, लहसुन, प्याज, सहिजन (शिग्रु), लिसोड़ा (श्लेषमातक), विड्वराह (शाक-विशेष) इत्यादि अभक्ष्य वस्तुओं को त्याग देना चाहिए। ४३

ग्रहण के समय, दिन और रात के समकाल में, संक्रान्ति में, अयन-परिवर्तन के समय (उत्तरायण-दक्षिणायन), अमावस्या और पूर्णिमा में (मास-समाप्ति पर) जब दिन पूर्ण हो जाए, तब रुद्राक्ष धारण करने से धारक शीघ्र ही सभी पापों से मुक्त हो जाता है। ४४

रुद्राक्ष का मूल-भाग ब्रह्मा, नाल-भाग (मध्य-भाग) विष्णु तथा मुखभाग रुद्र माना गया है। रुद्राक्ष के बिंदुओं पर सभी देवताओं का अधिवास है। ४५

फिर कालाग्नि रुद्र भगवान् से सनत्कुमार ने पूछा,—हे भगवन्, आप रुद्राक्ष-धारण-विधि बताएँ। उसी समय निदाघ, जड़भरत, दत्तात्रेय, कात्यायन, भरद्वाज, कपिल, वंसिष्ठ, पिप्पलाद इत्यादि सभी कालाग्नि रुद्र के चारों तरफ बैठ गए तथा भगवान् कालाग्नि रुद्र के यह पूछे जाने पर कि आप लोग क्यों आए हैं, वे बोले,—हम सभी रुद्राक्ष-धारण-विधि को सुनना चाहते हैं। ४६

तब कालाग्नि रुद्र बोले,—रुद्र के नेत्रों से उत्पन्न होने के कारण यह रुद्राक्ष नाम से लोक-प्रसिद्ध है। भगवान् सदाशिव संहार के समय प्रलयकाल में संहार करने के पश्चात् संसार का संहार करनेवाले नेत्रों को मुकुलित (आँखों का थोड़ा खुलना और अधिकतर बन्द होना) कर लेते थे। ऐसे ही नेत्र से रुद्राक्ष की उत्पत्ति हुई है। इसी से रुद्राक्ष का रुद्राक्षत्व सिद्ध है। ऐसा कालाग्नि रुद्र ने उत्तर दिया। ४७

सौ बार रुद्राक्ष के शब्दोच्चारण से दस गोदान का फल प्राप्त होता है, वही रुद्राक्ष भस्म-ज्योति रुद्राक्ष भी कहा जाता है। उस रुद्राक्ष को हाथ से स्पर्शकर धारण-मात्र

से दो हजार गोदान का फल प्राप्त होता है। उस रुद्राक्ष को कानों में धारण करने-भर से ग्यारह हजार गोदान का फल प्राप्त होता है तथा धारक एकादश रुद्र के स्वरूप को भी प्राप्त करता है। ऐसे रुद्राक्ष को मस्तक (शिर) में धारण करने पर एक करोड़ गोदान का फल मिलता है। इन सभी स्थानों में कानों में रुद्राक्ष-धारण का फल अवर्णनीय है, ऐसा उन्होंने कहा। ४८

इस रुद्राक्षजाबालोपनिषद् का जो नित्य अध्ययन करता है, वह बालक या युवा जो भी है, वह महान् और ज्ञानी हो जाता है। वह गुरु तथा सभी मंत्रों का उपदेष्टा बन जाता है। इन्हीं से हवनकार्य भी करना चाहिए। इन्हीं से पूजार्चन भी करना चाहिए। राक्षसों को नष्ट करनेवाला और मृत्यु से उत्तीर्ण करनेवाला यह रुद्राक्ष गुरु से प्राप्तकर कण्ठ, भुजा अथवा शिखा में बाँधना चाहिए। इसकी दक्षिणा के लिए (गुरु-दक्षिणा-रूप में) सातों द्वीपों से युक्त पृथ्वी भी कम है। अतः श्रद्धापूर्वक जो कुछ भी दक्षिणा है, यहाँ तक कि वाणी (निवेदनपूर्ण सविनय मधुर वाणी) भी दक्षिणाभूत है। जो ब्राह्मण इस उपनिषद् को प्रातःकाल पढ़ता है, उसका रात्रिकृत पाप नष्ट हो जाता है। जो सायंकाल पढ़ता है, उसका दिवसकृत पाप नष्ट हो जाता है। जो मध्याह्न-काल में पढ़ता है, उसके छह जन्मों के पाप नष्ट होते हैं। प्रतिदिन सायंप्रातः पाठ से अनेक जन्मों के पाप नष्ट होते हैं तथा छह हजार लाख गायत्री जप का फल प्राप्त होता है। इसके साथ ही ब्रह्म-हत्या, सुरापान, सोने की चोरी, गुरु-पत्नी-संभोग इत्यादि से उत्पन्न पापों से भी वह मुक्त और पवित्र हो जाता है। वह सभी तीर्थों के फल को प्राप्त करता है। पतित व्यक्तियों के साथ बातचीत करने पर जो पाप लगता है, अथवा पुण्यक्षय होता है, उससे भी वह छूट जाता है और वह सैकड़ों, हजारों पंक्तियों (प्राणियों) को पवित्र करनेवाला हो जाता है। वह शिव-सायुज्य (शिव-सामीप्य) को प्राप्त करता है। उसका फिर कभी पुनर्जन्म नहीं होता, वह जन्म-मृत्यु के बंधन से मुक्त हो जाता है। यह ॐ है, यह सत्य है। यही यह उपनिषद् है। ४९

मन्त्रमहार्णव

शङ्कर उवाच,–

एकवक्त्रः शिवः साक्षाद्ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
द्विवक्त्रो देवदेव्यौ च गोवधं नाशयेद्ध्रुवम् ॥१५८॥
त्रिवक्त्रो दहनः साक्षाद्भ्रूणहत्यां व्यपोहति ।
चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥१५९॥
पंचवक्त्रः स्वयं रुद्र कःलाग्निर्नामनामतः ।
षड्वक्त्रः कार्तिकेयस्तु धारयेद्दक्षिणे भुजे ॥१६०॥
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ।
सप्तवक्त्रो महासेनो ह्यनन्तो नाम नागराट् ॥१६१॥

गुरुतल्पादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ।
अष्टवक्त्रो महासेनः साक्षाद्देवो विनायकः ॥१६२॥
पृष्ठोदरकरेणापि संस्पृशेद्वा गुरुस्त्रियम् ।
एवमादीनि पापानि चातिपापानि सर्वशः ॥१६३॥
विघ्नास्तस्य च नश्यन्ति मुक्तो याति परां गातिम् ।
गुणा ह्येतेषु सर्वेषु अष्टवक्त्रेषु धारणात् ॥१६४॥
नववक्त्रो भैरवः स्याद्धारयेद्वामके भुजे ।
कपिलो मुक्तिदः प्रोक्तो मम तुल्यबलो भवेत् ॥१६५॥
लक्षकोटिसहस्राणि ब्रह्महत्यां करोति यः ।
तत्सर्वं दहते शीघ्रं नववक्त्रस्य धारणात् ॥१६६॥
दशवक्त्रो महासेनः साक्षाद्देवो जनार्द्दनः ।
ग्रहाश्चैव पिशाचाश्च वैताला ब्रह्मराक्षसाः ॥१६७॥
पन्नगाश्च विनश्यन्ति दशवक्त्रस्य धारणात् ।
वक्त्रैकादशरुद्राक्षो रुद्र एकादशः स्मृतः ॥१६८॥
शिखायां धारयेन्नित्यं तस्य पुण्यफलं शृणु ।
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥१६९॥
हेमश्रृंगस्य लक्षस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोति रुद्रैकादशधारणात् ॥१७०॥
रुद्राक्षद्वादशाक्षस्य कण्ठदेशे च धारणात् ।
आदित्यस्तुष्यते नित्यं द्वादशार्कव्यवस्थितः ॥१७१॥
त्रयोदशमुखः कामः सर्वकामफलप्रदः ।
चतुर्दशास्यः श्रीकण्ठो वंशोद्धारकरः परः ॥१७२॥

अस्य धारणविधानं पद्मपुराणे,—

पञ्चामृतं पञ्चगव्यं स्नानकाले प्रयोजयेत् ।
रुद्राक्षस्य प्रतिष्ठायां मन्त्रः पञ्चाक्षरो यथा ।
ॐ त्र्यम्बकादिमन्त्रं च पथातेन प्रयोजयेत् ॥१७३॥

तत्र मन्त्रः,—

ॐ त्र्यंबकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥
ॐ ह्रौं अघोरे घोरे हुं घोरतरे हुं ॐ ह्रीं श्री सर्वतः
सर्वाङ्गे नमस्ते रुद्ररूपे हुम् ॥ इति मन्त्रः॥
अनेनापि च मन्त्रेण रुद्राक्षस्य द्विजोत्तमः ।
प्रतिष्ठां विधिवत्कुर्य्यात्ततोऽधिकफलं भवेत् ।
ततो यथा स्वमन्त्रेण धारयेद्भक्तिसंयुतः ॥१७४॥

तत्र क्रमेण मन्त्रः—

ॐ ॐ दृशं नमः १।
ॐ ॐ नमः २।
ॐ ॐ नमः ३।
ॐ ह्रीं नमः ४।
ॐ हूं नमः ५।
ॐ हूं नमः ६।
ॐ हूं नमः ७।
ॐ सः हूं नमः ८।
ॐ हं नमः ९।
ॐ ह्रीं नमः १0।
ॐ श्रीं नमः ११।
ॐ हूं ह्रीं नमः १२।
ॐ क्षां चौं नमः १३।
ॐ नमो नमः १४।
इति रुद्राक्ष-धारणम् ॥

भाषांतर (मंत्रमहार्णव)

शंकर ने कहा,—

एकमुखी रुद्राक्ष साक्षात् शिव है, यह ब्रह्म-हत्या के पाप का नाश करता है। द्विमुखी रुद्राक्ष देव-देवी-स्वरूप (शिव-शिवा-रूप, अर्धनारीश्वर-रूप) है और यह निश्चित रूप से गोवध से उत्पन्न पाप का नाश करता है। १५८

त्रिमुखी रुद्राक्ष दहन (अग्नि) का साक्षात् रूप है, जो भ्रूण-हत्या जैसे पाप का नाश करता है। चतुर्मुखी रुद्राक्ष स्वयं ब्रह्मा ही है, जो ब्रह्म-हत्या के पाप को दूर करता है। १५९

पंचमुखी रुद्राक्ष स्वयं रुद्र-स्वरूप है। इसका नाम कालाग्नि है। षण्मुखी रुद्राक्ष कार्तिकेय है। इसे दाहिनी भुजा में धारण करना चाहिए। १६0

इसके (षण्मुखी रुद्राक्ष के) धारण से ब्रह्म-हत्यादि पापों से मुक्ति मिलती है, इसमें कोई संदेह नहीं है। सप्तमुखी रुद्राक्ष महासेन (विशाल सेना के अधिपति) है तथा अनन्त नामधारी है। यह अनेक नामों से शोभित है। १६१

इसके (सप्तमुखी के) धारण से गुरु-पत्नी-गमन इत्यादि पापों से मुक्ति मिलती है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं। अष्टमुखी रुद्राक्ष भी महासेन (विशाल सेना का नायक) तथा साक्षात् देव विनायक (गणेश) स्वरूप है। १६२

इसके (अष्टमुखी के) धारण से गुरु-पत्नी का स्पर्श यदि पृष्ठोदर से हो जाए (गुरु पत्नी ही वशीभूत हो जाए) तो उसके द्वारा उत्पन्न प्रेम की स्थिति में पीठ से स्पर्श

होता है। स्वयं क्रियाशीलता की दशा में स्त्री-गमन-काल में उदर से स्पर्श होता है और अन्य स्थितियों में हाथ से स्पर्श होता है— यह त्रिविध पाप है। तो उसके संपूर्ण पापों को, ऐसे अनेक पापों को तथा अति पापों को यह रुद्राक्ष दूर करता है। १६३

यह (अष्टमुखी) संपूर्ण विघ्नों का नाश करता है। इसका धारक मुक्त होकर परागति को प्राप्त करता है। ये समस्त गुण अष्टमुखी रुद्राक्ष के धारण के हैं। १६४

नौमुखी रुद्राक्ष भैरव-स्वरूप है। इसे बायीं भुजा में धारण करना चाहिए। यह कपिल (अग्नि-स्वरूप) तथा मुक्तिदायक है अथवा 'कपिलः मुक्तिदः' (महर्षि कपिल के शाप से सगर के साठ हज़ार पुत्र भस्म हो गए, फिर अनेक प्रार्थना के बाद वे ही कपिल कपिलधारा, अर्थात्, गंगा के रूप में उन्हें मुक्ति प्रदान करते हैं)। नववक्त्र का धारणकर्ता मेरा तुल्यबल (शंकर के समान बलशाली) हो जाता है। १६५

लक्ष-कोटिसहस्र (अनंत) ब्रह्म-हत्या के पाप को जो अर्जित करता है, उसको शीघ्र ही नौमुखी-धारण से भस्मीभूत किया जा सकता है। १६६

दशमुखी रुद्राक्ष महासेन और साक्षात् जनार्दन-देवस्वरूप है। इसके धारण से (विपरीत) ग्रह, पिशाच, वैताल, ब्रह्मराक्षस, पन्नग (सर्प) इत्यादि नष्ट हो जाते हैं। दशमुखी रुद्राक्ष के धारण का यह फल है। एकादशमुखी रुद्राक्ष एकादश रुद्र माने जाते हैं। १६७-६८

(हे देवि!) शिखा के मध्य नित्य (सर्वदा) धारण करने से उसके पुण्यफल को सुनो। एक हजार अश्वमेध यज्ञ एवं एक सौ वाजपेय यज्ञ करने का और एकलाख स्वर्णशृंग के सम्यक् दान करनेवाले को जो फल प्राप्त होता है, वह फल एकादशमुखी रुद्राक्ष-धारण करने से होता है। १६९-७०

द्वादशमुखी रुद्राक्ष कंठ-प्रदेश में धारण करने से आदित्य (सूर्य) नित्य तुष्ट होते हैं। वे सूर्य द्वादशार्क व्यवस्थित हैं। इसलिए यह रुद्राक्ष भी द्वादश सूर्यों से विशिष्ट भाव से अवस्थित (निवसित) हो जाता है। १७१

त्रयोदशमुखी रुद्राक्ष 'काम' कहा गया है। यह सभी कामनाओं और फलों को प्रदान करनेवाला है। चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष भगवान् श्रीकंठरूप है। यह 'वंशोद्धारक' और 'पर' भी है (वंशोद्धारक के रूप में वह रुद्राक्ष-धारणकर्त्ता के वंश में उत्पन्न सभी मृत व्यक्तियों की आत्मा का उद्धार करता है। यह अतीत का उद्धारक-तत्त्व है। साथ ही, यह रुद्राक्ष धारणकर्त्ता के निधन पर लोक की सुगम और सुखद यात्रा करानेवाला सिद्ध होता है। अतः यह भविष्य-दर्शन है। इस प्रकार यह रुद्राक्ष अतीत और भविष्य दोनों को उद्धृत और संस्कृत करता है)। १७२

पद्मपुराण के आधार पर इसका धारण-विधान—

(रुद्राक्ष के) स्नानकाल में पंचामृत और पंचगव्य का प्रयोग करना चाहिए। रुद्राक्ष की प्रतिष्ठा में पंचाक्षर मंत्र का प्रयोग करना चाहिए। ॐ त्र्यंबकादि मंत्र जैसा वह है, उस रूप में उसका प्रयोग करना चाहिए। १७३

मंत्र हैं—

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥
ॐ हौं अघोरे घोरे हुं घोरतरे हुं ॐ ह्रीं श्रीं सर्वतः
सर्वाङ्गे नमस्ते रुद्ररूपे हुम् ॥ इति मन्त्रः ॥

इस मंत्र से (इन मंत्रों से) रुद्राक्ष की प्रतिष्ठा विधिवत् करनी चाहिए, तभी हे द्विजोत्तम (हे श्रेष्ठ ब्राह्मण) अधिक फल की प्राप्ति होती है। इसके बाद अपने अभीष्ट मंत्र से अभिमंत्रण-पूर्वक भक्ति-संयुक्त होकर रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। अथवा प्रत्येक रुद्राक्ष का जो स्व-स्व मंत्र है, उससे इसको धारण करना चाहिए। १७४
मंत्र क्रम से ये हैं—

ॐ ॐ दृशं नमः (एकमुखी रुद्राक्ष के लिए मंत्र)।
ॐ ॐ नमः (द्विमुखी रुद्राक्ष के लिए मंत्र)।
ॐ ॐ नमः (तीनमुखी रुद्राक्ष के लिए मंत्र)।
ॐ ह्रीं नमः (चारमुखी रुद्राक्ष के लिए मंत्र)।
ॐ हूं नमः (पाँचमुखी रुद्राक्ष के लिए मंत्र)।
ॐ हूं नमः (षण्मुखी रुद्राक्ष के लिए मंत्र)।
ॐ हुं नमः (सप्तमुखी रुद्राक्ष के लिए मंत्र)।
ॐ सः हूं नमः (अष्टमुखी रुद्राक्ष के लिए मंत्र)।
ॐ हं नमः (नौमुखी रुद्राक्ष के लिए मंत्र)।
ॐ ह्रीं नमः (दशमुखी रुद्राक्ष के लिए मंत्र)।
ॐ श्रीं नमः (ग्यारहमुखी रुद्राक्ष के लिए मंत्र)।
ॐ हूं ह्रीं नमः (बारहमुखी रुद्राक्ष के लिए मंत्र)।
ॐ क्षां चौं नमः (तेरहमुखी रुद्राक्ष के लिए मंत्र)।
ॐ नमो नमः (चौदहमुखी रुद्राक्ष के लिए मंत्र)।
इति रुद्राक्षधारणम् ।

महाकाल-संहिता
गुह्यकाली खण्ड
गुह्यकाली-पूजार्थे रुद्राक्षमालोपरिकल्पसिद्धन्यास-माहात्म्य-वर्णनम्

न्यास रुद्राक्षमालायां विलिख्य परमादरात् ।
कण्ठे संस्थाप्य सा देवी ध्यायते निश्चितात्मना ॥१६२६॥
धारयिष्यन्ति येऽन्येऽपि गुह्यां तेषां वरप्रदा।
नातः परतः कोऽपि न्यासो (भुवि ?) शुचिप्रदः ॥१६२७॥

जगत्त्रयेऽपि न्यासोऽन्यो नास्ति सोऽत्र सुरेश्वरि ।
यो गच्छेदस्य समतां फलाधिक्य-प्रदानतः ॥१६२८॥
शुभेऽहनि गुरोर्वक्त्रादुपदेशं प्रगृह्य हि ।
यत्नात् सन्तोष्य च गुरुं हेमरत्नाम्बरादिभिः ॥१६२९॥
चतुर्दश्यामथवाष्टम्यामारभेतास्य धारणम् ।
विनोपदेशं यो धत्ते तस्य गुह्या पराङ्मुखी ॥१६३०॥
विधानाद् ध्रियमाणस्तु सर्वसिद्धिं प्रयच्छति ।
अविधानाद् धृतो देवि तमेवात्ति न संशयः ॥१६३१॥
यदि कुर्तुं न शक्नोति न्यासमेनं दिने-दिने ।
पर्वं लक्ष्यीकृत्य कुर्याच्चतुर्दश्यष्टमीमुखम् ॥१६३२॥
तत्राप्यशक्तः कुर्वीत शारदीयार्हणादिने ।
कर्तुमेतदशक्तोऽपि भूर्जपत्रे विलिख्य हि ॥१६३३॥
भुजे बध्नीत वा यन्त्रपीठवत् परिपूजयेत् ।
यत्रैष लिखितस्तिष्ठेन्न्यासोऽयं परमेश्वरि ॥१६३४॥
न तत्र मारी दुर्भिक्षं रोगशोकौ तथा न च ।
न चापि ग्रहजापीडा काश्चिदप्यापदो न च ॥१६३५॥
मूतप्रेतावेशजन्या नैवोपद्रवराशयः ।
त्रिविधोत्पातशान्तिश्च वह्न्यवग्रहनाशनम् ॥१६३६॥
आधिक्यं मङ्गलानां हि तस्य गेहे प्रजायते ।
नित्यमैश्वर्यवृद्धिः स्यात् पुत्राणामायुषस्तथा ॥१६३७॥
मूपतिर्वश्यतामेति जायन्ते सुखसम्पदः ।
किं किं न साधयत्येष लिखितः स्थापितो गृहे ॥१६३८॥
तस्माद् देवि प्रयत्नेन कर्तव्योऽयं दिने-दिने ।
महानिर्वाणषोढाख्यो न्यासः परमशोभनः ॥१६३९॥
न्यासानामेष सर्वेषां चूडामणिरिति स्मृतः ।
कुर्वन्नमुं सुरेशानि सर्वजूडामणिर्भवेत् ॥१६४०॥
त्रिसत्यपूर्वं ते वच्मि न्यासोऽन्योऽस्य समो नहि ।
इति षोढात्रयं प्रोक्तं विविच्य तव पार्वति ॥१६४१॥
उत्तरोत्तरतः श्रेष्ठं शम्भुना स्वयमीरितम् ।
महानिर्वाणषोढाख्या सर्वशेषे त्वयेरिता ॥१६४२॥
न तत्तुल्ये स्मृते आख्यास्यातो यद्यप्यनुत्तमे ॥१६४३॥
पापतृणारणिरियं सिद्धिरत्नमहाखनिः ।
भोगेच्छाकल्पलतिका दुःखशोकौघकर्तनी ॥१६४४॥
यदीच्छसे (सि?) गुह्यकालीं सम्मुखीकर्तुमञ्जसा ।
तदा निर्वाणषोढां त्वं कुर्वीथा भक्तिभाविता ॥१६४५॥

भाषांतर (महाकाल-संहिता)

गुह्यकाली की पूजा और प्रसन्नता के लिए रुद्राक्षमाला पर कल्पसिद्धन्यास-माहात्म्य-वर्णन

कल्पसिद्धन्यास को रुद्राक्षमाला पर अत्यन्त आदर के साथ लिखकर निश्चितात्मनाभाव से (गुह्यकाली के प्रति निश्चित-निर्धारित भक्तिपूर्वक) इसे अपने कंठ में धारण करना चाहिए; तभी उस देवी (गुह्यकाली) का ध्यान किया जा सकता है। १६२६

जो अन्य व्यक्ति भी (इस विस्तृत विधान के बिना भी) इसे (रुद्राक्ष-माला को) धारण करेंगे, उन पर भी गुह्या वर-प्रदान करनेवाली सिद्ध हो जाएँगी। पृथ्वी पर इससे बढ़कर शुचिप्रद (पवित्रता-प्रदायक) न्यास नहीं है। १६२७

हे सुरेश्वरि ! तीनों लोकों में ऐसा कोई भी न्यास नहीं है, जो अधिकाधिक फल प्रदानकर्त्ता के रूप में इसकी समता कर सके। १६२८

किसी शुभ तिथि को गुरुमुख से उपदिष्ट होकर (आज्ञा प्राप्तकर) जो यत्नपूर्वक गुरु को स्वर्ण, रत्न, वस्त्रादि के द्वारा सन्तुष्ट करता है तथा चतुर्दशी अथवा अष्टमी तिथि से रुद्राक्ष-धारण आरंभ करता है (उसके प्रति गुह्यकाली सिद्धिदायिका हो जाती है), जो बिना उपदेश (दीक्षा अथवा अभिषेक) के धारण करता है, उससे गुह्या (गुह्यकाली) विमुख हो जाती हैं। १६२९-३०

जो विधानपूर्वक रुद्राक्षमाला को धारण करता है, वह सभी प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त करता है। जो अविधान (विधानहीनता) के साथ इसे धारण करता है, उसे यही (रुद्राक्षमाला ही) खा जाती है, इसमें कहीं कोई संशय नहीं। १६३१

यदि प्रतिदिन न्यास करने की शक्ति नहीं हो तो किसी पर्व-विशेष का लक्ष्यकर चतुर्दशी अथवा अष्टमी के दिन इस न्यास को करना चाहिए। १६३२

इसमें भी अशक्तता का अनुभव हो तो शारदीय नवरात्र में यह न्यास करना चाहिए। ऐसा करने में भी अशक्त होने पर भोज-पत्र पर इसे लिखकर भुजा में बाँधना चाहिए अथवा यन्त्रपीठ की तरह इसकी पूजा करनी चाहिए। हे परमेश्वरि ! जहाँ यह न्यास लिखित होकर स्थित होता है, वहाँ संक्रामक रोग और दुर्भिक्ष, रोग और शोक, ग्रह-जनित पीड़ा या ऐसी कोई भी आपत्ति किसी को प्राप्त नहीं होती (रुद्राक्ष-धारण करने से)। १६३३-३५

भूतप्रेत अथवा आवेश-जनित किसी भी प्रकार का उपद्रव नहीं होता। त्रिविध-उत्पात का शमन (शांति) होता है तथा अग्नि एवं विरुद्ध ग्रहों का नाश होता है। १६३६

उनके (रुद्राक्षमालाधारी व्यक्ति के) घर में मंगल की अधिकता उत्पन्न होती है, नित्य ऐश्वर्य की वृद्धि होती है। पुत्रों की आयु में भी वृद्धि होती है। १६३७

बड़े-बड़े भूपति ऐसे रुद्राक्ष धारण-कर्त्ता की वश्यता को स्वीकार कर लेते हैं। सुख और संपत्ति का विवर्धन होने लगता है। घर में लिखित और स्थापित यह न्यास क्या-क्या नहीं सिद्ध और साधित करता है। १६३८

इसलिए हे देवि ! प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक यह कर्तव्य करना चाहिए। महानिर्वाण षोढ़ा नामक यह न्यास अत्यन्त शोभन है अथवा यह षोढ़ान्यास जो कल्प-सिद्ध न्यास कहा जाता है, महानिर्वाण को देनेवाला और प्रत्येक प्रकार का शोभनकार्य संपन्न करनेवाला न्यास है। १६३९

अनेक न्यासों के मध्य यह न्यास चूड़ामणि (शिखरस्थ, सर्वोच्च) तथा शाश्वत (अशेष) है। हे सुरेशानि, ऐसा करनेवाला स्वयं सर्वचूडामणि (सबों में श्रेष्ठ) हो जाता है। १६४०

(हि देवि !) तुमसे मैं त्रिसत्यपूर्वक (तीन-तीन बार बल देते हुए) कहता हूँ कि इसके समान कोई दूसरा न्यास नहीं है। यह षोढ़ात्रय (ऋष्यादिन्यास, करादिन्यास और हृदयादिन्यास) बहुत विचार करके हे पार्वति! तुमसे कहा गया है। १६४१

स्वयं शम्भु के द्वारा उक्त उत्तरोत्तर श्रेष्ठत्व को प्राप्त करता हुआ यह न्यास महानिर्वाण षोढ़ा-न्यास के नाम से सर्वशेष में तुम्हारे द्वारा कहा गया है। १६४२

इसके सदृश कोई भी दूसरा नाम नहीं है, यद्यपि यह मोक्षदायक नहीं होने के कारण अनुत्तम है (ऐहिक उपलब्धियों के लिए यह सर्वश्रेष्ठ न्यास है।) अथवा यह अनुत्तम न्यास है। इसके समान कोई भी दूसरा न्यास उत्तम नहीं है, इसलिए यह अनुत्तम है। यह न्यास पापरूपी तृणों के लिए अग्नि-सदृश है। रत्नों की महाखान है, जो सिद्धि प्रदान करती है अथवा सिद्धिदायक रत्नों की बहुत बड़ी खान है। यह भोगेच्छारूपी कल्पलता है। दुःख और शोक को डुबो देनेवाला जल का प्लावन है। १६४३-४४

यदि तुम! बहुत शीघ्र गुह्यकाली को सम्मुख करना चाहते हो, तब भक्तिभाव से तुम्हें निर्वाण-षोढ़ा-विधान करना चाहिए। १६४५

इति महाकालसंहितायां षोढा न्यासोद्धारो नाम नवमः पटलः

निर्णयसिन्धुः

रुद्राक्ष-माहात्म्य-वर्णनम्

(विना भस्म-त्रिपुण्ड्रादौ पूजन-विचारः)

तिथितत्त्वे लैङ्गे—विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विना रुद्राक्षमालया। पूजीतोऽपि महादेवो न स्यात्तस्य फलप्रदः ॥ तस्मान्मृदापि कर्तव्यं ललाटे वै त्रिपुण्ड्रकम् ॥

(रुद्राक्षधारणे विशेष-फलकथनम्)

रुद्राक्षधारणे विशेषः शिवरहस्ये—

एकवक्त्रः शिवः साक्षाद् ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
अवध्यत्वं प्रतिस्त्रोतो वह्नि-स्तम्भं करोति च ॥
द्विवक्त्रो हरगौरी स्याद् गोवधाद्यघनाशकृत् ।
त्रिवक्त्रो ह्यग्निजन्माथ पापराशिं प्रणाशयेत् ॥

चर्तुवक्त्रः स्वयं ब्रह्मा नरहत्यां व्यपोहति ।
पञ्चवक्त्रस्तु कालाग्निरगम्याभक्ष्यापापनुत् ॥
षड्वक्त्रस्तु गुहो ज्ञेयो भ्रूणहत्यादि नाशयेत् ।
सप्तवक्त्रस्त्वनन्तः स्यात्स्वर्णस्तेयादिपापहृत् ॥
विनायकोऽष्टवक्त्रः स्यात्सर्वानृतविनाशकृत् ।
भैरवोनववक्त्रस्तु शिवसायुज्य-कारकः ॥
दशवक्त्रः स्मृतो विष्णुर्भूतप्रेतभयापहः ।
एकादशमुखो रुद्रो नानायज्ञफलप्रदः ॥

द्वादशास्यस्तथादित्यः सर्वरोगनिबर्हणः। त्रयोदशमुखः कामः सर्वकामफलप्रदः। चतुर्दशास्यः श्रीकण्ठो वंशोद्धारकरः परः ॥ इति ॥

तथा—

विना मन्त्रेण यो धत्ते रुद्राक्षं भुवि मानवः ।
स याति नरकान् घोरान् यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥
पञ्चामृतं पञ्चगव्यं स्नान-काले प्रयोजयेत् ।
रुद्राक्षस्य प्रतिष्ठायां मन्त्रं पञ्चाक्षरं तथा ॥
त्र्यम्बकादिकमन्त्रं च तथा तत्र प्रयोजयेत् ॥

यद्वा—ॐ अघोर ह्रैं अघोरतर ॐ ह्रौं ह्रां नमस्ते रुद्ररूपाय ह्रैं स्वाहा अनेनाऽभिमन्त्र्य धारयेत्।

(कामनाभेदेन रुद्राक्षधारणादौ विचारः)

तथा—

अष्टोत्तर शतं कार्या चतुष्पञ्चाशदेव वा ।
सप्तविंशतिमाना वा ततो हीनाधमा स्मृता ॥

प्रजापतिः—

मोक्षार्थी पञ्चविंशत्या धनार्थी त्रिंशता जपेत् ।
पुष्ट्यर्थी पञ्चविंशत्या पञ्चदश्याभिचारके ॥
सप्तविंशतिरुद्राक्षमालया देहसंस्थया ।
यत्करोति नरः पुण्यं सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥
यो ददाति द्विजेभ्यश्च रुद्राक्षं भुवि सम्मुखम् ।
तस्य प्रीतो भवेद्रुद्रः स्वपदं च प्रयच्छति ॥ इति ॥

(शरीर संख्याभेदेन रुद्राक्षधारण-कथनम्)

पदार्थादर्शे बोपदेवः—रुद्राक्षान् कण्ठेदेशे दशनपरिमितान्मस्तके विंशती द्वे षट् षट् कर्णप्रदे करयुगलकृते द्वादश द्वादशैव। बाहुवोरिन्दोः कलाभिर्नयनयुगकृते एकमेकं शिखायां वक्षस्यष्टाधि यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकण्ठः ।

भाषांतर (निर्णयसिन्धुः)

रुद्राक्ष-माहात्म्य-वर्णन

(विना भस्म-त्रिपुण्ड्रादौ पूजन-विचारः)

तिथि-तत्त्व में लिंगपुराण के वचन के अनुसार बिना भस्म के त्रिपुण्ड्र और बिना रुद्राक्ष की माला से महादेव शंकर की पूजा फलप्रद नहीं होती (अभाव की स्थिति में मिट्टी से भी ललाट पर त्रिपुण्ड्र कर लेना चाहिए।)

रुद्राक्ष-धारण से विशेष-फल कथन—

एकमुखी रुद्राक्ष साक्षात् शिवस्वरूप है। यह ब्रह्म-हत्या के पाप का नाश करता है। यह प्रत्येक धारक को अवध्यता प्रदान करता है और प्रत्येक स्रोत पर अग्नि का स्तंभन करता है, रुद्राक्ष अवध्य बनाता है, वध-रहित करता है और अग्नि की ज्वालाओं को चतुर्दिक् फैलने की स्थिति में स्तंभित करता है।

द्विमुखी रुद्राक्ष हर-गौरी-स्वरूप (अर्धनारीश्वर) है। यह गोवध आदि अघ (पाप) का नाश करनेवाला है। त्रिमुखी रुद्राक्ष अग्निजन्मा (अग्नि-संभूत) है।

यह पाप-समुच्चय का नाश करता है।

चतुर्मुखी रुद्राक्ष तो स्वयं ब्रह्मा ही है। यह नर-हत्या के पाप को दूर करता है। पंचमुखी रुद्राक्ष कालाग्नि-स्वरूप है। यह अगम्य-गमन (अमैथुनीय स्त्री के साथ शय्या-शयन) तथा अभक्ष्य-भक्षण (मनुष्य के द्वारा नहीं खाने जानेवाली वस्तुओं के खाने पर) के कारण जो पाप लगता है, उसका नाश करता है। षण्मुखी रुद्राक्ष 'गुह' संज्ञक है। वह भ्रूण-हत्या आदि का नाश करता है। सप्तमुखी रुद्राक्ष 'अनन्त' संज्ञक है। वह सोने की चोरी आदि से उत्पन्न पाप आदि का हरण करता है।

अष्टमुखी रुद्राक्ष 'विनायक' (गणेश) संज्ञक है। वह अनृत-भाषण से उत्पन्न (झूठ बोलने से उत्पन्न) पापों का नाश करता है।

नवमुखी रुद्राक्ष 'भैरव' संज्ञक है। वह शिव-सायुज्य को प्रदान करनेवाला है।

दशमुखी रुद्राक्ष 'विष्णु' संज्ञक है। वह भूतप्रेतादि-भय को मिटाता है।

एकादशमुखी रुद्राक्ष रुद्र ही है (रुद्रों की संख्या एकादश है)। यह अनेक प्रकार के यज्ञों का फलदायकः है।

द्वादशमुखी रुद्राक्ष आदित्य (सूर्य) है (सूर्यों की संख्या बारह है)। यह सभी प्रकार के रोगों को हटानेवाला है।

त्रयोदशमुखी रुद्राक्ष 'काम' संज्ञक है। यह सर्वकामफलप्रद (सभी इच्छाओं के फलों को देनेवाला) है। चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष 'श्रीकण्ठ' संज्ञक है। यह वंश का उद्धार करनेवाला है।

रुद्राक्ष-धारण तथा उसकी प्रतिष्ठा—

बिना मंत्र के जो मनुष्य इस पृथ्वी पर रुद्राक्ष-धारण करता है, वह जब तक चौदह इन्द्र हैं, तब तक घोर नरक को प्राप्त करता है।

(रुद्राक्ष के) स्नान-काल में पंचामृत तथा पंचगव्य का प्रयोग करना चाहिए। रुद्राक्ष की प्रतिष्ठा में पंचाक्षर-मंत्र (ॐ नमः शिवाय) तथा त्र्यंबकादि मंत्र (ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥—ऋग्वेद, ६.५९.१२)।

ॐ जूं सः, ॐ हौं जूं सः, ॐ वं जूं सः इत्यादि का प्रयोग (जप) करना चाहिए अथवा अघोर-मंत्र—(ॐ अघोर ॐ अघोरतर ॐ ह्रौं ह्रां नमस्ते रुद्ररूपाय ह्रैं स्वाहा) से अभिमंत्रण कर धारण करना चाहिए।

फिर एक सौ आठ, चौवन अथवा सत्ताईस दाने की माला बनानी चाहिए। इससे कम दाने की माला हीन अथवा अधम कही गई है।

प्रजापति ने कहा,—मोक्ष की इच्छावाले पचीस दाने की माला, धन की इच्छावाले तीस दाने की माला, पुष्टि की इच्छावाले पचीस दाने की माला तथा अभिचार-कार्य के लिए पन्द्रह दाने की माला बनानी चाहिए।

सत्ताईस दाने की रुद्राक्षमाला शरीर में धारणकर जो मनुष्य जो कर्म करता है, उसको करोड़ों गुना फल मिलता है।

जो मनुष्य इस पृथ्वी पर परमेश्वर के सम्मुख ब्राह्मणों के लिए रुद्राक्ष देता है, उससे रुद्र प्रसन्न होते हैं और अपने पद को देते हैं।

पदार्थादर्श में बोपदेव ने कहा है, जो कण्ठदेश में बत्तीस, मस्तक पर चालीस, बायें और दाहिने कान में छह-छह, दोनों हाथों में क्रमशः बारह-बारह, दोनों बाहुओं में सोलह-सोलह, दोनों आँखों में क्रम से चार-चार, शिखा में एक और वक्षःस्थल पर एक सौ आठ रुद्राक्षों को धारण करता है, वह स्वयं नीलकंठ हो जाता है।

बृहज्जाबालोपनिषद्

त्र्यम्बकंयजामहे षडक्षरेण वा मन्त्रेण धारयेत् ।
रुद्राक्षान्कण्ठदेशे दशनपरिमितान् ॥
मस्तके विँशति द्वे षद् षद् कर्णप्रदेशे ।
करयुगलकृते द्वादश द्वादशैव ॥
बाहृवोरिन्दोः कलाभिर्नयनयुगकृते ।
हृयेकमेकं शिखायां वक्षस्यष्टाधिकं ॥
यः कलयति सततं स स्वयन्नीलकण्ठः ॥ १ ॥
तत्फलम् ।
रुद्राक्षधारणं पुण्यं केन वा सदृशं भवेत् ।
महाव्रतमिदम्प्राहुर्मुनयस्तत्त्व-दर्शिनः ॥२॥
सहस्रं धारयेद्यस्तु रुद्राक्षाणान्धृतव्रतः ।
तं नमन्ति सुराः सर्वे यथारुद्रास्तथैव सः ॥३॥

यो धारयति रुद्राक्षान्रुद्रवत्सोऽपि पूज्यते ।
मुक्ताप्रवालस्फटिक-रौप्यवैडूर्यकाञ्चनैः ॥४॥
समेतान्धारयेद्यस्तु रुद्राक्षान्स शिवो भवेत् ।
केवलान्वाऽपिरुद्राक्षान्यथालाभं विभर्त्ति यः ॥५॥
तं न स्पृशन्ति पापानि तमांसीव विभावसुम् ॥
इति रुद्राक्षधारणम् ।

भाषांतर (बृहज्जाबालोपनिषद्)

'त्र्यम्बकं यजामहे'—मंत्र अथवा षडक्षर-मंत्र (प्रणव+पंचाक्षर = षडक्षर = ॐ नमः शिवाय) से रुद्राक्ष-धारण करना चाहिए।

कंठ-देश में बत्तीस, मस्तक में चालीस, कानों में छह-छह, दोनों कलाइयों में बारह-बारह, बाहुओं में सोलह-सोलह, नयनों पर एक-एक, शिखा में एक, हृदय पर आठ रुद्राक्षों को धारण कर जो शोभित होता है, वह स्वयं नीलकंठ बन जाता है।१ इसका फल इस प्रकार है,—

रुद्राक्ष-धारण किसके सदृश पुण्य है? तत्त्वदर्शी मुनियों ने इसे महाव्रत कहा है।२

एक हजार रुद्राक्षों को धारण करनेवाले व्रती व्यक्ति को सभी देवगण नमस्कार करते हैं, जैसे रुद्र हैं, वैसे ही वह हो जाता है। ३

जो रुद्राक्षों को धारण करता है, वह रुद्रवत् होकर पूज्य वन जाता है। मुक्ता, प्रवाल, स्फटिक, रौप्य (चाँदी), वैडूर्य, स्वर्ण—इन सबों के साथ जो रुद्राक्ष को धारण करता है, वह शिव हो जाता है। जो केवल रुद्राक्ष को धारण-मात्र कर लेता है, वह भी यथालाभ को प्राप्त करता हे। उसे पाप स्पर्श नहीं करते । ४-५

शिवस्वरोदय (उत्तरार्ध)

(शिव-पार्वती-संवाद)

धात्रीफल-प्रमाणं यच्छ्रेष्ठमेतदुदाहृतम् ।
वदरीफलमात्रं तु मध्यमं प्रोच्यते बुधैः। ॥
अधमं चणमात्रं स्यात् प्रक्रियैषा मयोच्यते ।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राश्चेति शिवाज्ञया ॥
वृक्षा जाताः पृथिव्यांतु तज्जातीयाः शुभाक्षकाः ।
श्वेतास्तु ब्राह्मणा ज्ञेयाः क्षत्रिया रक्तवर्णकाः ॥
पीता वैश्यास्तु कृष्णाः शूद्राः उदाहृताः ।
ब्रह्माणी विभृयाच्छ्वेतान् रक्तान् राजा तु धारयेत् ।
पीतान् वैश्यस्तु विभृयात् कृष्णाञ्छूद्रस्तु धारयेत् ॥

समाः स्निग्धा दृढाः स्थूलाः कण्टकैः संयुता शुभाः ।
कृमिदष्टं छिन्नभिन्नं कण्टकैर्हीनमेव च ॥
व्रणयुक्तमयुक्तं च षड् रुद्राक्षाणि वर्जयेत् ।
स्वयमेव कृतद्वारं रुद्राक्षं स्यादिहोत्तमम् ।
यत्तु पौरुष-यत्नेन कृतं तन्मध्यमं भवेत् ।
समान् स्निग्धान् दृढान् स्थूलान् क्षोमसूत्रेण धारयेत्
सर्वगात्रेण सौम्येन सामान्याति विचक्षणः ।
निकषे हेमरेखाभा यस्य रेखा प्रदृश्यते ॥
तदक्षमुत्तमं विद्यात्तद्धार्यां शिव-पूजकैः ।
शिखायामेक-रुद्राक्षं त्रिशतं शिरसा वहेत् ॥
षट्त्रिंशतं गले दध्याद्बाहुवोः षोडश षोडश ।
मणिबन्धे द्वादशैव स्कन्धे पञ्चशतं वहेत् ॥
अष्टोत्तरशतैर्माल्यमुपवीतं प्रकल्पयेत् ।
द्विसरं त्रिसरं वाऽपि सराणां पञ्चक तथा ॥
राणा सप्तकं वाऽपि विभृयात् कण्ठदेशतः ।
मुकुटे कुण्डले चैव कर्णिकाहार केऽपि वा ॥
केयूरकटके सूत्रं कुक्षिबन्धे विशेषतः ।
सुप्ते पीते सदाकालं रुद्राक्षं धारयेन्नराः ॥
त्रिशतं त्वधमं पञ्चशतं मध्यममुच्यते ।
सहस्रमुत्तमं प्रोक्तमेव भेदेन धारयेत् ॥
एकवक्त्रं तु रुद्राक्षं परतत्त्वस्वरूपकम् ।
तद्धारणात् परतत्त्वे लीयते विजितेन्द्रियः ॥
द्विवक्त्रं तु मुनिश्रेष्ठ चार्धनारीश्वरात्मकम् ।
धारणादर्धनारीशः प्रीयते तस्य नित्यशः ॥
त्रिमुखं चैव रुद्राक्षम् अग्नित्रय-स्वरूपकम् ।
तद्धारणाच्च हुतभुक्तस्य तुष्यति नित्यदा ॥
चतुर्मुखं तु रुद्राक्षं चतुर्वक्त्र-स्वरूपकम् ।
तद्धारणाच्चतुर्वक्त्रः प्रीयते तस्य नित्यदा ॥
पञ्चवक्त्रं तु रुद्राक्षं पञ्चब्रह्म-स्वरूपकम् ।
पंचवक्त्रं स्वयं ब्रह्मा पुंहत्यां च व्यपोहति ॥
षड्वक्त्रमपि रुद्राक्षं कार्तिकियाधिदैवतम् ।
तद्धारणान्महाश्रीः स्यान्महदारोग्यमुत्तमम् ॥
सप्तवक्त्रं तु रुद्राक्षं सप्तमात्राधिदैवतम् ।
मद्धारणान्महाश्रीः स्यान्महदारोग्यमुत्तमम् ॥

अष्टवक्त्रं तु रुद्राक्षमष्टमात्राधिदैवतम् ।
तद्धारणादिमे प्रीता भवेयुः सत्यावादिनः ॥
नववक्त्रं तु रुद्राक्षं नवशक्तित्यधिदैवतम् ।
तस्य धारणमात्रेण प्रीयन्ते नवशक्तयः ॥
दशवक्त्रं तु रुद्राक्षं यमदैकमुदाहृतम् ।
दर्शात् प्रशान्तिजनकं धारणान्नात्र संशयः ॥
एकादशमुखं त्वक्षं रुद्रैकादशदैवतम् ।
तदिदं दैवतं प्राहुः सदासौभाग्यवर्धनम् ॥
रुद्राक्षं द्वादशमुखं महाविष्णुस्वरूपकम् ।
द्वादशादित्यरूपं च विभर्त्येव हि तत्परः ॥
त्रयोदशमुखं चाक्षं कामदं सिद्धिदं शुभम् ।
तस्य धारणमात्रेण कामदेवः प्रसीदति ॥
चतुर्दशमुखं चाक्षं रुद्रनेत्र-समुद्भवम् ।
सर्वव्याधिहरं चैव सर्वदाऽऽरोग्यमाप्नुयात् ॥
ग्रहणे विषुवे चैवमयने संक्रमेऽपि च ।
रुद्राक्षधारणात् सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
तद्रुद्राक्षे शिरसि धार्यमाणे कोटिगोप्रदानफलं भवति एतेषां
स्थानानां कर्णयोः फलं वक्तुं न शक्यमिति होवाच ।

रुद्राक्षप्रभेदकथनपूर्वकं तन्माहात्म्यमाह

धात्रीफलोपमश्रेष्ठो मध्यो बदरसन्निभः ।
अधमश्चणकामः स्यात् ततो हीनो विपत्तिकृत् ॥
श्वेतरक्तसुवर्णाभकृष्णवर्णा द्विजादितः ।
एतेषु ब्राह्मणः श्रेष्ठो जपमालाकृते भृशम् ॥
अलाभे तु द्विजातीनामपि वा स्वस्वजातयः ।
कलौ तु दुर्लभा विद्या यथा विप्रा स्वधर्मगाः ॥
अतिस्थूलोऽति सूक्ष्मश्च स्फुटितो भङ्गुरो लघुः ।
भिन्न पुराधृतो जीर्णो रुद्राक्षो न शुभप्रदः ॥

तथा—

एकवक्त्रैर्द्विवक्त्रैश्च चतुर्वक्त्रैश्च पञ्चभिः ।
षड्वक्त्रैर्वाऽथ कर्तव्या मिथो मिश्रांस्तु वर्जयेत् ॥
एकवक्त्रं शिवस्तस्य माला तु जपतो हरेत् ।
ब्रह्महत्यादिपापानि तथा राज्यादिकेष्टदा ॥
उमाशङ्करनामा यो द्विमुखोऽयं व्यपोहति ।
गोहत्यादिकपापानि गार्हस्थ्याश्रमसौख्यदः ॥

त्रिमुखस्त्वग्निरूपः स्यात् स्त्रीहत्यादिकपापहा ।
धर्मार्थकामाः सिध्यन्ति धारणात् तज्जपादपि ॥
पञ्चवक्त्रः शिवः साक्षात्सर्वपापहरः स्मृतः ।
शैवगाणेशशाक्तानां द्रुतं सिद्धिस्तु तज्जपात् ॥
कात्तिकेयस्तु षड्वक्त्रः स्खलितव्रतपापहा ।
विधिना दक्षिणे बाहौ धारणात् समरे जयः ॥
सप्तवक्त्रो महानागोऽनन्तो नामाथ तज्जपात् ।
अनन्ता सिद्धयः सर्पविषभयश्च न जायते ॥
अष्टवक्त्रो गणेशः स्यात् सर्वविघ्ननिवारकः ।
नश्यन्ति तज्जपात् सर्वेकामक्रोधादिशत्रवः ॥
नववक्त्रो भैरवः स्याद्वाममार्गस्थदेवताः ।
जपादेव प्रसीदन्ति वामबाहौ स्थितौघहा ॥
जपाघ्नो दशमुखो जपान्नश्यन्ति धारणात् ।
पिशाचग्रहवेतालब्रह्मराक्षसपन्नगाः ॥
एकादशदशमुखः साक्षाद्रुद्र एवास्य धारणात् ।
जपाच्च हयमेधादियज्ञानां फलभाग्भवेत् ॥
द्वादशास्यो भास्करः स्यात् तज्जपाद्धारणात् तथा ।
तेजस्वी च प्रतापी च गोमेधफलभाग्भवेत् ॥
त्रयोदशमुखः साक्षाद्विश्वेदेवात्मकः स्मृतः ।
श्राद्धकाले धृतो दद्यात् पितृणामक्षयां गतिम् ॥
चतुर्दशमुखे जप्तं तदाऽनन्ताय जायते ।
पूज्यते देवमनुजैरक्षयां लभते गतिम् ॥

तथा—

देवान् पुष्णन्ति ये देवा पशवस्ते तु वैदिकाः ।
तान् पातयन्ति ये कौले तेषां शास्ता स्वयं यमः ॥
तेषां संरक्षणार्थाय नान्यो रुद्राक्षतो भुवि ।
रुद्राक्षा सर्वदेवानां मन्त्रसिद्धिविधायकाः ॥
रुद्राक्षं कण्ठमाश्रित्य शुनको म्रियते यदि ।
सोऽपि रुद्रत्वमाप्नोति किं पुनर्मानुषादयः ॥
उच्छिष्टो वा विकर्मस्तो युक्तो वा सर्वपातकैः ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो नरो रुद्राक्षधारणात् ॥
रुद्राक्षमालिकां कण्ठे धारयेद्भक्ति-वर्जितः ।
पापकर्माऽपि यो नित्यं रुद्रलोके महीयते ॥
अरुद्राक्षधरो भूत्वा यत्किंचित् कर्मवैदिकम् ।
कुर्याद्विप्रस्तु यो मौढ्यान्नासावाप्नोति तत्फलम् ॥

रुद्राक्षधारणप्रकार

शिरोमाला तु षड्विंशद्द्वात्रिंशत्कण्ठमालिका ।
कुपूरे षोडश प्रोक्ता द्वात्रिंशन्मणिबन्धयोः ॥
अष्टोत्तरशतैर्युक्तमुपवीतं विधीयते ।
तदर्धमुरसो माला शिखायामेकमुच्यते ॥
कर्णयोश्चापि षट्संख्या धारणक्रम ईरितः ।
संख्याहीनं न कर्तव्यमधिकं नैव दूष्यति ॥

तन्त्रान्तरे

रुद्राक्षान् कण्ठदेशे दशनपरिमितान् मस्तके विंशती द्वे
षट् षट् कर्णप्रदेशे करयुगलकृते द्वादश द्वादशैव ।
बाह्वोरिन्दोः कलाभिर्नयनयुगकृते चैकमेकं शिखायाम्
वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकण्ठः ॥
रुद्राक्षान् धारयत्येवं देहान्ते स शिवो भवेत् ।
बहुलं लभते पुण्यं भाग्यवानिह जायते ॥
स्नाने दाने जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने ।
प्रायश्चित्ते तथा श्राद्धे दीक्षाकाले विशेषतः ॥
रुद्राक्षधारी भूत्वा च यत्किंचित् कर्म वैदिकम् ।
यो विप्रः सततं कुर्यात् तत् कर्म सफलं भवेत् ॥
कण्ठे शिरसि हस्ते च कर्णयोरुपवीतके ।
रुद्राक्षधारणादेव रुद्रो भवति मानवः ॥
खादनन्मांसं पिबन्मद्यं संगच्छन्मर्त्यजातिषु ।
सद्यो भवति पूतात्मा रुद्राक्षं मूर्ध्नि धारयन् ॥

देवताभेदेन मालाग्रथनकालभेदः

चतुर्थ्यां प्रोतयेन्मालां गणनाथस्य मन्त्रकैः ।
मध्याह्नेऽर्कस्य सप्तम्यां रवौ वातस्य मन्त्रकैः ॥
द्वादश्यां वैष्णवी माला प्रोतव्या विष्णुमन्त्रतः ।
त्रयोदश्यां तु सन्ध्यायां तन्मन्त्रैः शिवमालिकाम् ॥
अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां नवम्यां भूमिनन्दने ।
शक्तीनामपि कर्त्तव्या मुक्त्वा रात्रौ यथाविधिः ॥
(पंक्तियाँ पुनरुक्त और अर्थ स्पष्ट हैं।)

ग्रंथ-सूची

हिन्दी-संस्कृत

अमरसिंह, अमरकोषः, मणिप्रभाव्याख्योपेतः चौखंभा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1957।

अभिनवगुप्त, तन्त्रलोकः, संपादक रामचंद्र द्विवेदी, नवजीवन रस्तोगी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1987।

अक्षमालिकोपनिषद्।

आप्टे, वामन शिवराम, संस्कृत-हिन्दी-कोश, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1966।

उड्डीशतंत्र, ठाकुर प्रसाद एंड संस, वाराणसी।

कालिकापुराण, प्रथम संस्करण, संस्कृति संस्थान, बरेली, 1973।

गौतम, डॉक्टर चमनलाल, संपादक, बृहद् शिव-स्वरोदय, तृतीय संस्करण, संस्कृति संस्थान, बरेली, 1980।

जोशी, जयशंकर, संपादक, हलायुधकोशः (अभिधानरत्नमाला), द्वितीय संस्करण, हिन्दी समिति, लखनऊ, 1967।

झा, किशोरनाथ, संपादक, महाकाल संहिता (गुह्यकालीखण्ड), गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद, 1979।

झा, पण्डित मुरलीधर, संपादक, पुरश्चर्यार्णव, चौखंभा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 1985।

तर्कवाचस्पति, श्रीतारानाथ, संकलित, वाचस्पत्यम् (बृहत् संस्कृताभिधानम्), चौखंभा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1962।

तपोनिष्ठ, वेदमूर्ति पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य, 108 उपनिषद् (साधना खंड), द्वितीय संस्करण, संस्कृति-संस्थान, बरेली, 1964।

दुर्गासप्तशती (साधन-समर वा देवी माहात्म्य), साधन-समर आश्रम, वरानगर, कलकत्ता, 1961।

द्विवेदी, श्रीव्रजवल्लभ, संपादक, तंत्र-संग्रह, संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1981।

पद्मपुराणम्।

ब्रह्मवैवर्तपुराण, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1981।

बृहज्जाबालोपनिषद्।

भट्ट, श्रीकमलाकर, निर्णयसिन्धुः, संपादक श्रीदौलतराम गौड़, ठाकुर प्रसाद एंड संस, वाराणसी, सं. 2027।

मत्स्यपुराण (कल्याण विशेषांक), गीताप्रेस, गोरखपुर।

मनुस्मृति, हिन्दी पुस्तक एजेंसी, वाराणसी, 1954।

राय, रामकुमार, संपादक-अनुवादक, हिन्दी-मंत्र-महार्णव (देवता-खंड), प्रथम संस्करण, प्राच्य प्रकाशन, वाराणसी, 1985।

रुद्रकविः भावविलासः।

रुद्राक्षजाबालोपनिषद्।

लिंगपुराण, ५९वां अंक।

वायुपुराण।

व्याकरणमहाभाष्ये श्रीमद्भगवत्पतञ्जलि महर्षि प्रणीते, प्रथम संस्करण, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1967।

व्यास, महर्षि, महाभारत, गीताप्रेस, गोरखपुर।

देव, राधाकान्त, शब्दकल्पद्रुमः, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1961।

शर्मा, महामहोपाध्याय पाण्डेय रामावतार, वाङ्मयार्णव, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, सं. 2024।

श्यामसुन्दरदास, मूलसंपादक, हिन्दी शब्दसागर, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1986।

शास्त्री, श्रीपण्डित विद्याधरजी, संपादक, श्रीमद्देवीभागवतम् (महापुराणम्), ठाकुर प्रसाद एंड संस, वाराणसी।

शुक्ल, 'कुलभूषण' पण्डित रमादत्त, हिन्दी तंत्रसार, तृतीय संस्करण, कल्याण मंदिर प्रकाशन, प्रयाग, सं. 2037।

शुक्ल, पंडित देवीदत्त, संपादक, मंत्रकोष, कल्याण-मंदिर प्रकाशन, प्रयाग, 1986।

मंत्रमहोदधिः, श्रीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई, 1983।

श्रीमन्महीधर, मंत्रमहोदधि, मोहिनी व्याख्या सहित शुकदेव चर्तुर्वेदी द्वारा संपादित, प्रथम संस्करण, प्राच्य प्रकाशन, वाराणसी, 1981।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, पंचम संस्करण, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2042।

श्रीमद्भागवत महापुराणम्, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2027।

श्रीमद्देवीभागवत, पण्डित ज्वालाप्रसाद जी मिश्र कृत हिन्दी टीका सहित श्रीवेंकटेश्वर मुद्रणालय, बम्बई।

श्रीशिवमहापुराण, पण्डित ज्वालाप्रसादजी मिश्र कृत हिन्दी टीका सहित श्रीवेंकटेश्वर मुद्रणालय, बम्बई।

श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2030।

English

Avalon, Arthur and Lakshman Shastri, *Tantraraja Tantra*, Motilal Banarsidass, Delhi, 1981.

Krishnamachariar, M., *History of Classical Sanskrit Literature*, Motilal Banarsidass, Delhi, 1989.

Mani, Vettam, *Puranic Encyclopaedia*, 2nd edn., Motilal Banarsidass, Delhi, 1979.

Onions, C.T., ed., *The Shorter Oxford English Dictionary* (William Little), Calcutta, 1961.

Rastogi, Navjivan, *Introduction to the Tantraloka*, Motilal Banarsidass, Delhi, 1987.

Woodroffe, Sir John, *The Garland of Letters*, 8th edn., Ganesh and Company, Madras, 1985.

अनुक्रमणिका

अंतरिक्षपुरम् 166
अंतर्याग 7, 11, 13
अंतेवासी 141
अंत्यज 140
अंत्येष्टि 4
अकालमृत्यु 155
अक्षमालिकाक्षर-जप 7
अक्षकूट 4
अक्षक्रम 21
अक्षबीज 55, 66
अक्षमालिकोपनिषद् 4, 21
अक्षर 8
अक्षरपरब्रह्म 10
अक्षर-मंथन 21
अक्षर-समाम्नाय 5, 7, 11
अक्षरसोमरूप 3
अक्षरित 20
अक्षसूत्र 137
अक्षिप्रतीक 2
अक्षोभकर 14
अक्षौहिणी 5
अखिलवाङ्मय 14
अग्निजन्मा 194
अग्निपूजा 167
अग्निमूर्धा 7
अघोर 135
अजगवम् 166
अणिमासिद्धिप्रद 16
अधम 140
अधिदेवता 174
अधिभूत 9
अध्यात्म 9
अनंतक 165
अनंग 79
अनंगरूप 156
अनंत 79
अनंताक्ष 2
अनंशनीय 8
अनानार 2
अनाहत 6, 37
अनाहतनाद 105
अनुष्ठान-जप 54
अनृत-भाषण 195
अन्नकूट 80, 136
अन्नमयकोश 32
अपरा 76
अपवर्गभाक् 165
अभिचारकार्य 196
अभिचार-प्रयोग 34
अभिचार-हन 15
अभिषिक्त 3
अभिषेक 65
अमनीकरण 39
अमर 1
अमृत 21
अमृतवर्षक 21
अयन 145
अरिष्ट 153
अर्थवागात्मक 6
अर्थशब्दात्मक 6
अर्धनारीश्वर 3, 21, 75, 144, 184, 188, 195
अर्धनारीश्वरता 6-
अवगुंठन मुद्रा 60
अवतार 83
अश्वमेध 82, 136
अश्वमेधयज्ञ 136, 137, 170, 171, 189
अष्टदिक् 21
अष्टमाता 185
अष्टमातृगण 80
अष्टवर्ग 13, 20, 21, 178
अष्टवर्गसंस्कार 4
अष्टवसु 185
अष्टवसुगण 185
असंख्यात 165

अस्पंदरूपता 6

आकर्षण 33, 37, 83
आकर्षणात्मक 14
आकर्षण-प्रयोग 32
आकर 168
आकाशमंडल 7
आज्ञाचक्र 12
आत्मविकास 1
आत्मा 10
आद्याशक्ति 75
आनन्दमयकोश 38
आप्टे, वामनशिवराम 4, 25
आरोह्-अवरोह 12
आशुतोष 3
आहत 37

इच्छाज्ञानक्रियात्मक 76
इजिप्ट 28

ईश्वर 12

उग्र 33
उच्चाटनकर 14
उच्चाटनप्रयोग 33
उच्चार्यमाण 21
उच्चैःश्रवा 12
उज्ज्वल 14
उड्डीशतंत्र 32
उत्तरायण 185
उत्ताण 140
उत्तारण 67
उन्मेष-मात्र 5
उपनिषद् 11
उमा 3
उर्वारुक 106, 107

ऋतभाषण 174
ऋद्धिसिद्धि 83

ओंकार 20, 175
ओंकारेश्वर 20

औपनिषदिक धर्म 182

कंठचक्रविशुद्धि 6
कनककुंडल 28
कपिल 81, 185
कफ 1
कवच 4
कर्कट 79
कल्पलता 193
कल्याणक 15
कल्पान्त 168
कल्मष 166
कश्यप 12
कांचनिया 28
काठमांडु 74
कात्यायन 10, 185
काम 189
काम-कला 59
कामदेव 83, 135
कामधेनु 177, 178
काम्यजप 54
कारोष 79, 168
कार्तिकिय 80, 135, 136, 188
कालाग्नि 77, 135, 167, 182, 184, 185
कालिकापुराण 29
कीकटप्रदेश 14
कुंडलिनी जागरण 12
कुंभकरण 7
कुंभकरण रामायण 7
कुशगुच्छ 175
कूटस्थ 9
कूर्मचक्र 7
कृतद्वार 144
कृतयुग 166
कृत्यादिनाशकर 15
कृष्य 10
कौल 76
कौलमत 76
कौस्तुभमणिहार 28
क्रमदीक्षा 65
क्रमविक्रमानुसार 12
क्रूर 15

क्ष-पर्यंत 11
क्षर 9

क्षराक्षरात्मकदर्शन 11
क्षेत्र 9
क्षेत्रज्ञ 9

गंगा 12
गंगाजल 55, 56, 59, 65, 66
गजादिवश्यकर 14
गणितिया 28
गणेश 80
गरुडात्मक 15
गर्भतंतु 105
गर्भाशय 6
गाणपत्य 172, 175
गायत्री 186
गिरिनाथ 142
गीता 9, 10
गुंजा 153
गुणनिधि 142
गुप्तमात्रादुरूहरुद्राक्षर 7
गुरु-आवाहन 59
गुह्यकाली 193
गुह्या 191
गोदान 182, 186
गोपुच्छ 137
गोमुखी 36, 38, 63
गोमूत्र 65
गोमेध 82, 136
गोशाला 165
गौडदेश 152
गौरी 12
ग्रहण 145

चंचल 14
चंद्रग्रहण 82
चंद्ररूप 15
चक्षुष्कला 11
चतुरंगिणीसेना 5
चतुष्पथ 165
चांडाल 140
चित्रिणी नाड़ी 30
चूड़ामणि 193

जडभरत 185
जन्मकुंडली 86, 87, 89
जपकर्ता 61
जपकाल 34
जातवेदस्स्वरूप 177
जापक 38, 61, 177
जावाल 139
जाबालोपनिषद् 77, 82
जावालश्रुति 138
जैनधर्म 28
ज्योतिर्लिंग 84, 170
ज्योतिः स्वरूप 21
ज्योतीरूप 16

टेलीविजन 6

डमरू 7, 11
डाकिनी 84

तंत्र 105
तंत्रसार 28
तंत्रानुष्ठान 88
तक्षक 79
तर्पण 60
तस्वीह 26, 28
ताम्रपात्र 65
तारतत्त्व 133
तीर्थ 165, 186
तीर्थाटन 38
तीर्थसेवक 140
तुल्यबल 189
तूलकूट 80, 136
तूष्णींभूत 155
तृणमेरु 2
त्रिकदर्शन 6, 76
त्रिकवीज 76
त्रिकशास्त्र 76
त्रिकाल 76
त्रित्व 76
त्रिदेव 76
त्रिनेत्र 1
त्रितत्त्व 76
त्रिपुण्ड्र 142, 157
त्रिपुर 135, 166, 182
त्रिपुरसुंदरी 28

त्रिलोक 76
त्रिवर्ग 28
त्रिसर 68, 71, 144
त्र्यंबक 2, 20, 107
त्र्यक्षर 106

थेंगवा 28

दक्षिणपंथ 76
दक्षिणा 186
दक्षिणायन 185
दत्तात्रेय 185
दयित 145
दशदिक्पाल 81
दशमहाविद्या 81
दशाशा-प्रीति-जनन 145
दाहकर 16
दिक्पाल 21
दिव्यवर्ष 183
दीक्षाकाल 138
दीक्षाक्रम 65
दुर्गाचार्य 10
दुर्गासप्तशती 39, 40
दुर्धर्ष 15
दुःसह 14
दूरदर्शन 6
देवनागरी लिपि 10
देवी-अवतार 41
देवीकवच 39
द्वादशादित्य 145
द्वादशार्क 189
द्विसर 68, 71, 144

धनधान्यादिसंपदप्रद 15
धनप्राप्ति 34
धरासन
धवल 16
धर्मप्राप्तिकर 15
धर्मवृद्धि 157
धर्मार्थकामद 16
धात्रीफल 153
धेनुमुद्रा 60

नंदिकेश्वर 7
नपुत्र 10
नटराज 3, 7
नरशक्तिशिवात्मक 76
नवरात्र 192
नवशक्ति 185
नागपाशग्रन्थि 55
नागराज 40
नागराट् 79
नाद 37
नादविंदु 21
नाभिकीयविंदु 6
निकष 183
नित्यशुद्ध 14
नियतात्मना 138
निरुक्त 10
निर्णयसिंधु 81
निर्मनस्कता 39
निर्मल 16
निर्योनि 165
निर्वाण-षोढा-विधान 193
निर्विकल्पस्थिति 6
निस्पंद 105
निस्पंदावस्था 6
नीलकंठ 21
न्यास 138
न्यासक्रम 13

पंचकोशीय 38
पंचगव्य 49, 55, 66, 137, 175, 189, 196
पंचदेव 155
पंचामृत 66, 189, 196
पक्षाघात 1
पञ्चमुखमुद्रा 111
पतंजलि 10
पदार्थादर्श 71
पद्मपुराण 12, 75, 76, 77, 79, 80, 81, 82
पत्रकूर्च 175
परतत्त्व 144
परमकारण 138
परमेश्वर-परमेश्वर्यात्मक 6
परा 6, 76, 178
परागति 10, 137, 168

परापर-तत्त्व-ज्ञापक 21
परापरा 76
परावस्था 6
परावाक् 6
परा-प्रक्रिया 152
पराप्रकृति 9
पवित्र 16
पशुपतिमंदिर 74
पश्यंती 178
पाताललोक 74
पावन 2, 16
पिप्पलाद 185
पिशाच 84
पीठम् 3
पुंडरीक 79, 168
पुण्यक्षय 186
पुनर्जन्म 138, 140, 170, 186
पुरश्चरण 60, 107
पुराण 67
पुरुषवश्यकर 14
पुरुषार्थ 21
पुरुषोत्तम 9
पुष्टिदायक 14
पुष्टिवृद्धिकर 16
पुष्पगंध 3
पुष्पचामर 1
पुष्पांजलि 60
पूर्णाभिषेक 65
पूर्णिमा 145
प्रकाशविमर्शरूपात्मक 5
प्रकाशविमर्शात्मक 6
प्रकृतिगर्भ 105
प्रजापति 174
प्रणव 20, 154
प्रत्यभिज्ञान 133
प्रत्याहार 3, 11, 20
प्रदक्षिणा 165
प्रधान 16
प्रभृष्टकम् 25
प्रसन्न 15
प्रसूतिरोग 1
प्राणप्रतिष्ठा 138
प्राणमयकोश 137
प्राणसूत्र 6
प्राधानिकरहस्य 41
प्रालंबम् 25
प्रियदर्शन 16

फट् 55

बद्धव्योमासन 7
बहिर्याग 13
बिन्दु 165
बिल्वपत्र 29
बीजाक्ष 14, 21, 55
बीजाक्षर 105, 106
बृंहणशील 6, 20
बौद्ध-धर्म 28
ब्रह्मा 3
ब्रह्मांड 6
ब्राह्मणभोजन 60

भयानक 16
भरद्वाज 185
भव्य 16
भस्म 67
भावविलास 25
भासुर 16, 177
भीषण 15
भुक्तिमुक्तिप्रद 16
भुक्तिमुक्तिप्रदायक 153
भूत 84
भूतनाशकर 15
भूतनाशन 2, 15
भूतप्रशांतिकर 16
भैरव 81

मन्त्र (मंत्रों की संख्या सात करोड़ है।)
  अघोरमंत्र 5, 144, 154, 184; ईशानमंत्र 144, 154, 184; गणपतिमंत्र 165; तडिन्मालामंत्र 25; तत्पुरुषमंत्र 144, 154, 184; त्र्यंबकमंत्र 196; पंचाक्षरमंत्र 155, 157, 184, 189, 196; बलिप्रदानमंत्र 60; बीजमंत्र 184; मूलमंत्र 184; मृत्युंजयमंत्र 155; वामदेवमंत्र 154; विष्णुमंत्र 165; शिवमंत्र 165; षडक्षरमन्त्र 93, 197; सूर्यमंत्र 165

मंत्रमहार्णव 42, 64, 80, 81
मंत्रराज 106
मन्त्रमातृका 12, 178
मणिहार 28
मत्स्यपुराण 8
मथुरा 152
मधुमतीभूमिका 73
मध्यमा 6, 178
मनका 20
मनुस्मृति 10
मनोमयकोश 32
मनोविज्ञान 38
मरिया 26
मरुदेश 171
मलय 152
महत्तर 15
महाकालमहाकालिकात्मक 6
महाकाली 41
महानिर्वाण 192
महाभाग 135
महाभारत 5, 8
महाभाष्य 10
महामृत्युंजय 3, 106
महारुद्राक्ष 135, 166
महारुद्राक्षक 166
महालक्ष्मी 41
महासेन 79
महिष-मर्दिनी 55
महेश्वर 83
महौषधि 1
मातृका 5, 13
मातृकाक्षर 5, 13, 57
मातृकाक्षरात्मक जगत् 6
मातृका-प्रतिष्ठा 12
मातृमानमेयात्मक 76
मानववंश 7
मार्जन 60
माला
  अंगुलिमाला 28; अक्षमाला 5, 8, 11, 12, 13, 20, 21, 27, 28, 41, 54, 57, 66, 105, 174; अक्षरमाला 1, 30; अरिष्टमाला 28; अष्टोत्तरशतीमाला 30; औदुम्बरमाला 34; कंकालमाला 28; कनकमाला 28; कपर्दमाला 28; कमलमाला 35; करमाला 28, 29, 54; करमालिका 43; कर्पासमाला 28; कुशग्रन्थिमाला 42; कुशमाला 28; कुशमूलमाला 35; कुसुममाला 28; कौस्तुभमणिमाला 28; खड्गमाला 105; गुञ्जामाला 28; चरमाला 43; जपनीयमाला 38; जपमाला 20, 26, 28, 38; जातीफलमाला 28; तुलसीमाला 28; द्राक्षमाला 35; धारणीयमाला 38; नरमाला 39; नरास्थिमाला 28; निषिद्धमाला 28, 36; पद्माक्षमाला 28, 32; पर्वमाला 28; पिचुमंदमाला 28; पुन्नीफलमाला 28; पुत्रजीवमाला 32; पुष्पमाला 28; पूर्वमालिका 178; प्रवालमाला 28; बदरीफलमाला 28; ब्रह्मशिवात्मिकामाला 35; मणिमाला 12, 29, 31; मनोमाला 39; मरीचमाला 28; महाशंखमाला 28, 46; मातृकामाला 28, 47; मालाकृति 105; मुक्तामाला 35; मुण्डमाला 28, 40, 105; व्यूढामाला 47; रक्तचंदनमाला 28; रजतमाला 35; रत्नमाला 28; रहस्यमाला 45; राजतीमाला 46; रुद्राक्षमाला 12, 13, 42, 54, 105, 137, 192, 195; लौहमाला 28; वटबीजमाला 34; वर्णमाला 1, 8, 11, 20, 25, 28, 29; वर्णमालिका 46; वैजयन्तीमाला 28; शङ्खमाला 28; शक्तिमाला 30, 54; शतीमाला 30; शिरोमालिका 40; शुद्धमाला 165; संयुक्तमाला 28; सप्तमाला 184; सर्पाकारमाला 165; सूत्रमाला 28; सूत्रितमाला 70; सौन्दर्यमाला 28; सौवर्णीमाला 46; स्फटिकमाला 35; स्वयम्भूमाला 28; स्वर्णमाला 35; हरात्मिकामाला 28; हरिद्रामाला 28; हरितदंतमाला 28
माला 26 (*यत्र-तत्र*)
  मालाकंद 27; मालाकार 27; मालाग्रंथि 27; मालातृण 27; मालादीपक 27; मालादूर्वा 27; मालाली 27; मालारिष्टा 27; मालिक 27; मलिका 27; मालिन् 27; माल्यम् 27
मालाधारी 39
मालासंस्कार 11
मुक्तावली 142
मुग्धेंदुशेखर 6
मुनि 4
मुष्टिमुद्रा 111

मूलाधारचक्र 12
मृगमुद्रा 111
मृत्युञ्जय 14, 20
मृत्युनाशकर 15
मृत्युप्रमथन 15
मोक्षमार्ग 74, 167
मोहक 14
मोहनकर 14, 15
म्लेच्छ 7, 140

यंत्रपीठ 192
यजुर्वेदीयरुद्रहृदयोपनिषद् 3
यज्ञ 6
यज्ञीयवृक्ष 166
यज्ञोपवीत 25, 67, 68, 69, 70, 71, 72, 73,
133, 138, 144, 153, 154, 184
यमदूत 142
यमदेव 81
यहूदी 28
यामलतंत्र 31
यामलभाव 6
यास्क 11
योगतरंगिणी 7
योगनिद्रा 7, 41
योनिमुद्रा 60

रक्तचाप 1, 87
रक्तविकार 1
रत्नहार 28
राक्षस 54
रांधा 28
रुद्र 1
रुद्रकवि 25
रुद्रमुखीन 3
रुद्रलोक 140
रुद्रसंख्याशत् 69
रुद्राक्ष (*यत्र-तत्र*)
रुद्राक्षजाबालोपनिषद् 76, 78. 80, 81
रुद्राक्षधारण 1
रुद्राक्षबीज 11, 57, 84
रुद्राक्षमाहात्म्य 11, 12
रुद्राक्षर 5, 7, 11
रुद्राक्षवृक्ष 152

रुद्रेंद्रिय 2
रेखा 105
रोजरी (Rosary) 26
रौद्र 15

लंका 152
ललामकम् 25
लिंगतोभद्रमंडल 111
लिंगपीठरूप 3
लिंगपुराण 8, 9
लिंगमंगल 154
लिंगमुद्रा 111
लिंगायत 4
लिपिताक्षर 10
लोकश्रुति 74
लोमविलोम क्रम 120

वंशीनाद 28
वंशोद्धारक 189
वनवासिनी 55
वर्णन्यास 12
वर्णाक्षरविज्ञान 11
वशीकरणप्रयोग 34, 83
वसिष्ठ 185
वसिष्ठमुनि 178
वाक् 174
वाक्प्रसादकर 14
वाङ्मय 6, 20
वाङ्मयात्मक जगत् 4
वाग्मी 168
वाग्युद्ध 5
वाजपेय यज्ञ 136, 189
वाणी 3
वामपंथ 76
वायुपुराण 10
वायुविकार 1
विक्रम 12
विज्ञानमयकोश 38
विद्युत्शक्ति 1
विद्वेषण 32
विद्वेषणकर 14
दिद्वेषिमोहनकर 16
विनायक 50

विनिर्मोक्ष 134
विपुल 16
वियत् 177
विश्वंभर 16
विश्ववाङ्मय 8
विश्वविकसितमुद्रा 5
विश्वामित्र 178
विश्वेदेव 156
विष 20
विषज्वरनिहन 16
विषविघ्ननाशन 16
विषहनशोभन 15
विषहर्ता 21
विषुव 145
विषोल्बन 79
विष्णु 12
वृक्षवल्लीरूप 3
वेद 67
वैकक्षिकम् 25
वैकृतिक रहस्य 41
वैखरी 6, 178
वैश्वदेवकर्म 138
वैष्णव 172, 178
वोपदेव 71
व्यक्तिवाक् 8
व्यापक 15
व्युत्पत्ति 9

शंखचूड 79, 168
शक्तित्रयात्मक 76
शक्तिपात 65
शक्तिपीठ 3, 84, 170
शक्तिमुद्रा 111
शक्त्यात्मिका 178
शम्कारक 170
शर्व 1
शर्वाक्ष 2
शवासन 7
शांत 14, 16
शाकिनी 84
शाक्त 172, 178
शाक्ताभिषेक 65
शिखामणि 13
शिरोपीड़ा 1
शिव 1
शिवतत्त्व 3
शिवपुराण 6, 69, 70, 72
शिवप्रिय 2
शिवलिंग 74, 154
शिवलोक 167
शिवशिवात्मक 6
शिवसायुज्य 186
शिवसूत्रजाल 7
शिवाक्ष 2
शुद्धसत्त्वक 14
शुद्धसात्विक 14
शुद्धासन 38
शैव 172, 178
शैवजन 154
शैवशास्त्र 76
शैवागमस्पंददर्शन 6
शोभन 16
श्मशान 165
श्राद्धसंस्कार 4
श्रीकृष्ण 28
श्रीमद्भगवद्गीता 9
श्रीमद्देवीभागवत 12, 67, 76, 80, 81
श्रुति 6
श्रौत 139
श्वपच 140

षट्चक्रभेदन 7
षडंगक्रम 41
षड्विधतारा 41
षाण्मासिक समाधि 7
षोडशोपचार 57, 111, 192

संक्रांति 145
संक्षोभकर 14
संपृक्ताक्षर 21
संमोहनकर 14
सच्चिदानन्द 39
सनत्कुमार 185
सत्यभाषण 174
सत्यसङ्कल्प 4
सप्तमात्रा 145

सप्तर्षि 79
समरसता 6
समष्टि 21
समावेशदशा 6
समुद्रमन्थन 11, 20
सरस्वती 175
सर्वकारण 10
सर्वगत 14
सर्वज्ञगुप्त 14
सर्वतत्त्वात्मिका 178
सर्वतोभद्रमण्डल 66, 111
सर्वदेवात्मिका 178
सर्वदोषहर 16
सर्वफलप्रद 16
सर्ववलप्रद 14
सर्ववश्यकर 14
सर्ववाङ्मय 16
सर्वविद्यात्मिका 178
सर्वविघ्नशमकर 15
सर्वविनाशकर 15
सर्वविषकर 15
सर्वसम्पद्प्रद 15
सर्वव्याधिहर 15
सर्वव्यापक 14, 16
सर्वशक्तिप्रद 16
सर्वसिद्धिप्रद 15
सर्वाप्यायनकर 16
सहजसाधना 39
सामरस्यभाव 6
साम्वशिव 107
सायण 9
सारतर 14
सावर्णिक 16
सुधिषण 142
सुधारसायन 83
सुमरनी 26
सुमेरु 13, 21, 57
सुमेरुमणि 12
सुभग 15
सुब्हान अल्लाह 26
सिलैबुल 8
सोमा 3
सौभाग्यद 15
सौरक 172
स्तंभनकर 15
स्त्यानावस्था 6
स्फोट 5, 20, 105
स्फोटाक्षर 105
स्रक् (स्रज्) 25
स्वर्णकूट 37, 80
स्वर्लोक 171
स्वसाक्षात्कार 6, 74

हठयोग 39
हरगौरी 75
हवन 60
हस्तरेखाविद्या 89
हृदयचक्र अनाहत 6, 37
हृदय पर्वत 152
हृदयरोग 1

'रुद्राक्ष-धारण और जपयोग' ग्रंथ रुद्राक्ष-संबंधी सभी पक्षों का उद्घाटन, विश्लेषण और विनियोग उपस्थित करने में सर्वांगीण एवं समर्थ है। रुद्राक्ष के संबंध में यह प्रथम विश्वकोश-ग्रंथ है।

रुद्राक्ष की उत्पत्ति रुद्र की अक्षि से हुई है, इसलिए इसे रुद्राक्ष कहते हैं। रुद्राक्ष के मुख, मध्य और मूलाग्र में क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश का निवास होता है। रुद्राक्ष के कंटकों पर तैंतीस कोटि देवताओं का अधिवास है। ऐसा पुराण-वचन है। रुद्राक्ष अध्यात्म-साधना का सोपान, स्वास्थ्य-लाभ का आधार और वाङ्मय-तत्व का मूलस्फोट है। रुद्राक्ष को ऋषियों एवं साधकों ने सर्वसिद्धिदायक तथा सर्वफलसाधक माना है। यह पृथ्वी का वरदान, संस्कृति की गंगोत्री और अंतर्याग एवं कुंडलिनी-जागरण का मूलाधार-चक्र है।

इस ग्रंथ की सबसे बड़ी विशेषता इसकी वैज्ञानिक दृष्टि है। यह किसी अंधविश्वास या निस्तर्क विश्वास-वचन पर आधारित नहीं है। गहन अनुसंधान और जीवन की प्रयोगशाला में परीक्षित परिणाम को आधार बनाकर निर्मित यह ग्रंथ यह सत्य उद्घाटित करता है कि रुद्राक्ष एक वृक्ष-बीज मात्र या धारणमाला-जापमाला-मात्र नहीं, वरन् एक संपूर्ण जीवन-शैली है।

इस ग्रंथ में, रुद्राक्ष का उल्लेख जहाँ जिन भारतीय ग्रंथों में हुआ है, उनका संपूर्ण संस्कृत [illegible]-संदर्भ उपस्थित कर उनका हिन्दी-भाषांतर भी किया गया है। [illegible] श्रीमद्देवीभागवत, श्रीशिवमहापुराण, श्रीपद्म[illegible] [illegible]ोपनिषद, रुद्राक्षजाबालोपनिषद, मन्त्रमहार्णव, महाका[illegible] निर्णयसिंधु, बृहज्जाबालोपनिषद, शिव[illegible] [illegible] जैसे प्रतिष्ठित ग्रंथों से रुद्राक्ष वर्णन को सानुवाद [illegible] किया गया है। इसके अतिरिक्त सिद्ध [illegible] साक्षात्कार कर कुछ ऐसी तंत्रप्रक्रियाओं को भी लिपिबद्ध [illegible], जिनका अभी तक कोई लिखिताक्षर-[illegible] नहीं मिलता। फिर लेखक ने स्व-साधना-प्रयोग से जि[illegible] प्रयोग-प्रक्रिया को सिद्धिदायक और स[illegible], उन्हें पुनः परीक्षणीय घोषित किया है।

अ से क्ष-पर्यंत 'अक्ष' ही अक्षमाला, [illegible] रुद्राक्षमाला है। अक्ष में रमणशील होने के कारण अक्षर अनादि है। यही अ-क्षर भी है। अर्थात् जिसका कभी क्षरण नहीं होता। सर जॉन उडरफ ने रुद्राक्षमाला को ही 'गार्लैंड ऑफ लेटर्स' कहा है। सृष्टि की उत्पत्ति वाक् से हुई है। परमात्मा भी वाक् ही है—"वाग्वै सम्राट् परमं ब्रह्म।' अर्थात् रुद्राक्ष स्फोट-तत्व है। अब विश्व के भाषाविज्ञानी रुद्राक्षमाला और रुद्राक्षर-तत्व का विश्लेषण करने लगे हैं।

संक्षेप में, रुद्राक्ष मानव-जीवन के सर्वांगीण विकास एवं उत्थान का बिंदुबीज है। यह भारतीय संस्कृति, साधना, अध्यात्म, अंतर्याग, स्वास्थ्य, शक्ति, सिद्धि और समाधिदर्शन की एकाश्रयणी अभिषेक-पुष्करिणी भी है। अतः रुद्राक्ष काम्यकाम-साधन और मुमुक्षता-संप्राप्ति दोनों का आधार तत्व है।

निशांतकेतु पटना-विश्वविद्यालय के अंतर्गत पटना कॉलेज में स्नातक एवं स्नातकोत्तर-हिन्दी-विभाग में आचार्य तथा अध्यक्ष।

Munshiram Manoharlal
Publishers Pvt. Ltd.
New Delhi
Website: www.mrmlbooks.com

ISBN 81-215-0514-3
9 788121 505147
Rs 160